स्वस्ति !

डॉ. शीलन् वेंकटेश्वर राव ने बहुत ही अथक परिश्रम एवं अध्ययन के पश्चात् "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (एक झलक)" पुस्तक लिखी है जो प्रशंसनीय है। लगभग पचास वर्षों से मैं ने लेखक को बहुत ही निकट से उनकी साहित्यिक अभिरुचि तथा विकास को देखा है और लेखक की साहित्यिक प्रगति पर मुझे बहुत सन्तोष है तथा आशा करता हूँ कि आगे भी कई मंजिलें तय होगी।

प्रत्येक राष्ट्र को अपने इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। विशेषकर उन राष्ट्रों को जो दासता के बन्धनों से मुक्त हुए है अपने स्वतंत्रता सेनानियों के बलिदानों से।

भारत मे पुरातनकाल से क्रान्तिकारी महापुरुष अवतरित होते रहे है। क्रान्ति युग-युग मे घटित होती रही है। जब समाज कुण्ठा से ग्रस्त होता है और देश दिशाहीन होने लगता है तब क्रान्ति आविर्भूत होती है। क्रान्ति अहिंसक भी हो सकती है और हिंसक भी और यह देशकाल की परिस्थिति पर निर्भर रहती है। उदाहरण के लिए, भारत में जहाँ महावीर और बुद्ध जैसे अहिंसक क्रान्तिकारी हुए हैं, वही महाराणा प्रताप और वीर शिवाजी जैसे योद्धा भी हुए हैं। इस समय भी आवश्यकता है सामाजिक दुराग्रहो से क्रान्ति द्वारा नवनिर्माण करने की।

मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक के अध्ययनोपरान्त पाठकों के मन में उदात्त विचारो का देशहित के लिए आविर्भाव होगा।

डॉ. पूनमचन्द सीसोदिया

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम

(एक झलक)

सन् 1748 से 1947 तक

लेखक

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव

एम ओ.एल., एम.ए., पी-एच.डी.

वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापक, धर्मवन्त कॉलेज

याकुतपुरा, हैदराबाद–500 023 (आ. प्र.)

प्रकाशक

शीलम् प्रकाशन

5-8-104, महेशनगर, नामपल्ली स्टेशन मार्ग

हैदराबाद– 500 001 (आं. प्र.)

* प्रकाशक

शीलम् प्रकाशन
5–8–104, नामपल्ली स्टेशन मार्ग
हैदराबाद–500 001

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के
शिक्षाविभाग द्वारा स्वीकृत अनुदान से प्रकाशित।

* सर्वाधिकार लेखकाधीन

प्रथम संस्करण : विजयदशमी 29 सितम्बर 1990

* मूल्य : पुस्तकालय संस्करण रु. **100-00**
विद्यार्थी सस्करण रु. **40-00**

* मुद्रक

दक्षिण भारत प्रेस
खैरताबाद, हैदराबाद–500 004.

Bharateeya Swatantra Sangram

(Ek Jhalak)

(1748-1947)

By Dr Sheelam Venkateshwar Rao

M O L., M A , Ph-D.

Publishers

Sheelam Prakashan

5-8-104, Nampally Station Marg. Hyd-500 001.

29 September, 1990. **Price-100-00**

समर्पण

इस पुस्तक के प्रेरणा-स्रोत महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी स्वामी विरजानन्द महाराज, नाना साहिब, झांसीरानी, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द, लाल-पाल-लाल, वीर सावरकर, लाला हरदयाल, अमरशहीद गणेश शंकर विद्यार्थी, भगतसिंह, चन्द्र शेखर आजाद, बिस्मिल, स्वतंत्रता की दुर्गा, 'करो या मरो' के प्रणेता बापूजी, पं. नेहरू, नेताजी, अल्लूरि सीतारामराजू,

कॉर्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स, एनीबेसेंट,

शीलभद्र याजी यशपाल, मन्मथनाथ गुप्त,

प्रकाशवतीपाल, कैप्टन डॉ. लक्ष्मी सहगल,

और

असंख्य देशभक्त क्रान्ति वीर शहीदों के चरणों में

सादर समर्पित.

स्वतंत्रता-संग्राम के प्रमुख सेनानी

(1) मंगलपाण्डे, (2) रानी लक्ष्मीबाई, (3) कुँवरसिंह, (4) तात्याटोपे, (5) नाना साहिब, (6) बेगम हजरत-महल, (7) रावतुलाराम (8) बहादुरशाह जफर ।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम (एक झलक)

आशीर्वचन	:	श्री शीलभद्र याजी
पुरोवाक्	:	श्री मन्मथनाथ गुप्त
शुभाशीष	:	श्री पं. वन्देमातरम् रामचन्द्र राव
प्रस्तावना	:	श्री विद्याधर गुरुजी
शुभाशंसा	:	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी
नई दिशा	:	डा. श्यामसिंह शशि
अभिनंदन	:	श्री धोण्डीराव जाधव
अभिमत	:	श्री जी. राजवीर आर्य
दो शब्द	:	डॉ. एन. पी. कुट्टनपिल्लै
प्राक्कथन	:	लेखक

आशीर्वचन

श्री शीलभद्र याजी

भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम (एक झलक) नामक पुस्तक लिखकर डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव हैदराबाद ने एक बड़ा सराहनीय कार्य किया है। सन् 1748 से 1947 तक जो दो सौ वर्षों तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ सशस्त्र तथा अहिंसात्मक तरीकों से आज़ादी की लड़ाइयाँ लड़ी गयी, उनका सिर्फ दो सौ बीस पृष्ठो मे सविस्तार वर्णन है।

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव जी ने बहुत अच्छे ढग से, जो सशस्त्र तथा अहिंसात्मक ढग से दो सौ वर्षों तक आजादी की लड़ाइयाँ चलती रही, उन्हे एक-दूसरे का पूरक बताकर सभी स्वतन्त्रता-सेनानियो के साथ बहुत न्याय किया है।

भारत मे दो सौ वर्षो तक स्वतन्त्रता संग्राम चलता रहा, उनमे से दो तिहाई भाग सशस्त्र ढंग से लड़ी गई तथा एक तिहाई भाग कांग्रेस तथा गांधीजी के नेतृत्व मे लड़ी गई।

कुछ पगले तरह के लोग यह कहकर उन शहीदो का अपमान करते हैं जिन्होने सशस्त्र स्वतंत्रता-संग्राम मे अपने को न्योछावर कर दिया कि आज़ादी की लड़ाई की विजय गांधीजी के नेतृत्व मे बिना खून गिराये आ गई।

नेताजी ने जब यह ऐलान किया कि आजाद हिन्द फ़ौज को लेकर भारत को आज़ाद करायेंगे तो उस समय पं. जवाहरलाल नेहरू तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद ने यह बयान निकाला था कि वे सुभाषबाबू से लड़ेंगे,

परन्तु उसके ठीक उलटा हुआ कि जब लोगों को यह पता चला कि आज़ाद हिन्द फ़ौज में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी सब मिलकर लड़े और औरतों की 'रानी झांसी सेनावाहिनी' बनी जो अब तक दुनिया में औरतों की फ़ौज कहीं नहीं बनी। आज़ाद हिन्द फ़ौज (आई. एन. ए. मुकदमा) के बाद नई दिल्ली में 1946 में भारत के लौहपुरुष सरदार पटेल ने कहा था कि जिस काम को साठ वर्षों तक कांग्रेस नहीं कर सकी, नेताजी बोस ने आज़ाद हिन्द फ़ौज बना कर ऐसी आजादी की लड़ाई लड़ी कि अंग्रेज भारत से बिदा हो गये।

भारत सरकार तथा राज्य सरकार से अपील करता हूँ कि वे डॉ. शीलम् की इस पुस्तक "भारतीय स्वतंत्रा संग्राम" को अपने पाठ्यक्रम में शामिल कर आज़ादी की लड़ाई के इतिहास को भावी संतति को बताएं। मैं डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव जी को कोटिशः धन्यवाद देकर आशीष दे रहा हूँ।

शीलभद्र याजी
कार्यकारी अध्यक्ष
अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी संगठन
तथा भूतपूर्व सांसद

दिनांक 10–10–1990

पुरोवाक्

श्री मन्मथनाथ गुप्त

यह बड़ी खुशी की बात है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास पर डॉ. चीलम् वेंकटेश्वर राव ऐसे बीसियों विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है जिसका नतीजा यह हुआ कि आज सभी दृष्टिकोणों से लिखे हुए विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ पाठकों के सामने आ रहे हैं। क्रान्तिकारियों ने इस संग्राम का प्रारम्भ किया और क्रान्तिकारियो ने ही इस संग्राम मे पूर्णाहुति दो। यह कई लोग प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं कि अहिंसा के द्वारा भारत स्वतंत्र हुआ, पर यह आंशिक रूप से सत्य है। जैसा कि मैं ने बार-बार अपने ग्रंथो मे लिखा है कि महात्मा गांधी वे भगीरथ थे, जो स्वतंत्रता-आन्दोलन को उच्चवर्ग के स्वर्ग से उतार कर जनता के मर्त्य में ले आए। इस सेवा की जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह थोड़ी है। महात्मा गांधी ने एक बार थोड़े ही दिनों के लिए ही सही, सारे भारतीयो को क्रान्तिकारी बना दिया। सन् 1921 मे गांधीजी ने जिस आन्दोलन को पहली बार आरम्भ किया, वह एक अनोखा प्रयोग था। मैं उस समय तेरह वर्ष का एक नगण्य छात्र था। पर गांधीजी की झोली में मेरे ऐसे सैकड़ों तुच्छ छात्रो के लिए भी स्थान था। उन्होंने यह नारा दिया कि अंग्रेजों के द्वारा चलाये हुए विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय सब गुलामखाने हैं और उन्होने कहा कि तुम छात्र उनसे निकल आओ। काशी में मेरे अतिरिक्त कमलापति त्रिपाठी, लालबहादुर शास्त्री, हरिहरनाथ शास्त्री, बजरंगबली गुप्त, रवीन्द्र मोहन कौर, मणीन्द्रनाथ बनर्जी आदि बीसियो छात्र स्कूलों से

निकल आए। इन मे से जोश मे भाटा आने पर अधिकांश छात्र अपने विद्यालयो मे लौट गए। पर कुछ लोग बने रहे। उन्ही को लेकर अध्यापक कृपलानी ने बाद को प्रसिद्ध विद्वान बाबू भगवान दास, सम्पूर्णानन्द, आचार्य नरेन्द्र देव आदि ने राष्ट्रीय विद्यालय और काशी विद्यापीठ की स्थापना की। प्रसिद्ध रईस बाबू शिव प्रसाद गुप्त ने दस लाख का दान दिया, जो उन दिनो बहुत बडी रकम थी। इस प्रकार काशी विद्यापीठ चल पडा। इन विद्यालयो मे और विषयो के अतिरिक्त चर्खा कातना और कर्घा चलाना पाठ्यक्रम के अन्तर्गत था।

ऐसे सारे भारत मे कई विद्यापीठ और अन्य सस्थाएँ बनी।

आज हमारे गाँव बहुत आगे इस अर्थ मे बढे हुए हैं कि हर मिनट ट्रांजिस्टर-क्रान्ति की बदौलत सारी दुनिया की खबरे गाँव मे पहुँच जाती हैं। पर 1920 मे जब हम सुल्तानपुर के गाँव मे गए, वहाँ अधिकांश लोगों को इसका भी पता नही था कि भारत में मुगलों का राज्य चल रहा है या अंग्रेजो का राज्य। इस अन्धकार पूर्ण वातावरण मे मेरे ऐसे छात्रों के लिए भी स्थान था। हम लोग गाँव मे जाकर चर्खे और कांग्रेस का प्रचार करते थे। यह बताते थे कि महात्मा गांधी के रूप मे एक अवतार पैदा हुआ है, जो हमारी परतन्त्रता की बेडियो को काट कर ही दम लेगा। हम लोग स्वयं कुछ नही जानते थे, पर जो कुछ जानते थे, वह बहुत महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि हम स्वदेशी का प्रचार कर रहे थे, साथ ही लोगो मे स्वतन्त्रता के लिए जोश पैदा कर रहे थे।

गांधीजी के पहले लोकमान्य तिलक और उससे भी पहले राममोहनराय, उनका ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द जमीन तैयार कर चुके थे। चाफेकर बन्धु, खुदीराम, कन्हैयालाल दत्त, वीर सावरकर और उनकी मित्र मण्डली मे से कई लोग जैसे मदनलाल धींगरा आदि उस जमीन को अपने रक्त से सींच चुके थे। बग-भग के कारण बगाल मे जो आन्दोलन चला, उसमे गांधीवादी आन्दोलन के कई हिस्से, जैसे स्वदेशी, बन्देमातरम् आदि भारत के सामने आ चुके थे। क्रान्तिकारियो ने और गांधीजो ने हिन्दू-मुस्लिम, सिख-ईसाई सब की एकता पर बहुत जोर दिया था।

क्रान्तिकारी पूर्ण रूप से धर्म-निरपेक्ष थे। यों समझा जाता है, और अशफाक उल्लाह हुसैन (फांसी 1927) यह सोचते थे कि वही प्रथम मुस्लिम शहीद हैं, पर जैसा कि हमारे विद्वान् लेखक डॉ शीलम् वेंकटेश्वर राव जानते हैं कि 1857 को छोड भी दे, तो कई मुस्लिम स्वराज्य के लिए शहीद हो चुके थे। पर जैसा कि आज इतिहास बताता है कि क्रान्तिकारियो का और गांधीजी के धर्मनिरपेक्षता सम्बन्धी विचार पूर्णरूप से सफल नही हो सके। यह उस समय सामने आ गया जब भारत स्वतन्त्र हुआ, पर दो टुकड़ों में बंट कर।

गांधीजी ने अहिंसा का नारा दिया वह भारत की स्थिति को देखते हुए बहुत सुन्दर एवं समयोपयोगी था, पर पहले ही 1921 के आन्दोलन में ही यह प्रकट हो गया कि जनता के लिए अहिंसा पूर्णरूप से पचाने योग्य विचार-धारा नही है। 1922 की 5 फरवरी को गोरखपुर के चौरीचौरा गाँव मे जब पुलिस ने निहत्थी भीड़ पर गोली चलायी, और तब तक गोलियाँ चलाई जब तक कि उनकी गोलियाँ खत्म नही हो गयी। भीड़ गोली चलने से स्तब्ध हो गई। पर जब भीड ने यह हृदयंगम कर लिया कि पुलिसवालों की गोलियाँ खत्म हो चुकी हैं तो वह थाने की ओर बढी, जहां पुलिस वाले छिप गये थे और थाने मे आग लगाकर बीस एक पुलिसवालो को जिन्दा जला दिया। क्रान्ति की यह पहली चिनगारी थी। क्रान्ति क्या है ? क्रान्ति वह है, जो हर भारतीय ग्राम चौरोचौरा हो जाता। पर महात्पाजो क्रान्ति नही चाहते थे। सत्याग्रह में क्रान्ति का कोई स्थान नही है। वह समझौते मे समाप्त होता है, क्योंकि उसके पीछे सर्वोदय की विचारधारा छिपी हुई है।

विद्वान् लेखक ने सारे प्रश्नो पर रोशनी डाली है। पर सिर्फ दो-बातें कहकर मैं यह भूमिका समाप्त करूँगा।

पहली बात तो यह है कि 1789 मे यह सम्भव था कि फ्रांस की साधारण जनता ने फ़ौज को हरा दिया, पर अब फौजी विद्या और अस्त्र-शस्त्र इतने उन्नत हो गए हैं कि बीस हजार सेना सशस्त्र होकर 20 करोड लोगो को दबा सकती है। इसी कारण क्रान्तिकारियो ने सेना को आन्दोलन में मिलाने पर शुरू से जोर दिया। पिगडे ऐसे महावीर छावणी के अन्दर पकड़े गए। यह स्वप्न थोड़े में, इस प्रकार भारत में साकार हुआ कि नेताजी सुभाष की

आजाद हिन्द फौज लडाई मे तो अंग्रेजो के सामने टिक नही सकी, पर जब उसके गिरफ्तार अफसरों–शाहनवाज़ खां, ढिल्लो और कु. लक्ष्मी पर मुकदमा चला, तो इसका नैतिक असर इतना जबर्दस्त हुआ कि रातोरात अंग्रेजो की किराये की भारतीय सेना मुक्तिवाहिनी बन गई।

दूसरी बात जिस पर मैं ध्यान दिलाना चाहता हूं कि वह यह है कि महात्मा गांधी ने देश के सामने धर्मनिरपेक्षता की विचारधारा सामने रखी थी, वह बहुत अपूर्ण, एक देशीय और पूर्वापर सम्बन्ध नही थी कि वह असफल हो गई। धर्मनिरपेक्षता का अर्थ यह लिया गया कि तोषण करते जाओ और सब काम ठीक हो जाएगा। पर यह बात ऐतिहासिक रूप से गलत थी, जैसा कि हम देख रहे हैं। जरूरत इस बात की थी कि जितने भी धर्म हैं, उनके सारे जहीरे दात तोड दिये जाते। पर व्यावहारिक जगत मे ऐसा न करके हम ढोंग भरी परस्पर प्रशंसा मे लगे रहे। हमें मानवीय अधिकारो के आधार पर धर्म की जड मूल से आलोचना करनी चाहिए थी। सब से मज़े की बात यह है कि समाजवादी विचारधारा मे धर्मों की आलोचना और उसका तिरस्कार बहुत जरूरी माना गया है, पर वोट खोने के डर से समाजवादी नामधारी दलो ने इस विचारधारा को छिपा दिया और गांधीजी के स्वर में स्वर मिलाकर गाने लगे — "ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सब को सम्मति दे भगवान्"। नतीजा यह रहा कि कई कारणो से हिन्दू और अधिक हिन्दू और मुसलमान और अधिक मुसलमान, सिख और अधिक सिख, यहां तक कि विपथ चालित होकर पाकिस्तान के एजेंट बन गए। मैं इसके लिए सारा दोष वामपक्षियों को देता हूं। उनका इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम देश–द्रोह यह था कि जब 1940 के बाद पाकिस्तान का नारा सामने आया तो उस समय कम्युनिस्टो ने गोल-मोल करके अपने सिद्धान्तों को गडबडा कर पाकिस्तान के नारे का समर्थन किया। जब पाकिस्तान बन गया, तो कई प्रमुख कम्युनिस्ट नेता जैसे सज्जाद ज़हीर आदि पाकिस्तान गए और उन्होने चाहा कि वहां अपना संग्राम चलाएं, पर पाकिस्तान के शासको ने उन्हे इस बुरी तरह जेल आदि मे डालकर दमन कर दिया कि वे वहां से दुम दबाकर भारत भाग आए। ऐसे लोगो ने ऐसा यह प्रचार नही किया कि पाकिस्तान एक कट्टर तथा कथित धार्मिक राष्ट्र है

जसमें कोई भी प्रगतिवादी विचारधारा पनप नही सकती। नतीजा जो कुछ होना था वह हम देख रहे है। हम कोई ज्योतिषी नही हैं, न डाक्टर श्रीलम् वेंकटेश्वर राव, कोई ज्योतिषी नही। पर घटनाएँ यह साफ दिखा रही हैं कि धार्मिक कट्टरता और बढेगी, क्यो कि हमारे पास कोई विचारधारा ऐसी नही है जिससे हम हिन्दू राष्ट्रवाद या पाकिस्तानी जगजू राष्ट्रवाद को परास्त कर सके। इसी लिए हमारी बहादुर सेना सब तरह से तैयार रहने पर भी और हमारे प्रशासक जोरो के साथ आतकवादियो से लडने पर भी सामने कोई विजय के आसार नही दिखाई दे रहे हैं। फिर भी हम लोग यह आशा करते हैं कि सही धर्म-निरपेक्षता, जिसका आधार धर्म-विरोध पर होगा, ससार मे खासकर भारत मे शान्ति, वास्तविक शान्ति स्थापित हो सकेगी।

हद तो यह है कि न केवल भारत में बल्कि सारे संसार मे समाजवादी भोग मे लग गए हैं। वह इस हद तक रोग बन गया कि आज भूतपूर्व समाजवादी देशो मे समाजवाद का खुलकर विरोध हो रहा है। यह खुशी की बात है कि इस अन्धकार भरे वातावरण मे ससार के सामने गोर्बाचेव नाम से एक महाक्रान्तिकारी मौजूद है। पर यह आशका दिखाई देती है कि रूस आदि देशो के नवमूर्ख और अदूरदर्शी व्यक्ति किसी भी समय गोर्बाचेव की हत्या कर सकते हैं।

मैंने जो कुछ लिखा उससे यह गलत भनक निकल सकती है कि जैसे दो वियतनामो का एकीकरण हुआ। दो जर्मनियो का एकीकरण अभी-अभी हुआ और दो कोरियाओ का एकीकरण भी इतिहास के एजेण्डा मे है, उसी तरह भारत, पाकिस्तान और बगला देश का एकीकरण होगा या होना चाहिए। मैं ब्यौरे मे नही जाऊँगा, पर स्पष्ट कर दूं कि जब तक धर्म के जहरीले दाँत सम्पूर्ण रूप से तोड नही दिये जाते, तब तक इस एकीकरण का स्वप्न देखना गैर-मुनासिब है। वह इसलिए कि सच्चे मायनी मे न पाकिस्तान और न बंगला देश (हम मुजीब के तीन वर्षों को छोड देते हैं) कभी स्वतत्र नही हुआ। नाम के वास्ते अग्रेजो के जमाने के मेजर और कर्नल, जनरल और मार्शल की बाघ छाल ओढ़कर डिक्टेटर के रूप मे सामने रहे, और उन सब के

पीछे प्लग लगा रहा और उन्हीं प्लगों के जरिये से विश्व साम्राज्यवाद का उन पर शासन चलता रहा। पाकिस्तान जब भारत में आतंकवादी भेजता है, तो वह इस्लाम का प्रतिपादक वाला मुखौटा ओढकर सामने आता है, जिसमें भारत के मूर्ख मुसलमान उनका साथ दे, पर जब वे विश्व साम्राज्यवाद का एजेण्ट बनकर अफगानिस्तान के सामने अस्त्र लेकर खड़ा होता तो वहाँ वह लोकतन्त्र का मुखौटा ओढकर अफगानों के सामने जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये अंग्रेजों के मेजर-कर्नल असल में क्या है ?

यदि इसी रूप में वे भारत के साथ एक हो जाएँ तो भारत भी उनकी तरह एक छिपा हुआ गुलाम देश बन जाएगा। हम केवल भारत, बंगला देश और पाकिस्तान की एकता या एक राष्ट्रता नहीं चाहते, बल्कि हम चाहते है कि सारा ससार एक और अविभाज्य राष्ट्र हो जाएँ, पर जब तक हम धर्म-विरोधी धर्म-निरपेक्षता को "मनसा-वाचा-कर्मणा" एक नहीं हो जाते, तब तक तीन देशो के एकीकरण के मायने हैं अपने हाथ-पैर बाँधकर विश्व साम्राज्यवाद के सामने घुटने टेक देना। इसलिए हमारा विचार यह है कि सही रूप से वामपक्ष का उदय हो, शोषण रहित समाज की रचना हो, पुरुष और स्त्री का समानाधिकार हो, जिनमे किसी तरह की पर्दा-प्रथा आदि बातों की गुंजाइश न रहे, छुआ-छूत हो नहीं, सारे वर्णों का विलय हो जाए, हिन्दू और मुसलमान कोई न रहे या नाम के वास्ते रहे, बाकी सब भारतीय हो जाएँ, तभी भारत का पुनर्एकीकरण लाभप्रद हो सकेगा, अन्यथा नहीं।

हम यह आशा करते है कि डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव की पुस्तक 'भारतीय स्वतत्रता सग्राम' (एक झलक) इस दिशा मे जनता का पथ-प्रदर्शन करेगी। मेरी शुभेच्छाओ के साथ—

मन्मथनाथ गुप्त
वयोवृद्ध स्वतन्त्रता सेनानी

मन्मथनाथ गुप्त
14/डी ईस्ट निजामुद्दीन
नई दिल्ली।

शुभाशीष

श्री पं॰ वन्देमातरम् रामचन्द्र राव

भारत की आज़ादी का इतिहास, मेरी दृष्टि में, उसी दिन से प्रारम्भ होता है, जब पहले विदेशियो ने इस देश की सरजमीन पर अपना मनहूस क़दम रखा, इस दुष्टबुद्धि से कि उसे पराधीन बनायें।

बारह शताब्दियो की इस लम्बी लड़ाई मे भारतीय शहीदो का खून खूब बहा। इस खून से हमारी स्वाधीनता का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल और पवित्र हो चुका है।

गगनचुंबी हिमालय की चोटियो से कन्याकुमारी तक व्याप्त जिस देश के पावन चरणो को तीनों समुद्र मिलकर श्रद्धा से धोते हैं, इसमें ऐसा कोई स्थान नही है, जहाँ कोई-न-कोई खूंखार लड़ाई आज़ादी के लिए नही लड़ी गई हो। इस देश की पवित्र भूमि उन वीरो के वीरोचित कारनामो की याद दिलाती है।

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव ने बड़ी सुलभ शैली मे पावन गंगा की भान्ति बहती हुई धारा जैसी भाषा मे उन वीरो की वीरोचित गाथाओं को नयी पीढ़ी के लिए चित्रित किया है। मैं इस पुस्तक के रचयिता को इस

स्तुत्य कार्य के लिए बधाई देता हूँ। और विश्वास करता हूँ कि नयी पीढ़ी इसे पढ़कर लाभ उठायेगी।

वन्देमातरम् रामचन्द्रराव
वरिष्ठ उप-प्रधान
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
नई दिल्ली।

वन्देमातरम् रामचन्द्रराव
14-3-178, गोशामहल
हैदराबाद–500 012.

प्रस्तावना

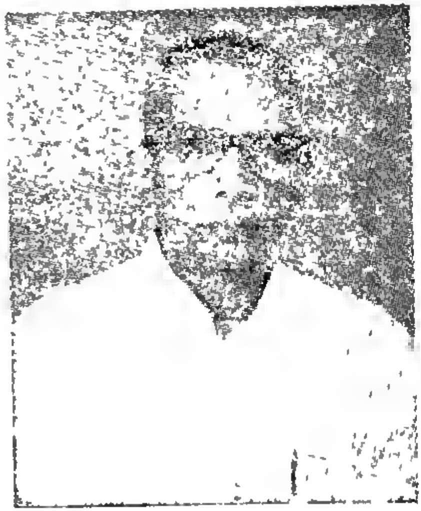

श्री विद्याधर गुरुजी

मुझे बचपन से ही अर्थात् विद्यार्थी–जीवनकाल से ही क्रान्तिकारियो के प्रति आकर्षण रहा। प्रथम बार अमरशहीद सरदार भगतसिंह की फांसी ने मेरे मन को झकझोर दिया। 23 मार्च 1931 के दिन उन्हे और उनके दो साथी शहीद सुखदेव, राजगुरू तीनो को फांसी हुई। शायद इसके दो दिन बाद विद्यालय के सारे विद्यार्थियो ने फांसी के विरोध स्वरूप स्कूल छोडकर सरकार के विरुद्ध जुलूस निकाले। उस समय मेरी अवस्था शायद 14-15 वर्ष की थी। उसके पश्चात् 1938 मे शोलापुर मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नेतृत्व मे निजाम सरकार की दोगलो–नीति तथा हिन्दू जनता पर उसके धार्मिक आचरणो पर प्रतिबन्ध सम्बन्धी आदेशो को लेकर एक बृहत् सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन में देश के तमाम क्रान्तिकारियो के दर्शन करने का और उनके सुविचारो को सुनने का सुअवसर मिला। जैसे वीर सावरकर, भाई परमानन्द, डॉ. मुंजे, महात्मा नारायण स्वामी, चांदकरण शारदा, खुशहालचन्द (महात्मा आनन्द स्वामी) आदि के जोशीले भाषण सुनकर हमने निश्चय कर लिया कि अपना सारा जीवन भारत की आजादी व देशसेवा मे लगा दें। तब से अब तक वही धुन और वही पागलपन सर पर सवार है।

स्वतन्त्रता-सग्राम के पूर्व तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् देश की जो स्थिति बनी, उसमे पूर्व की भावनाओ मे त्याग, बलिदान व देश प्रेम नौजवानो मे भरपूर था। लेकिन आज़ादी के बाद जो नौजवान पीढ़ी आई, उनमे भोग-विलास, "खाओ-पीओ मौज उडाओ" की हालत देखकर मैं ही नही, आजादी के लिए लडने वाले समस्त सेनानियो के दिल अत्यन्त वेदना के साथ रो उठते है। किसी ने ठीक कहा है--

"याद शहीदों की अगर हम नहीं करेंगे,
तो यह आजादी ढलती हुई सांझ हो जाएगी।"

पूजा वीरो की अगर हम नही करेंगे, तो वीरता बांझ हो जाएगी। सच है जो देश अपने वीरों, और उनकी बलिदानियो को भुला देता है, उसे जीवित रहने का अधिकार नही। स्वय मर जाता, मिट जाता है। स्वतंत्रता के पश्चात् हमारी जनता अत्यन्त स्वार्थी, पदलोलुप, विषय-वासनाओ मे लिप्त होकर कायर एवं नपुसक हो चुकी है। इन्हे फिर से जगाने के लिए नयी स्फूर्ति और शक्ति पैदा करने के लिए वीरो, क्रान्तिकारियो के जीवन-चरित्र और देश का जुझारू इतिहास फिर से पढाना पड़ेगा। इसके लिए कई लेखक-साहित्यकार ऐसा ही साहित्य लिखें, जिससे देश के नौजवानो में फिर से देश-प्रेम उमड पड़े और भारत माता की बलिवेदी पर हंसते-हंसते चन्द्रशेखर आजाद, भगत-सिह, नेताजी सुभाषचन्द्र की तरह प्राण-न्योछावर करने को तैयार हो जाएँ। जहाँ श्रद्धेय मन्मथनाथ गुप्त इस कार्य में व्यस्त हैं, वृद्धावस्था मे भी कलम चला रहे हैं वहाँ अनेक युवा लेखक भी इनसे प्रेरणा ले रहे हैं।

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव चाहें तो छोटे-मोटे उपन्यास लिखकर या मनोरंजक कहानियाँ लिखकर आर्थिक लाभ उठा सकते, पर उनके दिल ने गवारा नहीं किया। उन पर बाल्यकाल से जिस प्रकार के संस्कार हैं, जिस तरह के वातावरण में वे परवान चढ़े हैं, उनके प्रभाव ने उन्हे क्रान्तिकारियो के साहित्य को लिखने पर मजबूर किया। उनकी पूर्व कृति महान् क्रान्तिकारी "यशपाल के उपन्यासों में क्रान्ति के अनुसन्धान से सम्बन्धित है।"

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव साधनों के अत्यन्त अभावों के भी आर्थिक कठिनाइयों से गुजरते हुए क्रान्तिकारी–साहित्य को लिखने के कठिन कार्य को अपने हाथ में लेना, उनके देश–प्रेम का द्योतक है। नवयुवकों के अन्दर चरित्र-निर्माण करने की ओर अधिक जोर है। सभी युवा लेखकों के लिए अनुकरणीय है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव के बचपन को अच्छी तरह जानता हूँ। उनमें वही लगन, वही मेहनत है और उससे साहित्यिक क्षेत्र में जो प्रतिष्ठा व सम्मान वे पा रहे हैं, वह अत्यन्त श्लाघनीय है। भगवान् इनकी कलम में और शक्ति दे ताकि इनकी कृतियों का एक-एक वाक्य पाठकों के लिए प्रेरणा–स्रोत बने।

"देश को तुमने सब कुछ दिया, देश तुम्हें क्या देगा ?
बस अपनी आग तेज रखने को नाम तुम्हारा लेगा ॥

मुझे ये दो शब्द लिखते हुए अत्यन्त आनन्द और गौरव की अनुभूति हो रही है। मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ हैं।

जय हिन्द !

विद्याधर गुरूजी
एम. एल. सी.
अध्यक्ष, दक्षिण भारत स्वतंत्रता
सेनानी संगठन
हेड् आफिस, गुलबर्गा (कर्नाटक)

दि. 15–10–1990.

शुभाशंसा

डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी

कई जन्म लेते हैं सिर्फ मर जाने के लिए।
कई जन्म लेते हैं कुछ कर जाने के लिए॥

जब मैं दस–ग्यारह वर्ष का था और पाँचवी–छठी कक्षा में पढ़ता था, उस समय हमारी कालोनी में एक समारोह हुआ जिसमें एक पंजाबी कवि ने "शहीदे आज़म भगतसिंह की घोड़ी" कविता का सस्वर वाचन किया। इस रचना मे इतना दर्द था कि उसे सुनते हुए मेरी आँखो से आँसू छलक आए। मैं ने अपने आस–पास देखा तो वहाँ पर उपस्थित स्त्री–पुरुषो की भी आँखें भीगी हुई थीं और कई स्त्रियाँ तो सुबक रही थी। पूरे समारोह मे जैसे सन्नाटा छा गया था। वास्तव में इस कविता में भगतसिंह को दूल्हा के रूप में और मृत्यु को दुल्हिन के रूप मे चित्रित किया गया था। पंजाब मे दूल्हा बारात में घोड़ी पर सवार होकर दुल्हिन के घर जाता है, लेकिन यहाँ "घोड़ी" की उपमा "फाँसी" से की गई थी। यह कविता भगतसिंह और उसकी मंगेतर के बीच हुए संवाद के रूप मे लिखी गई थी। इस कविता का मेरे बालक मन पर गहरा प्रभाव पड़ा क्यों कि इसमें भगतसिंह के मृत्यु को गले लगाने की चाह का वर्णन बहुत सुंदर ढंग से हुआ था। मैं ने भारत की स्वतंत्रता पर मर–मिटने वाले वीरो और शहीदो के बारे में पढ़ना प्रारंभ किया। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, चंद्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक उल्लाह,

सुभाषचंद्र बोस, वीर सावरकर आदि अनेक वीरो एव शहीदो के सघर्षमय और कष्टमय जीवन को पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

वास्तव मे भारत का इतिहास अनेक बलिदानियो और कुर्बानियों से भरा है। प्राचीनकाल से ही भारत के वीरो ने देश की स्वतन्त्रता और अखडता के लिए विदेशी आक्रमणकारियो का सामना किया और अपने प्राणो की आहुति दी। इसी शृखला में डॉ. शीलम् वेकटेश्वर राव ने सन् 1748 से 1947 तक दो सौ वर्षों का इतिहास "भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम . एक झलक" के नाम से लिखा है। इतिहास घटनाओ का विवरण मात्र नही होता बल्कि उसमे तत्कालीन युग की चेतना भी समायी होती है। पूर्वाग्रह या सकीर्ण दृष्टिकोण और प्रतिबद्धता से लिखा गया इतिहास कभी भी सही तस्वीर प्रस्तुत नही कर पाता। डॉ. शीलम ने बड़े परिश्रम से प्रमाणो की खोज करके एक जागरूक और सचेत लेखक के रूप मे यह इतिहास लिखा है। यह काल अंग्रेजी शासन का है जिसने व्यापारी के रूप में भारत मे घुसपैठ किया और अपनी कुचालो से भारत पर अपना अधिकार जमा लिया। यह ऐसा युग था जिसमें समूचा देश–पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक–स्वतन्त्रता–सग्राम मे कूद पड़ा था। बच्चा, बूढ़ा, जवान, स्त्री–पुरुष, छोटा–बड़ा सभी अपने प्राणो की परवाह न कर इन फिरंगियों से भारत माता को आज़ाद कराने के लिए कटिबद्ध था। अहिंसा से या हिंसा से देश को परतंत्रता की बेड़ियो से मुक्त कराना उनका लक्ष्य था। लेकिन यह भी सत्य है कि महात्मा गांधी द्वारा अहिंसा के माध्यम से संचालित स्वतंत्रता–संग्राम भी अपना विशेष महत्त्व लिये हुए है जिसमे स्वतन्त्रता–सेनानियो को ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा और विभिन्न प्रकार के कष्ट झेलने पड़े। वास्तव मे इन सब के महान् योगदान से भारत स्वतंत्र हुआ।

दो सौ वर्ष के इस इतिहास को डॉ. शीलम् ने सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत किया है लेकिन सभी घटनाओ और उनसे सबद्ध महापुरुषो का वर्णन अवश्य मिलता है। डॉ. शीलम् बधाई के पात्र हैं। डॉ. शीलम् का यह प्रयास तभी सफल होगा जब देश के इतिहासकार इस पुस्तक से प्रेरणा लेकर स्वतन्त्रता–

संग्राम के लिए एक प्रामाणिक एवं वृहत इतिहास की रचना करें ताकि हमारी युवा पीढ़ी और भावी पीढ़ी इन वीरों के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर सके और भारत के उत्थान, अखंडता एवं विकास में अधिकाधिक योगदान दे सके।

डॉ. शीलम् को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा,
ख़ैरताबाद, हैदराबाद-500 004

नई दिशा

(डॉ). श्यामसिंह शशि

इतिहास लिखे नही लिखवायें जाते हैं और इसीलिए घटनाचक्र के वर्णन मे कही अतिरंजन रहता है या कभी पूर्वग्रहों का समावेश। फलत: आज भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की आवश्यकता है– विशेषरूप से स्वतत्रता–संग्राम की प्रस्तुति की। 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम : एक झलक' नामक पुस्तक इस दिशा मे निःसन्देह एक भगीरथ प्रयत्न है। विद्वान् लेखक डॉ॰ शीलम् वेंकटेश्वर राव ने स्वतंत्रता-संग्राम के भूले–बिसरे शहीदो पर न केवल गहन अनुसंधान किया है बल्कि इतिहास लेखकों के लिए एक नई सोच भी दी है। एक नया चिन्तन दिया है और एक नवीन दिशा को उजागर किया है।

पुस्तक के सात अध्यायो मे पिरोयी घटनाओं के धागे इतिहास का ताना–बाना बुनते हैं जिनमे अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिरोध तथा विद्रोह के तथ्यात्मक विवरण गुम्फित हैं। पुस्तक में सन् 1857 का स्वाधीनता–संग्राम प्रामाणिक रूप लिये है तथा प्रवासी भारतीयो द्वारा इस संग्राम मे उल्लेखनीय योगदान पर एक पृथक अध्याय दिया गया है। गाँधी-युग से सुभाष-युग तक के इतिहास की ज्ञानवर्द्धक सामग्री रोचक ढग से दी गई है।

पुस्तक पढ़ते समय एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित होता है और वह यह कि इस पुस्तक में आदिवासी वीरों की शौर्य गाथाएं भी वर्णित हैं। वैसे इस विषय पर इतिहास अभी तक मौन रहा है। आज अनेक अनछुए-अलिखित पृष्ठ शोध की बाट जोह रहे हैं। यह कृति ऐसी अनेक नई दिशाओं तथा संभावनाओं को जन्म देती है।

(डॉ). श्यामसिंह शशि
निदेशक, सूचना एवं प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली-110 002.

*अनुसंधान
बी-4/245
सफदरजंग एनक्लेव
नई दिल्ली-110 029.

अभिनंदन

धोण्डीराव जाधव

भारत के गौरव मण्डित विप्लवात्मक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विद्वान् लेखक डा. शीलम् वेकटेश्वर राव ने अपनी पुस्तक "भारतीय स्वतंत्रता संग्राम : एक झलक" मे जिन नये आयामों का उन्मेष किया है, वह न केवल श्रमसाध्य है अपितु खोजपूर्ण भी है । उनका यह प्रयास सराहनीय है और इसके लिए वे बधाई के पात्र भी है ।

जिन देशभक्त क्रान्तिकारियो ने भारतमाता की दासता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए सुख–सुविधाओं की परवाह किय बिना अपने अमूल्य जीवन को न्यौछावर कर दिया, वे वास्तव मे वन्दनीय है । उन क्रान्तिकारियों ने मृत्यु के मोड़ पर खड़े होकर भी मस्तमोला बनकर देशवासियो को स्वराज्य मत्र फूंकते हुए कहा था— "खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते है ।" उनका यह बलिदान देशवासियों के लिए प्रेरणा स्रोत बना ।

वास्तव में उन अमर शहीदों ने भारत जैसे खुशहाल और हरे-भरे उद्यान को फिरगियो द्वारा उजाड़कर बीरान बना दिया गया था, अपने रक्त की धारा से सीचकर उसमें फिर से एक ऐसा नव बहार ले आया है जो विश्व के इतिहास मे बेजोड है । अनेक बेनाम स्वतंत्रता–सेनानियो ने उन विदेशी लुटेरे जो ऊपर से सुसभ्य-से लगते थे, उनके स्वप्नों को चकनाचूर कर दिया और साम्राज्य-वादी शोषण से उत्पीड़ित देश की जनता में स्वाभिमान एवं स्वराज्य की चेतना जागृत कर दी थी ।

पर विडम्बना और दुःख की बात तो यह है कि कुछ नेताओं ने उन अमर शहीदो के बारे मे भ्रम फैलाकर जनता के सामने उनकी एक गलत तस्वीर पेश की और उनके कार्यो की निन्दा की । सदा उनकी उपेक्षा की गई और

उन्हें अपमानित भी किया गया। उन बहादुर क्रान्तिकारियो मे कायरता पैदा करने और उन्हे पंगु और नपुंसक बनाने की चेष्टा भी की गई, किन्तु उन आजादी के परवानो ने इन बातो की कभी भी परवाह नही की, क्यो कि उन्हें बस अपने उद्देश्यो के प्रति कुर्बानियों से मतलब था :—

"तेरा काम है जलना परवाने, चाहे शमा जले या न जले।"

प्रसन्नता की बात है कि प्रस्तुत पुस्तक मे डा शीलम् ने उन अमर शहीदो के वीर कारनामो को बहुत अच्छे ढंग से और पूरी निष्ठा के साथ उजागर किया है। साथ ही अब तक इतिहास मे उपेक्षित उन आदिवासियो, गिरिजनो, वनवासियो, साधु-सन्तो, वहाबो, कूका सम्प्रदायो आदि जिन्होने "स्वतंत्रता संग्राम-यज्ञ" मे अपने प्राणो की आहुति दी थी, उन सब को प्रकाश मे लाकर स्तुत्य कार्य किया गया है।

पुस्तक में अनेक प्रमाणो के द्वारा यह सिद्ध किया गया कि अंग्रेज पक्के लुटेरे, मक्कार, बर्बर और क्रूर हत्यारे थे। भारत में उन्होंने निरीह जनता एवं देश भक्तो के खून से जिस प्रकार निर्ममतापूर्वक होली खेली थी, उसका उदाहरण विश्व के इतिहास मे अन्यत्र नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त भारत मे सशस्त्र क्रान्ति क्यो हुई ? उन सभी कारणो का विस्तारपूर्वक विश्लेषण करके लेखक ने पुस्तक मे चार चाद लगा दिये हैं।

स्वतंत्रता-सग्राम में प्रवासी भारतीयो ने भी प्राणप्रण से आगे बढकर ब्रिटिश राज्य की नीव हिला दी और उससे बढकर नेताजी सुभाष बोस ने द्वितीय विश्व युद्ध के समय आजाद हिन्द फौज द्वारा जो बाकायदा युद्ध छेड़ा था, वे अत्यन्त रोमांचक अध्याय है। ऐसा लगता है सन् 1748 मे क्रान्ति की जो चिनगारी सुलगी थी, वह धीरे-धीरे फैलती हुई सन् 1945 मे विश्व व्यापी भयानक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। फलत: देश आजाद हो गया।

वीर क्रान्तिकारियो ने स्वधर्म, स्वसंस्कृति, स्वराज्य, समाजवाद की रक्षा हेतु जिस बहादुरी से अपनी शहादत दी थी, वह सब कुछ भारत की भावी पीढी के लिए प्रेरणा स्रोत नहीं तो और क्या है? उनकी शहादत कदापि बेकार नही गयी है।

डॉ. शीलम ने स्वतंत्रता संग्राम की बिखरी हुई घटनाओं, इतिहास के अन्धकार में विलीन शहादतों, भूली–बिसरी स्मृतियों, हिंसा एवं अहिंसा के परस्पर विरोधी सूत्रों का ताना–बाना बुनकर क्रमबद्ध स्वतंत्रता संग्राम की दो सौ वर्षों की एक ऐतिहासिक पुस्तक अपने निष्पक्ष निष्कर्षों द्वारा जिस रोमांचक और रोचक शैली में और औपन्यासिकता के साथ प्रस्तुत किया है कि एक बार पुस्तक पढ़ने के लिए हाथ में ली जाए तो उसे छोड़ा नहीं जा सकता। यही पुस्तक की बड़ी उपलब्धि है। अन्त में इस पुस्तक लेखन के लिए मैं हृदय से डॉ. शीलम् का अभिनन्दन करता हूँ और आशा करता हूँ कि हिन्दी जगत में इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत होगा।

धोण्डीराव जाधव
स्वतंत्रता सेनानी व परीक्षा मंत्री
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद।

दिनांक 15–10–1990
निवास : 'सरस्वती सदन'
विकाराबाद–501 101.

अभिमत

श्री राजवीर आर्य

डॉ. शोलम् वेंकटेश्वर राव की नवीनतम् पुस्तक "भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम : एक झलक" (1748-1947) स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का एक बहुमूल्य प्रामाणिक दस्तावेज है। विद्वान् लेखक ने बड़े परिश्रम के साथ, अनेक महत्वपूर्ण तथ्य जो अन्धकार मे दबे पडे थे, खोज बीन कर उन्हे उजागर किया है और दो सौ वर्षों के स्वतंत्रता-संग्राम को क्रमबद्ध रूप प्रदान कर यह सिद्ध किया है कि शुरू से देशभक्तो का संकल्प एवं लक्ष्य एक था। उसी मार्ग पर चलकर क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिख सभी लोगों ने देश की आज़ादी के लिए अपनी शहादत दी।

पुनर्जागरण-काल में राजाराम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि महापुरुषो ने राष्ट्रीय चेतना के जो बीज बोये थे, उन्हे देशभक्त वीर क्रान्तिकारियो ने अपने रक्त से सींचकर अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलान्वित किया था। क्रान्तिकारियो की भावनाओं एवं उनके साहसिक कार्यों के वर्णन को इस पुस्तक में पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

इस दृष्टिकोण से भी यह पुस्तक अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हो जाती है कि आज की नयी पीढ़ी स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास से अनभिज्ञ है, विशेषकर देशभक्तो के त्याग एवं बलिदानों से, ऐसी स्थिति मे उस रक्तरंजित इतिहास से साक्षात्कार कराने में यह पुस्तक सक्षम है। अतएव स्वैच्छिक संस्थाओं से मैं अनुरोध करूंगा कि नयी पीढ़ी में राष्ट्रीय चरित्र के विकास हेतु

वे अपनी सस्था को उच्च परीक्षाओ के पाठ्यक्रमो मे इस पुस्तक को स्थान प्रदान करे ।

आजादी से पूर्व निजाम राज्य मे निरकुश शासन के विरुद्ध उन दिनो जो आर्य सत्याग्रह एव स्वतन्त्रता-सग्राम चल रहा था, स्वय लेखक अपने बाल्य-काल मे पुराने शहर हैदराबाद के आर्य वीरदल के सक्रिय सदस्य के रूप मे उस आन्दोलन से जुड़कर उन्होने भूमिगत कार्यों मे भाग लिया था । अतएव उन्ही सस्कारो और देश भक्त क्रान्तिकारियो के प्रति श्रद्धा-स्वरूप प्रस्तुत पुस्तक उनके चरणो मे समर्पित की गयी है । मैं डॉ भीलम् को इस सद्प्रयास के लिए बधाई देता हूँ । स्वय लेखक हमारे पूर्व हैदराबाद राज्य आर्य स्वतन्त्रता-सेनानी सघ के मत्री भी हैं । मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ है, वे स्वतन्त्रता सग्राम सम्बन्धी महत्वपूर्ण साहित्यलेखन क्षेत्र मे आगे बढ़ते जाएँ और भगवान् उनकी लेखनी में और शक्ति प्रदान करे । वास्तव मे डॉ. भीलम् वेकटेश्वर राव की सर्ज-नात्मक प्रतिभा एवं उनकी इस नवीन पुस्तक पर संघ को गर्व है । इस पुस्तक को मैं सघ की एक उपलब्धि मानता हूँ ।

जी. राजवीर आर्य

अध्यक्ष

पूर्व हैदराबाद राज्य आर्य स्वतंत्रता

सेनानी संघ, (आ.प्र.)

तथा

साहित्यमत्री, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

दिनांक 17 अक्तूबर 1990

निवास : 11-22-51 नरेन्द्रनगर,

वरगल-506 002.

दो शब्द

डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै

डा. शीलम् वेंकटेश्वर राव की पुस्तक 'भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम : एक झलक' भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व दो शताब्दियो तक स्वाधीनता-सग्राम के अमर शहीदो के सघर्षरत जीवन, स्वतन्त्रता की ललक और स्वतंत्रता की अमर ज्योति जगाने के प्रयासो का अत्यन्त प्रामाणिक दस्तावेज है। लेखक ने अनेक प्रयासो द्वारा यह दिखाया है कि सपूर्ण भारत इस सशस्त्र क्रान्ति से जुडा था और देश-प्रेमियो ने स्वतन्त्रता-यज्ञ मे हँसते-हँसते अपने प्राणो की आहुति देकर स्वतन्त्रता का अलख जगाया था। पर आज तक स्वतन्त्रता-यज्ञ का समग्र इतिहास प्रस्तुत नही हुआ, तब तक के इतिहासो मे अनेक वीरव्रती कर्मठ मौन साधक उपेक्षित रह गये, विशेषकर दक्षिण भारत मे इस दिशा मे जो कार्य हुए थे और जिन शहीदो ने आत्मोत्सर्ग किया था, उनका नाम तक स्मरण नही किया गया। इन अमर सेनानियो की उपेक्षा कर के जो इतिहास रचे गये वे अधूरे और पक्षपात पूर्ण रहे। भारतीय स्वतंत्रता-सग्राम का समग्र इतिहास-लेखन कष्टसाध्य कार्य है और यहाँ निष्ठावान, उत्साही, अध्ययनशील एव पूर्वाग्रहरहित विचारक तथा चिन्तक साहित्यकार ही न्याय कर सकता है।

मुझे प्रसन्नता है कि डॉ. वेंकटेश्वर राव ने अपने विषय के साथ पूरा न्याय किया है। उन्होने अंधकार मे पड़े रहे अनेक देश-प्रेमी शहीदों को प्रकाश

में लाकर उन पवित्रात्माओ के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है । केरल के वीर दलवा वेलुतम्पी, तमिल प्रदेश के निर्भीक साहसी कट्टबम्मन, आंध्र की वन्य जातियो को सगठित कर ब्रिटिश शासन सत्ता को विकंपित करने वाले स्वतंत्रता सेनानी अल्लूरि सीतारामराजु और कर्नाटक की वीरांगना रानी चेन्नम्मा ने जननी जन्मभूमि की स्वतत्रता के लिए जो आत्माहुति दी है, वह किसी भी दृष्टि से कम महत्त्व की नही है । भारत के इतर भागो के स्वतंत्रता-सेनानियों के समकक्ष इन्हे स्थान देकर डा. वेकटेश्वर राव ने अपनी व्यापक दृष्टि तथा निष्पक्ष विषय–प्रतिपादन का परिचय दिया है, जो अवश्य ही स्तुत्य है ।

सात अध्यायो मे विभक्त इस ग्रथ मे स्वतत्रता–सग्राम की पृष्ठभूमि–ब्रिटिश शासन के अत्याचारो, दमन–नीति पाशविक कुकृत्यो का पर्दाफाश करने के साथ-साथ गीता के इस देश के निष्काम कर्मयोगियों के अदम्य साहस तथा जननी जन्मभूमि के लिए सर्वात्म समर्पण की भावना का ऐसा मार्मिक चित्र उतारा गया है कि लेखक को अपने इस प्रयास मे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है । लेखक के निष्कर्ष तथ्यात्मक एवं प्रामाणिक हैं और विषय–प्रतिपादन उसकी पर्यवेक्षण दृष्टि, नीर–क्षीर-विवेचन की क्षमता, व्यापक अध्ययन एव सामग्री–संकलन मे निष्ठा का आभास मिल जाता है । वास्तव मे ग्रंथ के लेखक डॉ. वेकटेश्वर राव ने एक अभाव की पूर्त्ति भी की है और मुझे विश्वास है कि उनका यह इतिहास नयी पीढ़ी मे देश–प्रेम की उमंग भरने में सहायक सिद्ध होगा ।

पूरी आशा है कि उत्तर–दक्षिण के सहृदय पाठक इस श्रमसाध्य कृति का स्वागत करेगे ।

डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै

सचिव,

दक्षिणांचलीय साहित्य समिति,

हैदराबाद ।

20–10–1990.

190, स्टेट बैंक आफ़ इण्डिया कालोनी

गांधीनगर, हैदराबाद-500 380.

दो ज़ब्तशुदा गीत

स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान हमारे स्वतंत्रता-सेनानियों ने जनता को जोश दिलाने के लिए कई गीत लिखे और उनका प्रचार किया। ब्रिटिश सरकार ने इन गीतों को ज़ब्त कर दिया। उन गीतों में यहाँ केवल दो गीत दिए जा रहे हैं :

वतन के वास्ते

वतन के वास्ते बस जान घुला देंगे हम,
गले को शान से फांसी पे झुला देंगे हम।
भीष्म-सन्तान हैं, कुत्तों की मरेंगे क्या मौत ?
जिस्म को शौक़ से बाणों पे सुला देंगे हम।
रंज झेलेंगे मुसीबत भी सहेंगे लेकिन,
गले से तौक गुलामी का खुला देंगे हम।
खातमा जुल्मों का कर देंगे, यह बीड़ा है लिया,
न्याय और सत्य के बस फूल खिला देंगे हम।
नौकरो ! और सता लो कि बस अरमां न रहे,
चौकड़ी सारी रोज़ भुला देंगे हम।
तुम तो इन्सान हो इन्सान की हस्ती क्या है ?
इन्द्र भगवान का आसन भी हिला देंगे हम।

ठा० शान सिंह वर्मा
सन् 1922

आह्वान

कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखायेंगे,
आज़ाद ही हो लेगे, या सर ही कटा देंगे ।
हटने के नही पीछे, डर कर कभी जुल्मों से,
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढा देंगे ।
बेशस्त्र नहीं है हम, बल है हमें चरखे का,
चरखे से ज़मीं को हम, ता चर्ख गुजा देंगे ।
परवा नही कुछ दम की, ग़म की नहीं, मातम की,
है जान हथेली पर, एक दम में गवां देगे ।
उफ़ तक भी जुवां से हम हरगिज न निकालेंगे,
तलवार उठाओ तुम, हम सर को झुका देगे.
सीखा है नया हमने लडने का यह तरीका,
चलवाओ गन मशीनें हम सीना अड़ा देंगे ।
दिलवाओ हमें फासी, ऐलान से कहते हैं,
खू से ही हम शहीदों के, फौज बना देगे ।
मुसाफ़िर जो अंडमान के, तूने वनाये, ज़ालिम,
आज़ाद ही होने पर, हम उनको बुला लेंगे ।

अशफ़ाकउल्ला खां

सन् 1930

प्राक्कथन

०

भारतीय सशस्त्र स्वाधीनता-सग्राम अत्यन्त रोमाचक, विस्मयकारक एव गौरवकारक है। दो शताब्दियो का यह संग्राम न केवल, भारतीय इतिहास की, अपितु विश्व इतिहास की अपूर्व एवं अविस्मरणीय एक घटना है। देश-प्रेमियो ने जिस बहादुरी और अदम्य साहस के साथ अग्रेजो के साथ सघर्ष किया और जिस अपूर्व त्याग एव बलिदान का परिचय दिया, वह अनुपम एव अन्यत्र दुर्लभ है। इस सग्राम की सब से बडी उपलब्धि यही है कि उस समय इस सग्राम को यूरोप और एशिया की तमाम स्वाधीनता प्रेमी जनता की सहानुभूति प्राप्त रही और उसने भारत मे राष्ट्रवाद को जन्म दिया। आज देश की नयी पीढी यदि किन्ही घटनाओं मे रसमग्न, उत्साहित, रोमांचित एव विस्मित होती है, तो वे हैं भारतीय सशस्त्र संग्राम की घटनाएं। निस्सन्देह यह सग्राम समस्त भारतीयो के लिए देश-भक्ति का प्रेरणा-स्रोत और गर्व-मूलक है।

राष्ट्रवादियो का भारतीय कर्मवाद में अटूट विश्वास था। "गीता" और 'वन्देमातरम्' गीत उनके लिए प्रेरणा-स्रोत रहे। क्रान्तिकारी तो बस आजादी के दीवाने थे, उन्हे केवल अपने प्राणों का बलिदान देने से मतलब था :—

"दिल से न निकलेगी मरकर भी वतन-उल्फ़त
मेरी मिट्टी से भी खुशबू-ए-वतन आया करेगी॥"

भगतसिह, राजगुरू, सुखदेव

क्रान्तिकारी मिट सकता था परन्तु झुक नही सकता था। वे देश-भक्त धन्य हैं, जिन्होने अपने बलिदान के रक्त से देश के उपवन को अपनी शहादत के लाल गुलाबो से सुशोभित एव सुवासित, गौरवान्वित किया है।

सशस्त्र स्वाधीनता-सग्राम अत्यन्त व्यापक और सुदीर्घ रहा। स्वाधीनता सग्राम सम्बन्धी अनेक साहसिक घटनाएं और वीर स्वाधीनता सेनानियों के नाम और कार्य अभी भी अन्धकार मे हैं। समय बीतने के साथ–साथ उन पर से अन्धकार की परते भी हटती जाएगी और स्वाधीनता–संग्राम के इतिहास में और चार चाँद लग जायेंगे।

स्वतंत्रता–संग्राम के संदर्भ में हम 19 वी सदी के पुनर्जागरण–युग को विस्मृत नहीं कर सकते। इस युग ने स्वतत्रता-सग्राम के लिए पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। राष्ट्रीय चेतना को इस युग ने अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलान्वित बनाया था। राजाराममोहनराय, स्वामी विरजानन्दजी महाराज, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि मनीषियो ने धार्मिक, सास्कृतिक सामाजिक पुनरुद्धार द्वारा भारत के अतीत के गौरव को फिर से प्राप्त करने का बीडा उठाया था। फलस्वरूप ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन व थियोसाफिकल सोसाइटी आदि सस्थाओ के आविर्भाव से नवजागरण पैदा हुआ और राष्ट्रीय भावना की आधार भावभूमि तैयार हुई।

स्वतंत्रता–सग्राम मे आर्यसमाज की विशेष उल्लेखनीय भूमिका रही है। इस धरती पर आर्यसमाज का अवतरण क्रान्ति के गर्भ से हुआ। आन्दोलन, संघर्ष एवं क्रान्ति आर्यसमाज की जन्मजात प्रवृत्तियाँ रही हैं तो निःस्वार्थ राष्ट्र-सेवा, त्याग और बलिदान उसके दिव्य गुण। आर्यसमाज के सस्थापक एव प्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती सामाजिक, सास्कृतिक, शैक्षणिक एंव राजनीतिक क्रान्ति के अग्रदूत थे। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता सग्राम की नींव रखी और देश को "स्वशासन" एव "वेदो की ओर लौटो" का नारा दिया। यह उल्लेखनीय है कि सन् 1857 के स्वतंत्रता–सग्राम में महर्षि दयानन्दजी के गुरु स्वामी विरजानन्दजी महाराज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

स्वामी विरजानन्द जी महाराज युगद्रष्टा एव युग-स्रष्टा भी थे। वे बहु-भाषा कोविद थे। सन् 1857 के स्वतत्रता-सग्राम से पूर्व उन्होंने महत्त्वपूर्ण वैचारिक भूमिका निभायी थी जिसके विषय मे प्रायः इतिहासकार अनभिज्ञ हैं। सन् 1856 मे मथुरा में आयोजित क्रान्तिकारियो की एक गुप्त सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने स्वतत्रता-सेनानियो का आह्वान् किया था–

"मैं इस वाशिन्दगान हिन्द से इलतजा करता हूँ कि जितना वह अपने मजहब से मुहब्बत करते है, उतना ही इस मुल्क के हर इन्सान का फर्ज है कि वह वतनपरस्त बने और मुल्क के हर वाशिन्दे को भाई-भाई जैसी मुहब्बत करे। जब तुम्हारे दिलो के अन्दर वतनपरस्ती आ जायेगी तो इस मुल्क की गुलामी यहाँ से खुद-ब-खुद जुदा हो जावेगी। हिन्द के रहनेवाले सब आपस मे हिन्दी भाई हैं और बहादुरशाह हमारा शहशाह है।" यह गुप्त-सभा एक ऐतिहासिक सभा थी जिसमे नाना साहिब पेशवा, मौलवी अजीमुल्ला खान, रगूबाबू, शहशाह बहादुर शाह का शाहजादा आदि अनेक चोटी के स्वतन्त्रता-सेनानी उपस्थित थे। वास्तव मे यह प्रसग स्वतन्त्रता-सग्राम के इतिहास का एक अविस्मरणीय स्वर्णिम अध्याय है।

उसी प्रकार भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम के इतिहास मे निजामराज्य मे आर्य सत्याग्रह का आन्दोलन एक अविस्मरणीय स्वर्णिम अध्याय है जिसमे न केवल हैदराबाद राज्य के आर्य बन्धुओ ने, अपितु सारे देश के आर्य बन्धुओ ने सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के नेतृत्व मे भाग लिया था। सन् 1938-39 मे आर्यसमाज ने यदि निरकुश और धर्मान्ध निजाम शासक के सत्याग्रह के माध्यम से प्रतिरोध न किया होता तो सन् 1948 मे हैदराबाद राज्य की मुक्ति न हुई होती और न भारत सघ मे उसका विलयनीकरण ही हुआ होता! निजामराज्य मे स्वतन्त्रता-आन्दोलन स्वय एक स्वतंत्र व विस्तृत रोमांचक विषय है जिसका अलग से एक पुस्तक के रूप मे क्रमबद्ध प्रामाणिक इतिहास लिखने की आवश्यकता है।

प्रस्तुत पुस्तक "भारतीय सशस्त्र स्वाधीनता-सग्राम एक झलक" में उन आदिवासियो, गिरिजनो, वनवासियो के द्वारा सशस्त्र, क्रान्ति के नये अध्यायो को जोड़ने का प्रयास किया गया है, जो इतिहास में आज तक उपेक्षित रहें हैं। अनेक अज्ञात विषयो को उजागर करने का भी प्रयास किया गया है। उसी प्रकार सशस्त्र, स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास का व्यवस्थित ढग से पहली बार काल-विभाजन करने का भी प्रयास किया गया है। यह भी दावा नही किया जा सकता है कि इस पुस्तक मे क्रान्ति का समग्र इतिहास आ गया हो। इन प्रयासो मे कहाँ तक सफलता मिल सकी है, इसका निर्णय विज्ञ-पाठक ही करेंगे।

आजादी का महत्त्व क्या है और आजादी को प्राप्त करने के लिए भारतीयो को कितना मूल्य चुकाना पडा– इसे जानने के लिए नयी पीढी को "सशस्त्र स्वाधीनता के इतिहास" का अध्ययन करना, अत्यन्त उपादेय एवं अपरिहार्य है। आज इस विषय की शिक्षा पाठ्यक्रम मे एक विषय बनाने की भी आवश्यकता है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए मानव ससाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग से अनुदान मिला है। एतदर्थ मैं इस मन्त्रालय का हृदय से आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त पूर्वहैदराबाद राज्य आर्य स्वतन्त्रता सेनानी संघ आन्ध्र प्रदेश का भी आभारी हूँ जिसके प्रोत्साहन एव अनुदान प्राप्त हुए हैं।

उच्च शिक्षा एवं शोध सस्थान, हैदराबाद के डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी प्रोफेसर एव अध्यक्ष हिन्दी विभाग के निर्देशन मे पुस्तक–प्रकाशन का कार्य सम्पन्न हुआ है। उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस पुस्तक के लेखन मे जिन स्वतन्त्रता–सेनानियो की प्ररणा एव महत्त्वपूर्ण सामग्री मिली है, उनमें श्रद्धेय विद्याधर गुरुजी, अध्यक्ष, दक्षिण भारत स्वतन्त्रता सेनानी सघ एव आदरणीय श्री धोण्डीराव जाधव स्वतन्त्रता सेनानी एव परीक्षामन्त्री हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त सार्व-देशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली के वरिष्ठ उपाध्यक्ष एवं स्वतंत्रता–सेनानी श्रद्धेय पं. वन्देमातरम् रामचन्द्रराव जी, पूर्व हैदराबाद राज्य आर्य स्वतन्त्रता सेनानी सघ के अध्यक्ष श्री राजवीर जी आर्य, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति हैदराबाद के सचिव डॉ एच. पी. कुट्टनपिल्लै तथा बन्धुवर ईश्वरलाल ऊँटवाल का प्रोत्साहन एव सहयोग मिला है। इन सभी महानुभावो के प्रति मैं अपने हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

जिन सहृदय मित्रो एव जिन विद्वान् लेखकों की पुस्तको एव लेखो से सहायता मिली है, उनके प्रति भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव

हैदराबाद (आ प्र.)
विजयदशमी, 29–9–1990

विषय-सूची

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन (एक झलक)

(1748 से 1947 तक)

अध्याय–1 . विषय–प्रवेश : काल-विभाजन :

(1748 से 1947 तक) पृष्ठ 1–27

विषय–प्रवेश, एक नूतन इतिहास का शुभारम्भ, जातीय विप्लव : ज्वालामुखी, अंग्रेज सैनिकों द्वारा निर्मम अत्याचार, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत का शासन प्रबन्ध, राष्ट्रीय उद्योगों की तबाही, भारतीय किसानों की तबाही, भारतवासियों की सम्पत्ति को हड़पना, उपसंहार काल-विभाजन ।

अध्याय–2 : अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिरोध व विद्रोह :

(1748 से 1848 तक) पृष्ठ 28–70

मुगलबादशाहों की अदूरदर्शिता, काल–कोठरी, अंग्रेज राज्य की स्थापना, महाराष्ट्र मे राष्ट्रीयता का उदय, आन्ध्र मे राष्ट्रीयता का उदय, कर्नाटक मे राष्ट्रीयता का उदय, केरल मे राष्ट्रीयता का उदय, मद्रास में राष्ट्रीयता का उदय, पंजाब मे राष्ट्रीयता का उदय, बिहार मे राष्ट्रीयता का उदय, आसाम मे राष्ट्रीयता का उदय, उड़ीसा मे राष्ट्रीयता का उदय, गुजरात मे राष्ट्रीयता का उदय, बगाल मे राष्ट्रीयता का उदय, अंग्रेजो के विरुद्ध छुटपुट प्रतिरोध एव विद्रोह . 1748–1848, निष्कर्ष ।

अध्याय–3 : सन् 1857 का स्वाधीनता-संग्राम :

(1849 से 1909 तक) पृष्ठ 71–118

सशस्त्र क्रान्ति के कारण, राष्ट्रीयता का स्रोत धार्मिक प्रवचन, सेना मे असन्तोष, वनवासी वीरो द्वारा सशस्त्र क्रान्ति, राजा–महाराजाओ का स्वाधीनता–सग्राम, नाना साहिब, रावतुलाराम, कुँवरसिंह बाबू, वीरागना लक्ष्मीबाई, बहादुरशाह जफर, सन् सत्तावन : सशस्त्र क्रान्ति की विशेषताएँ, स्वतन्त्रता–संग्राम की विफलता के कारण, क्रान्ति का प्रभाव, वहाबी क्रान्ति एव कूका विद्रोह, क्रान्ति की छुटपुट घटनाएँ।

अध्याय–4 : प्रवासी भारतीयों द्वारा स्वाधीनता-संग्राम :

(1909 से 1920 तक) पृष्ठ 119–146

गदरपार्टी की स्थापना, क्रान्ति का अग्रदूत . गदर अखबार, गदर के लिए स्वदेश प्रस्थान, सिगापुर मे विजय, बर्लिन मे क्रान्तिकारियो का केन्द्र, काबुल में कार्यकारी सरकार की स्थापना, अरब मे क्रान्ति की योजना, विदेशो मे जिन्होने आज़ादी का अलख जगाया था, गदरपार्टी के नेता डॉ. लाला हरदयाल, कर्तारसिंह सराभा, श्यामजी कृष्णवर्मा, मदनलाल धीगरा, वीर सावरकर, गदर-आन्दोलन की विफलता के मुख्य कारण, गदर आन्दोलन की विशेषताएँ, होमरूल आन्दोलन, क्रान्तिकारियो के प्रेरणा स्रोत : तिलक, हृदय विदारक नर–संहार : जलियाँवाला बाग।

अध्याय–5 : त्रिकोणात्मक स्वाधीनता-संग्राम :

(1920 से 1939 तक) पृष्ठ 147–186

त्रिवेणी सगम, उदारवादीदल, गाँधीयुग, नेहरूयुग, नेहरू–रिपोर्ट, सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा गोलमेज सम्मेलन, स्वराज्यदल की स्थापना, स्वराज्यदल की सफलता, क्रान्तिकारियो का उग्रवादी आन्दोलन, उग्रवाद का स्वरूप, उग्रवादी–आन्दोलन, आन्ध्र मे अल्लूरि सीतारामराजु का विद्रोह, काकोरी–काण्ड, क्रान्तिकारियो का दर्शन, राष्ट्रीय अपमान का बदला, सशस्त्

क्रान्ति का स्वर्णिम अध्याय, प्रमुख क्रान्तिकारियो की शहादत, वाइसराय की ट्रेन को नीचे बम-विस्फोट, चिटगाँव मे विद्रोह, पलावर्स दरबार, कीर्ति पार्टी का विद्रोह, किशोर शानीजैलसिंह का साहसिक कदम, निष्कर्ष।

अध्याय-6 : आजाद हिन्द फौज का स्वाधीनता-संग्राम :

(1940 से 1947 तक) पृष्ठ 187-212

सुभाष-युग, कांग्रेस-अध्यक्ष के रूप मे सुभाषचन्द्र बोस, सविनय अवज्ञा आन्दोलन : व्यक्तिगत सत्याग्रह, सुभाषचन्द्र बोस, सन् '42 की जन-क्रान्ति, विदेशो में आजाद हिन्द फौज की स्थापना, रानी झाँसी रेजीमेंट की स्थापना, आजाद हिन्द सरकार की घोषणा, नेताजी के रेडियो-प्रसारणो का प्रभाव, गांधीजी का जेल मे उपवास, आजाद हिन्द सेना के अधिकारियो पर मुकदमे, सन् 1945-46 का नौसैनिक-विद्रोह, भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति, निष्कर्ष।

अध्याय-7 : सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम की उपलब्धि :

उपसंहार : पृष्ठ 213-220

सशस्त्र क्रान्ति का स्वरूप, क्रान्तिवादी आजादी-शमा के परवाने : सरफरोशी की तमन्ना, किस दल की उपलब्धि ?, सशस्त्र-क्रान्ति की उपलब्धि।

प्रथम अध्याय

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम

(एक झलक)

(सन् 1748 से 1947 तक)

विषय क्रम

1. विषय-प्रवेश
2. एक नूतन इतिहास का शुभारम्भ
3. जातीय विप्लव : ज्वालामुखी
4. अंग्रेज सैनिको द्वारा निर्मम अत्याचार
5. ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी : भारत का शासन-प्रबन्ध
6. राष्ट्रीय उद्योगो की तबाही
7. भारतीय किसानो की तबाही
8. भारतवासियों की सम्पत्ति को हड़पना
9. उपसंहार : काल-विभाजन

विषय प्रवेश

सशस्त्र राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास को आरम्भ करते समय यह प्रश्न हमारे सम्मुख उपस्थित होता है कि स्वाधीनता के लिए भारत में जो राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ उसका आरम्भ कब से माना जाए ? सन् 1857 मे जो क्रान्ति हुई और उससे पूर्व भी राजाओं, सामन्तों, सरदारों तथा नवाबो के जो युद्ध हुए, क्या वे सब राष्ट्रीय आन्दोलन नही थे ? सन् 1857 के विप्लव को कुछ इतिहासकार "मात्र सैनिक विद्रोह" मानते हैं और कुछ ने इसे सामन्त-सरदारो के युद्धों को "सत्ता के लिए वैयक्तिक सीमित लड़ाइयाँ" कहा है। उन सारे उथल-पुथल, क्रांतियो, विप्लवों इत्यादि घटनाओ पर आज की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो उस विशिष्ट काल के साथ न्याय नही हो सकेगा।

इस प्रश्न के समाधान के सम्बन्ध में एक और प्रश्न उठ खड़ा होता है कि हमारे देश में "राष्ट्रीय चेतना" का प्रादुर्भाव कब और कैसे हुआ ? आधुनिक काल में अंग्रेजों के विरुद्ध जिस प्रकार की "राष्ट्रीय चेतना" का उद्भव हुआ, उस प्रकार की चेतना अट्ठराहवी शती से पहले हमारे देश में नहीं के बराबर थी और न उस प्रकार की परिस्थितियाँ निर्मित हुई थी। "राष्ट्रीय चेतना" तो एक प्रक्रिया है जो मुख्य रूप में 19 वीं शताब्दी में विकसित हुई, परन्तु उसकी जड़ें 18 वी शताब्दी में ही जम गई थी। इससे पूर्व भी हमारे देश पर अनेक विदेशी आक्रमण हुए, परन्तु उस समय न किसी प्रकार की "राष्ट्रीय भावना" जनता में उदित हुई थी और न उस प्रकार की परिस्थितियाँ ही निर्मित हुई थी। यह भावना तो आधुनिक युग की देन है और विशेषकर अंग्रेजों के द्वारा सत्ता हीययाने के बाद से ही उस तरह की चेतना का उदय हुआ।

सन् 1756 से 1857 तक के कम्पनी के साम्राज्यवादी शोषण के इतिहास में ब्रिटिश विद्वानों द्वारा धीरे-धीरे सांस्कृतिक परिवर्तन लाने का जो

थोडा बहुत प्रयास हुआ था, वह छोटा प्रयास होते हुए भी निस्सन्देह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। जैसा कि सरदार के. एम पनिक्कर का कथन है, "बक, विलियम जोन्स तथा मेकाले सांस्कृतिक चेतना के वे ब्रिटिश प्रतीक हैं, जिनसे प्रेरित होकर राजाराममोहन राय, दादाभाई नौरोजी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा दयानन्द सरस्वती ऐसे भारतीय नवरत्नों के योग से सांस्कृतिक पुनर्जागरण सम्भव हो सका, राष्ट्रीय आत्म–सम्मान जागा और आधुनिक भारतीयता ने जन्म लिया।"[1]

23 जून 1757 में अंग्रेजी ने प्लासी युद्ध में विजयी होकर अपने साम्राज्य की नीव डाली थी, ठीक उससे एक सौ साल बाद 23 जून 1857 को नाना साहब के नेतृत्व मे क्रान्तिकारियों ने कानपुर में उस अपमान का बदला लेकर अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कर दिया। नाना साहब का राज्याभिषेक "शास्त्रीय रीति से" ब्रह्मावर्त मे सम्पन्न हुआ। इस सम्बन्ध में प. नेहरू ने लिखा है : "यह सिर्फ फौजी बलवा ही नहीं था, बल्कि इन प्रदेशो मे अंग्रेजों के खिलाफ एक व्यापक सार्वजनिक विद्रोह था। यह विद्रोह बढकर घृणित विदेशी शत्रु के खिलाफ भारतीय स्वाधीनता के युद्ध में परिणत हो गया।"[2]

सन् 1756 से 1947 तक इन दो सौ वर्षों के अतराल में देश में जो समान धारणा हमें देखने को मिलती है, वह है : अग्रेज, भारतीयों के हित–चिन्तक नही हैं, सारे दु.खों के उत्पीड़क अग्रेज हैं। इसलिए अग्रेजो को भारत से मार भगाओ। जनता ने अनुभव किया कि 'स्वधर्म' की रक्षा के लिए 'स्वराज्य' प्राप्त करना अनिवार्य है। यह चेतना तब अंकुरित हुई जब 23 जून 1757 मे प्लासी के युद्ध मे षड्यंत्रों के द्वारा बगाल के नवाब को पराजित करके अधर्म की नीव पर अंग्रेज–साम्राज्य की स्थापना हुई। इस राष्ट्रीय चेतना ने धीरे–धीरे विप्लव की ज्वालामुखी का रूप धारण कर लिया और यह विप्लव सन् 1942 की "भारत छोड़ो" ओर "करो या मरो" सशस्त्र जन–क्रान्ति के रूप में विस्फोट हुआ।

---

1. हिन्दी विश्व कोष – खण्ड 2 · पृ. 43
2. पं. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक · पृ. 589.

अंग्रेजो का दानवी रूप तब प्रकट हुआ, जब 1770 में बंगाल, बिहार मे भयकर अकाल पडा था, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नौकरो ने अन्न के व्यापार पर एकाधिकार करके जनता के कष्टो को और बढ़ा दिया था। प्रसिद्ध इतिहासकार जयचन्द्र विद्यालंकार के अनुसार तीन करोड आबादी मे से एक करोड जनता उस दुर्भिक्ष मे खत्म हो गई थी। यह इतिहास की सब से अधिक भयानक और दर्दनाक घटना थी जिसमे भारतीय जन–मानस की आस्थाओ एवं आकांक्षाओ की जड़ो को हिला दिया था।

वीरसावरकर

कार्लमार्क्स और उनके साथी फ्रेडरिक एंगेल्स उन दिनों बडी सतर्कता तथा सद्भावना के साथ उपनिवेश भारत की स्थितियो एव यहाँ की जनता के संघर्षो का गहराई के साथ अध्ययन कर रहे थे। सन् 1857 के विप्लव के सम्बन्ध में उनका स्पष्ट अभिमत था– "सन् 1857 मे ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध भारत मे राष्ट्रीय विद्रोह उठ खडा हुआ। यह भारतीयो का स्वाधीनता–सग्राम था।"[1]

सुप्रसिद्ध विचारक व आलोचक डॉ. नामवरसिह का अभिमत अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आज सरकार और कुछ बुद्धिजीवी हमारे स्वतन्त्रता–संग्राम के इतिहास को गलत स्वरूप देने मे लगे हैं। बुद्धिजीवी अपने विचारो को आगे कर कुछ भी कहे, वास्तविकता यह है कि जनमत से झुककर सभी यह मानने को मजबूर हैं कि हमारी आज़ादी की लड़ाई सन् 1857 मे शुरू हुई थी। वीर सावरकर ने 1905 में ही इस बात को लिखा था कि 1857 का विद्रोह मात्र "सिपाही विद्रोह" नही था,

कार्लमार्क्स

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे में : पृ. 10

बल्कि स्वाधीनता संग्राम था। इससे यह सिद्ध तो जाता है कि सन् 1857 का विप्लव भारत का स्वाधीनता सग्राम था।

–:0.–

एक नूतन इतिहास का शुभारम्भ

यह कहा जाता है कि भारतीय समाज का अपना कोई इतिहास नही है। अगर कोई इतिहास है तो वह केवल राजा–महाराजाओं के युद्धों और विदेशी आक्रमणों और उनके द्वारा राज्य स्थापित करने का है, लेकिन जिसे जातीय गतिशील व्यक्तित्व कहा जाता है, उस समाज का अपना कोई इतिहास नही है। इस संदर्भ में कार्लमार्क्स ने अपने एक लेख मे, जो दिनांक 8 अगस्त 1853 में न्यूयार्क डैली ट्रिब्यून के अंक में प्रकाशित हुआ था, लिखते हैं– "भारतीय समाज का कोई इतिहास नही है, कम से कम कोई जाना हुआ इतिहास नही जिसे हम उसका इतिहास कहे, जिसने एक के बाद एक उस अपरिवर्तनशील और गतिहीन समाज पर जिसमे मुकाबला करने की क्षमता न थी, अपने साम्राज्य खड़े किये।" वास्तव मे "मुगल महान् की सर्वोच्च सत्ता को मुगल सूबेदारो ने तोड़ा, सूबेदारों को ताकत को मराठो ने तोड़ा, मराठो की ताकत को अफ़गानी ने, और जिस समम सब एक दूसरे के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे, उस समम अंग्रेज घुस आए और सब पर अधिकार कायम करने में सफल हो गए। देश न केवल, हिन्दुओं और मुसलमानो में, बल्कि कबीलों और जातियों मे भी बँटा हुआ था। ऐसे देश और ऐसे समाज का किसी दूसरे विजेता का शिकार हो जाना क्या अवश्यम्भावी नही था?"[1] फलतः भारत गुलाम बनने से नही बच सका। यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजो ने भारत को भारतीय फौज द्वारा गुलाम बना लिया था जिसका खर्च स्वय भारत देता था।

---

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे में : पृ. 108–109.

इधर सन् 1748 से 1947 तक के कालखण्ड में भारतीय समाज की जो तस्वीर उभर कर सामने आती है, वह उसकी अतीत की तस्वीर से बिल्कुल भिन्न है। साम्राज्यवादी शिकजे से विमुक्ति के लिए एक विजित समाज पहली बार सघर्ष के लिए उठ खड़ा हो जाता है। इस सशस्त्र क्रान्ति की योजना राजाओ, सामन्तो, सरदारो, नवाबो, सैनिको द्वारा बनाई गई थी, जिसमें देश की साधारण जनता, किसान और मजदूरो ने अपना सक्रिय सहयोग दिया था और अपनी अन्तिम सासो तक लड़कर अपने प्राणो की बलिदानी दी थी। इस क्रान्ति ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन, जिसका एक मात्र उद्देश्य देश को लूटना था, की जड़ो को तो उखाड़ फेंक दिया था लेकिन उसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शासन का अधिकार हो गया। इससे एक ऐसे जुझारू समाज की तस्वीर उभरती है, जो अपनी लीक से हटकर नये इतिहास की रचना करती है। इस सशस्त्र क्रान्ति की तुलना यदि किसी से की जा सकती है, तो वह है– ज्वालामुखी के विस्फोटो से। इन विस्फोटो और भूकम्पो द्वारा साम्राज्यवादी पर्वतराज की नीव पूरी तरह हिल गयी थी।

प्रश्न यह नही कि इस सशस्त्र क्रान्ति की उपलब्धि क्या थी ? महत्त्व की बात तो यह है कि एक गुलाम जाति ने अपने स्वाभिमान और स्वराज्य के लिए किस अदम्य साहस और वीरता के साथ लड़ी थी और उसी मार्ग पर चलकर उसने अपनी शहादत दी थी। अतएव इस क्रान्ति को मात्र "सैनिक विद्रोह" कहकर उसकी उपेक्षा नही की जा सकती जिसके दूरगामी परिणाम सामने आये थे। सच तो यह है कि अग्रेज जब से गद्दी पर बैठे थे, तभी से जनता में विद्रोह की चिनगारियाँ सुलग रही थी। यही कारण था कि सन् 1756 से 1856 के काल–खण्ड मे देश भर में अग्रेजी राज्य के विरुद्ध 40 " भी अधिक बार विद्रोह की आग भडकी थी।

1857 से पहले बगाल मे विद्रोह फूटा था जो "सन्यासी विद्रोह" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद दक्षिण भारत के विजयनगरम् मे सन् 1794 में विद्रोह हुआ। मद्रास राज्य, आन्ध्र प्रदेश, मैसूर राज्य और विशाखपट्टणम में असन्तोष के कारण अग्रेजो के खिलाफ़ कई विद्रोह हुए। त्रावनकोर के दीवान वेलुत्तम्पी ने 1805 में एक विद्रोह में स्वयं भाग लिया था। उत्तर

भारत मे भी इस कालखण्ड मे कई विद्रोह हुए किन्तु य विद्रोह संगठित प्रयास से नही हुए थे। विद्रोह राष्ट्रीय शृंखला से नही जुड़े थे, इसीलिए शीघ्र ही दबा दिये गए।

सन् 1857 की स्वाधीनता की लड़ाई इतिहास की एक अद्भुत घटना थी जिसने ससार की आँखें खोल दी थी। उस समय समूचे भारत मे विद्रोह की आग भडक उठी थी। राजा, महाराजा, नवाब, जमीदार, इमानदार, सैनिक, काश्तकार, दस्तकार, आदिवासी, हिन्दू, मुस्लिम आदि सभी लोग इस महासमर मे कूद पडे थे।

सन् 1857 की सशस्त्र क्रान्ति के सम्बन्ध मे कुछ सहज प्रश्न उठ खड़े होते हैं कि यह क्रान्ति क्या मात्र सैनिको का विद्रोह था या राष्ट्रीय विद्रोह ? या फिर राजा–महाराजाओ की लड़ाई थी ? इस सम्बन्ध मे इतिहासकारो के मुख्य रूप से दो तरह के विचार पाये जाते हैं। पहले वर्ग में पाश्चात्य इतिहासकार आते है। उनका अभिमत है कि वह संघर्ष "सैनिक विद्रोह" मात्र था, परन्तु दूसरे वर्ग के इतिहासकारो ने उस सघर्ष में घटित घटनाओ की व्यापकता और तत्जनित व्यापक परिणायो के आधार पर उस संघर्ष को प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम घोषित किया है। इस तथ्य मे अधिक सच्चाई है कि इस प्रथम सशस्त्र क्रान्ति से न जाने कितने दार्शनिक, विचारक, वीर पैदा हुए, ऐसे सैकड़ो लौह पुरुष पैदा हुए, जो मिट गए, पर टस से मस नहीं हुए। बल्कि उग्रतर होते गए, और अन्त तक अन्याय के विरुद्ध भयकर रूप से सग्राम करते रहे और स्वराज्य की मशाल को लेकर आगे बढ़ते रहे।

दामोदर विनायक सावरकर पहले नेता थे जिन्होने 1857 की असफल क्रान्ति को, जो अंग्रेजो की दृष्टि मे सिपाहियों का विद्रोह था, 'क्रान्ति' का नाम दिया और यह कहा कि जो क्रान्ति 1857 मे प्रारम्भ हुई थी, उसकी पूर्णाहुति 15 अगस्त 1947 को हुई। इस प्रकार सन् 1857 से एक नूतन इतिहास का शुभारम्भ होता है।

–0–

जातीय विप्लव : ज्वालामुखी

समाजशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार विश्व की समस्त प्रघटनाएँ "कार्य-कारण" की शृंखला मे बधी हुई हैं। विश्व के समस्त उद्विकासो के मूल में "कारण और प्रभाव" का सिद्धान्त सतत कार्यरत है। इस दृष्टि से जब हम अट्ठारहवी एव उन्नीसवी सदी की कालावधि में घटित विप्लवो, लडाइयो, बलबो, आन्दोलनो आदि घटनाओ के कारणो की खोज करते हैं, तो हमें विदित होता है कि उनकी पृष्ठभूमि मे जो कारण थे, वे बहुत व्यापक एव गहरे थे। एक जाति को समूल नष्ट कर देने की साजिश थी। यह समझना भूल होगी कि विप्लव के पीछे जो कारण थे वे सामन्तो की सत्ता के लिए लडाई और चर्बीवाले कारतूस सम्बन्धी घटनाएँ थी। वास्तव मे ये कारण तो निमित्त मात्र थे। यह स्पष्ट है कि अंग्रेज बाहर से चाहे जितने सुशिक्षित, सुसभ्य एव सुसंस्कृत रहे हों, परन्तु भीतर से तो वे उतने ही बर्बर, लुटेरे और क्रूर रहे हैं। इस तथ्य का उद्घाटन कार्लमार्क्स ने इस प्रकार किया "हमारी आंखो के सामने पूंजीवादी सभ्यता का वह घोर पाखण्ड और स्वभावगत बर्बरता निरावारण होकर आ गई, जो अपने देश मे भद्रता की चादर ओढ़े रहती है और उपनिवेशों में नंगी घूमती है।"[1] अंग्रेजो की नीतियाँ इतनी खतरनाक थीं कि भारतीय समाज को पूरी तरह से तोडा, किसानो को भूमिहीन किया, कारीगरों को पंगु बना दिया, देशी राज्यो को छीना, और देश की समस्त सम्पदा को लूटा। "इंग्लैण्ड ने तो भारतीय समाज का, सारा या सारा ढांचा क्षत-विक्षत कर दिया। ब्रिटिश शासन के नीचे भारत अपनी सभी प्राचीन परम्परा, संस्कृति और अपने समूचे इतिहास से कट गया।" प्रश्न यह है कि ऐसा क्यो किया गया ? इसे समझने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन-प्रबन्ध को अच्छी तरह समझना आवश्यक है। आगे हम इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार करेंगे। पहले तो उन कारणों का जायजा लेगे जिन्होंने जातीय विप्लव को ज्वालामुखी बना दिया था।

---

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे में : पृ 114

अंग्रेज सैनिकों द्वारा निर्मम अत्याचार

भारतीय सशस्त्र राष्ट्रीय आन्दोलन में जो हिंसा भड़की थी, प्राय: इतिहासकार उसकी निन्दा करते हैं। उनके मतानुसार विद्रोही सैनिकों ने भयानक, वीभत्स और घोर अत्याचार किये हैं। पं. नेहरू के शब्दों में "कुछ विद्रोहियो ने अंग्रेजो को बेरहमी से कत्ल करके भी अपने काम पर धब्बा लगा लिया था। इस पाशविक बर्ताव ने ही सम्भवत: हिन्दुस्तान के अंग्रेजों को कमर कसने के लिए जोश दिलाया। उन्होंने उसी पाशविक ढंग से, बल्कि उससे सैंकड़ों-हजारो गुना ज्यादा बदला ले लिया था। ......अगर नाना साहब का बर्ताव वहशियाना और धोखेबाजी का था, तो कितने ही अंग्रेज अफसर भी वहशीपन में उससे सैंकड़ों गुना कही आगे बढ़ गये थे।"[1]

साराश यह है कि भारतीय सैनिको ने अंग्रेजों पर अकथनीय अत्याचार किये और अंग्रेजों ने उन अत्याचारो का सैंकड़ों-हजारों गुना ज्यादा भारतीयों से बदला लिया। इन दोनो कथनों मे सच्चाई नही है, बल्कि वस्तुस्थिति इसके विपरीत है। इस प्रकार के अत्याचार तो प्राय: विप्लवकारी युद्धों में, राष्ट्रो और जातियों की और सबसे अधिक धर्म के नाम पर की जानेवाली लड़ाइयों में देखने को मिलते हैं। इस प्रकार के अत्याचार होना तो सहज बात है। परन्तु इन सब बातो के लिए स्वयं अग्रेज सैनिक अफसर और उनका शासन-विधान ही जिम्मेदार ठहरता है। कार्लमार्क्स अंग्रेजो की शासन-प्रणाली का विश्लेषण करते हुए दिनांक 16 सितम्बर 1857 के न्यूयार्क दैनिक ट्रिबून समाचार-पत्र में प्रकाशित अपने एक लेख में लिखते हैं- "अंग्रेजों के शासन की विशेषता इस बात से ही समझी जा सकती है कि शारीरिक यंत्रणा पहुंचाना अंग्रेजों की वित्तीय-नीति का अभिन्न अंग रहा है। मानव-इतिहास में प्रतिशोध नाम की भी कोई चीज होती है, और ऐतिहासिक प्रतिशोध का यह नियम है कि उसके साधन को अत्याचार-पीड़ित नही, बल्कि स्वयं अत्याचार

---

1. श्री पं. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक : पृ. 590.

करनेवाला बनाता है।" कार्लमार्क्स का यह अभिमत है कि "भारतीय सिपाहियो का व्यवहार चाहे जितना भी निन्दनीय रहा हो, वह भारत मे अंग्रेजो के अपने व्यवहार का ही प्रतिरूप था ।"[1]

चीन की लडाई में ब्रिटिश सनिक-अफसरो ने जो वहशियाना अत्याचार किये थे, उसके उदाहरण विश्व के इतिहास ये अन्यत्र नही मिलते । उन दिनो अंग्रेज फौजियो द्वारा केवल अत्याचार करने का लुत्फ़ उठाने के लिए चीनियो पर घोर जुल्म किये गए । औरतो की असमत लूटी गई, जिन्दा बच्चों के शरीर में सगीन मोके गये, गाँव के गाँव भून डाले गये और यह सब केवल मनोरंजन के लिए किया गया था । "इस पर भी यह समझना कि अंग्रेज तो त्याग की मूर्ति थे और सभी जुल्म केवल भारतीय सिपाहियो ने किये थे, बिल्कुल गलत होगा ।"[2]

सन् 1857 को सैनिक-क्रान्ति से पहले अंग्रेज सैनिक अफसरों के निर्मम अत्याचारो की पृष्ठभूमि में उसी मनोरजन की प्रवृत्ति देखने को मिलती है। इस सम्बन्ध मे अंग्रेजो के सैनिक अफसरो द्वारा उन दिनों इग्लैण्ड को लिखे गये पत्रो और रिपोर्टों से कुछ उदाहरण, कार्लमार्क्स के उसी लेख से उद्धरित किये जाते हैं जो दिनाक 16 सितम्बर 1857 को "न्यूयार्क डेली ट्रिबून" समाचारपत्र मे प्रकाशित हुआ था, इससे उनकी बर्बर प्रवृत्ति का परिचय मिलता है ।

इलाहाबाद से सिविल सर्विस का एक अफसर लिखता है : "जिन्दगी और मौत का फैसला करना हमारे हाथ मे है, और सच मानिये, हम किसी का लिहाज नही करते ।" उसी स्थान से एक दूसरा अफसर लिखता है· "कोई दिन खाली नही जाता, जब हम दस-पन्द्रह आदमियो (असैनिक व्यक्तियो) को सूली पर नही चढा देते ।" एक अन्य अफसर रस लेकर

---

1. कार्लमार्क्स . उपनिवेशवाद के बारे में : पृ. 194-195 व फ्रेडरिक एंगेल्स :

2 वही

लिखता है "होल्म्स उन्हे दर्जनो के हिसाब से फांसी पर लटका रहा है। आदमी हो तो ऐसा हो।" एक तीसरा अफसर लिखता है "हम घोडो पर बैठे-बैठे कोर्ट-मार्शल करते हैं, जहां कही भी कोई काला आदमी नजर आ जाए, उसे या तो सूली पर चढ़ा देते है या गोली का निशाना बना देते हैं।" बहुत से भारतीयो को बिना मुकदमा चलाये फांसी की सजा दी गयी, इसकी चर्चा करते हुए एक और अफसर लिखता है : "फिर मजा आने लगा।"

एक अन्य अफसर लिखता है कि एक दिन रात को पेशावर में बारूद फटने का धमाका हुआ। कहीं पर शादी हो रही थी, और राष्ट्रीय प्रथा के अनुसार छोटे-छोटे पटाखे छोड़े जा रहे थे। लेकिन धमाका सुनकर खतरे का भ्रम पैदा हो गया और दूसरे दिन पटाखे छोडनेवालो के हाथ-पाँव बांधकर कोड़ो से उनकी ऐसी मरम्मत की गयी कि ये उम्र भर याद रखेंगे। बनारस के एक अन्य अफसर के पत्र में जो उन्हीं दिनो "द लन्दन टाइम्स" मे प्रकाशित हुआ था, लिखा है : "देशी लोगों के साथ यूरोपीय सैनिक भयंकर, राक्षसो का-सा सुलूक कर रहे हैं।"

इन उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अंग्रेज सैनिकों की निर्दयता एव बर्बरता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। परन्तु लन्दन के पत्रों मे ये अत्याचार भारतीय सैनिकों के अत्याचार कह कर छापा करते थे और उन्हे बढ़ा-चढ़ा कर अतिरंजित रूप में छापा जाता था ताकि बदला लेने के लिए अंग्रेजों को उकसाया जा सके। इन पत्रों में अंग्रेज सैनिको के वहशियाना अत्याचारो पर पर्दा डालकर भारतीय सैनिको को कलंकित किया जा रहा था। इस सम्बन्ध में कार्लमार्क्स ने अपने एक लेख में जो 16 सितम्बर 1857 को "न्यूयार्क डैली ट्रिब्यून" समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था, लिखा है : "भारतीयों द्वारा किये गये जुल्मों को, यद्यपि वे स्वय बड़े भयानक है, जानबूझकर और खूब मिर्च-मसाला लगाकर बयान किया जाता है। मिसाल के तौर पर आप दिल्ली और मेरठ में किये गये जुल्मों के बारे में उस विस्तृत विवरण को लीजिए जो पहले "द टाइम्स" में और बाद में लन्दन के सभी अखबारों और पत्रिकाओं में छपे थे। यह विवरण कहाँ से आया था? यह विवरण एक डरपोक पादरी ने बेंगलूर (मैसूर) से भेजा था। यह स्थान

घटना स्थल से एक हजार मील से ज्यादा दूर है। दिल्ली मे होनेवाली वास्तविक घटनाओं का उल्लेख पढ़ने से यही सिद्ध होता है कि अंग्रेज पादरी की कल्पना एक हिन्दू विद्रोही की उन्मत्त कल्पना से भी ज्यादा दूर की उड़ान भरती है : "भारतीय सिपाहियो द्वारा नाक और स्तनों आदि का काटा जाना आदि घटनाएं।"[1]

एक तरफ सैनिको द्वारा निर्मम अत्याचार हो रहे थे और दूसरी ओर करो की उगाही मे पुलिसवालो के द्वारा भी शारीरिक यन्त्रणा दी जा रही थी। करो की उगाही पुलिस करती थी। एक ही आदमी पुलिस अफसर भी होता और कराधिकारी भी, इस लिए अत्याचार चरम सीमा पर पहुँच गये थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतीयो पर किये जानेवाले अत्याचारो की जाँच के लिए ब्रिटिश सरकार ने सन् 1855 मे अनेक जाँच कमीशन नियुक्त किये थे।

मद्रास मे कम्पनी के अफसरो और पुलिस द्वारा किये गये अत्याचारो की जाँच करनेवाली समिति की रिपोर्ट है "समिति को इस बात पर विश्वास है कि करो को उगाहने के लिए सामान्यतः शारीरिक यन्त्रणाएं पहुँचायी जाती है।" इस जांच कमीशन का मन्तव्य था "जितने लोगो को करो का भुगतान न करने पर हर साल शारीरिक दण्ड दिया जाता है, उतनी ही संख्या मे फौजदारी के अपराधियो को दण्ड दिया जाता है।"[2]

समिति के सदस्यो द्वारा पूछे गये सवाल के जवाब मे एक भारतीय ईसाई ने बताया : "जब भी कभी कोई यूरोपीय या देशी रेजीमेण्ट गाँव के रास्ते गुजरती है, तो खाने-पीने का सामान आदि जुटाने के लिए किसानो पर दबाव डाला जाता है और बदले मे उन्हें कुछ भी नही दिया जाता। अगर कोई किसान कीमत माँग बैठे तो उसे बुरी तरह यन्त्रणाएं दी जाती हैं।"[3]

---

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेश वाद के बारे मे : 200–205.
2. वही " " "
3. वही – " " 202–208.

भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड डलहौजी (1848-1856) ने सितम्बर 1855 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरो के नाम अपने पत्र में लिखा : "किसी न किसी रूप मे प्रत्येक ब्रिटिश प्रान्त मे छोटे अधिकारियो द्वारा भारतीयों को शारीरिक यन्त्रणा दी जाती है, इस बात को मैं निश्चित तौर पर मुद्दत से जानता हूं ।"[1]

उन कार्रवाइयो के फलस्वरूप ब्रिटिश शासन का एक भाग बदनाम हुआ और बहुसख्यक ब्रिटिश प्रजा के प्रति अन्याय किया गया है, उन्हे स्वेच्छाचारी ढग से जेल मे ठूंसा गया है तथा निर्दयपूर्वक यन्त्रणाएँ दी गयी हैं ।"[2]

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर कार्लमार्क्स ने भारतीय सैनिकों द्वारा की गयी सशस्त्र क्रान्ति की उचित बताया और भारतीय सैनिकों को दोष मुक्त ठहराते हुए अपना मन्तव्य इस प्रकार व्यक्त किया है :

"जिस प्रजा के साथ इतना बुरा व्यवहार किया जाता है, यदि वह अपने विजेताओ को निकाल बाहर करने का प्रयत्न करे तो इसमे क्या बुराई है ? और यदि अग्रेज लोग इतनी निर्दयता से ऐसे-ऐसे काम कर सकते थे तो विद्रोह और लड़ाई की उत्तेजना मे बलवाई भारतीयो द्वारा अपराधो और अत्याचारों के किये जाने पर हमे हैरान नही होना चाहिए ।"

इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीयो की शारीरिक यन्त्रणाएँ देना अंग्रेजी की शासन-प्रणाली को वित्तीय-नीति थी । इसी नीति के आधार पर उन्होने भारत की सारी सम्पदा को लूटा, भारतीयो पर अनेक निर्मम अत्याचार किये, असख्य लोगों की हत्या कर दी और भारतीय समाज के ढांचे को पूरी तरह तहस-नहस कर दिया । वस्तुतः अग्रेज शासक सभ्य समाज की चादर ओढ़े खूखार भेड़िये थे । उन्होने देश की सम्पदा को किस प्रकार लूटा और राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों को किस प्रकार नष्ट कर दिया

---

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एगेल्स . उपनिवेशवाद के बारे मे . 202-208
2. वही " " "

था, इनके सम्बन्ध मे हम आगे विचार करेंगे । पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उससे भारतीय शासन प्रबन्ध पर विचार करना आवश्यक होगा, क्योंकि अंग्रेज यहाँ शासन करने नहीं, लूट–मार करने आये थे ।

–.0.–

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी : भारत का शासन प्रबन्ध

18 वी शताब्दी और 19 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भारत का शासन प्रबन्ध ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा होता था । प्रथम विप्लव (सन् 1857) के बाद 1858 मे महारानी विक्टोरिया की विशेष राज्याज्ञा द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी तोड दी गई और उसके कार्यकलाप ब्रिटिश सम्राट के अधीन कर दिये गये । इस प्रकार एक सौ वर्ष तक भारत पर कम्पनी का काला राज्य रहा ।

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना सन् 1600 में हुई थी । उसके एजेण्टो ने भारत मे कुछ व्यापार केन्द्र स्थापित किये । 17 वी शताब्दी के अन्त मे कम्पनी ने भारतीय प्रदेशो को हथियाना शुरू कर दिया । 18 वी शताब्दी और 19 वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे कम्पनी ने कर्नाटक, बगाल, सिन्ध, पजाब और भारत के अन्य प्रदेशों मे खूनी लडाइयाँ लडी जिसके परिणाम स्वरूप 19 वी शताब्दी के मध्य मे लगभग समूचे भारत पर कम्पनी का अधिकार हो गया । धोखा-धड़ी, धमकियो, खूनरेजी और सीधी लूटपाट द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी वाले भारत के समृद्ध खजानो पर अपने हाथ साफ करने लगे । और उन्हे लाद–लादकर इग्लैण्ड भेजने लगे और इस तरह उन्होने बहुत ज्यादा दौलत इकट्ठा कर ली । ब्रिटिश सरकार ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत और चीन के साथ व्यापार करने का एकाधिकार तथा भारत पर

शासन करने तथा भारत की जनता से कर वसूल करने का अधिकार दे रखा था। कम्पनी ने ब्रिटिश सरकार से सन् 1767 मे एक समझौता किया, जिसके अनुसार उसने राजकोष मे चार लाख पौण्ड हर साल अदा करना मंजूर किया था।

त्रिमूर्तियों का शासन प्रबन्ध

भारत का शासन प्रबन्ध त्रिमूर्तियो के हाथो मे था। जिस प्रकार भारतीय धर्म की देहरी पर पवित्र त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु व महेश) स्थापित है, उसी प्रकार भारत के शासन सचालन की देहरी पर वैसी ही, किन्तु अपवित्र त्रिमूर्ति स्थापित थी। भारत का सर्वोच्च अधिकारी गवर्नर-जनरल था, जिस पर इग्लैण्ड मे स्थित सचालन-सस्था (Home Government) शासन करती थी। यह सचालन सस्था कौन थी ? क्या वह भारत मंत्री था, जिसे बोर्ड आफ कण्ट्रोल के प्रधान का सीधा-सा छद्मनाम दिया गया था, या फिर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चौबीस डायरेक्टर ?

वास्तव मे भारतीय शासन का प्रबन्ध तीन शक्तियो बोर्ड आफ कण्ट्रोल, कोर्ट आफ डायरेक्टर और तीन हजार वृद्ध-रुग्ण-स्त्री-पुरुष, भारतीय शेयरो के मालिक, के हाथों मे था। कोर्ट आफ डायरेक्टर्स की आड मे बोर्ड आफ कण्ट्रोल का प्रधान भारत को विनाशकारी युद्धो मे घसीटता था, और बोर्ड आफ कण्ट्रोल की आड़ में कोर्ट आफ डायरेक्टर्स भारतीय प्रशासन को भ्रष्ट करता था, परन्तु इन दोनो शक्तियो से भी अधिक शक्तिशाली भारतीय शेयरो के मालिक थे, जिन्हे भारत मे बस इतनी सी रुचि थी कि उन्हे भारतीय राजस्व मे से नियमित रूप से लाभांश मिलता रहे, और चौबीस डायरेक्टरो का चुनाव करते रहे। इन डायरेक्टरो की एक मात्र विशिष्टता यह थी कि उनके पास दो-दो हजार पौण्ड के शेयर रहते थे।

कोर्ट आफ डायरेक्टर्स की न तो कोई राजनीति थी, न कोई सिद्धान्त और न ही कोई पद्धति। वह तो केवल सरक्षण वितरण का व्यापार करता था। भारत का वास्तविक कोर्ट आफ डायरेक्टर्स और भारत के शासन सचालन की

वास्तविक ब्रिटिश संस्था तो स्थायी और अनुत्तरदायी नौकरशाह थे, जो लेडन-हाल स्ट्रीट में रहते थे। इस तरह एक बहुत बड़े साम्राज्य पर एक निगम राज्य करता था, जिसके सदस्य कुलीन लोग नहीं, बल्कि बूढ़े और हठी क्लर्क थे।

परिणामतः लेडन हॉल-स्ट्रीट और कैनन रो में स्थित क्लर्कों के इन संस्थानों पर सितम्बर 1857 के आँकड़ों के अनुसार भारतीय जनता को प्रतिवर्ष एक लाख साठ हजार पौण्ड की तुच्छ-सी रकम अदा करनी पड़ती थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शेयर-होल्डरों को साढ़े दस प्रतिशत के हिसाब से 6 लाख 30 हजार पौण्ड लाभांश के रूप में दिया जाता था। इनके अतिरिक्त 24 डायरेक्टरों, असैनिक अधिकारियों में से गवर्नर जनरल, सलाहकार, न्यायाधीश, राजदूत, सेक्रेटरी, कलेक्टर आदि की संख्या आठ सौ, धर्मसेवा में नियुक्त तीन बिशप और लगभग एक सौ साठ पादरी, चिकित्सा-सेवा में नियुक्त आठ सौ डॉक्टर, लगभग 8000 यूरोपीय सैनिक अफसर लगभग दस हजार ब्रिटिश नागरिक जो भारत में लाभदायक नौकरियों पर लगे हुए थे। इन सब के अतिरिक्त लगभग बीस हजार अफसरों को ऊँचे-ऊँचे वेतन भारत से दिये जाते थे। उन दिनों केवल भारत के गवर्नर जनरल का शुद्ध वार्षिक वेतन एक लाख 25 हजार डालर था, परन्तु अतिरिक्त भत्तों को मिलाने से यह रकम अकसर इससे भी बड़ी रकम बन जाती थी। अनुमान है कि ढाई लाख डालर केवल गवर्नर जनरल को प्रति वर्ष दिया जाता था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वतंत्र भारत के राष्ट्रपति का वेतन मासिक 10 हजार रुपये मात्र है (आजकल 20 हजार रुपये हो गया है) जब कि दो सौ साल पहले उसी पद पर कार्यरत गवर्नर जनरल को 20 हजार डालर मासिक वेतन दिया जाता था, जो आज के हिसाब से कई गुणा अधिक था। इन वेतनों के अतिरिक्त एशियाई लड़ाइयों का सारा खर्च भी भारतीय जनता पर पड़ता था।

विडम्बना यह थी कि अभिजात-शासन वर्ग भारत को युद्धों में घसीटता था, ताकि उन्हें अपने कनिष्ठ पुत्रों के लिए काम मिल जाए, थैली शाहों का गुट भारत को मानों नीलाम कर देता था, और अधीन पद की नौकरशाही

उसके प्रशासन को पंगु कर देती थी और उसके भ्रष्टाचार को कायम रखती थी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत से कितना धन लूटकर इंग्लैण्ड भेजा करती थी, वह सन् 1851-52 के आंकड़ों को देखने से ज्ञात होता है। बंगाल, मद्रास और बम्बई से प्राप्त कुल राजस्व से दो प्रतिशत धन भी कम्पनी द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों मे व्यय नही किया जाता था: "सन् 1851-52 में एक करोड़ 98 लाख पौण्ड मे से केवल एक लाख 66 हजार 300 पौण्ड, सड़कों, नहरो, पुलों तथा सार्वजनिक आवश्यकता के अन्य कार्यों पर खर्च किये गए।"[1]

इस प्रकार थैलीशाहो ने भारत को अपनी जागीर बना लिया था। भारत में अग्रेजो के राज का इतिहास केवल लूट-खसोट एवं नाश की ही कहानी थी। इस प्रकार दोहन की नीति के कारण भारत दिन-प्रति-दिन कंगाल बनता गया। फलत. असन्तोष एवं विद्रोह का फूट पड़ना अवश्यम्भावी था।

—o—

राष्ट्रीय उद्योगों की तबाही

भारत पर अंग्रेज साम्राज्य स्थापित हो जाने के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सर्वप्रथम भारतीय कारीगरो को, फिर काश्तकारो को और उसके बाद देशी राजाओं को धीरे-धीरे समाप्त कर दिया। अंग्रेजों की भयानक नीतियो के कारण ही भारत का विश्वविख्यात् सूती उद्योग तबाह और बरबाद हो गया। भारत निर्यात करनेवाले देश से आयात करनेवाला देश बन

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिदेशवाद के बारे में · पृ. 42

गया। लाखों भारतीय कारीगर तबाह हो गए। रोजी-रोटी की तलाश मे कारीगर नगरो से ग्रामों की ओर उन्मुख हो गए। इतिहास की एक ऐसी त्रासद घटना थी जिसमे राष्ट्रीय उद्योग नष्ट हो गए और देश दरिद्र बन गया। यह स्पष्ट बात थी कि अंग्रेज यहां शासन करने नहीं, लूट-खसोट करने और अपने देश के उद्योगो को बढ़ाने और वहा के माल को यहा खपाने आये थे। लूट-पाट और शोषण उनके शासन की प्रमुख प्रवृत्ति थी।

अंग्रेजो के आने से पहले भारत समृद्धिशाली था। यहा की जनता खुशहाल थी। ग्राम समृद्ध थे। समाज मे शान्ति एव स्थिरता थी। उन दिनो भारत एक लघु उद्योग-प्रधान तथा कृषि-प्रधान देश था। प्रसिद्ध भारतीय अर्थशास्त्री श्री रमेश चन्द्र दत्त ने इस सम्बन्ध मे लिखा है — अट्ठारहवीं सदी मे हिन्दुस्तान एक बड़ा भारी उद्योग-प्रधान और साथ ही कृषि-प्रधान देश था, और हिन्दुस्तानी करघो पर बना हुआ माल एशिया और यूरोप के बाजारो मे भेजा जाता था। "बुनाई लोगो का राष्ट्रीय धन्धा था और कताई लाखों स्त्रियो का शुगल या पेशा था।"[1]

क्लाइव राबर्ट, बगाल-गवर्नर ने (1757–60 और 1765–67) जो अंग्रेज साम्राज्य निर्माता के नाम से इतिहास मे प्रसिद्ध है, परन्तु एक अत्यत क्रूर ब्रिटिश उपनिवेशवादी था, सन् 1757 के समय के बंगाल के शहर मुर्शिदाबाद की, समृद्धि का वर्णन इस प्रकार किया है— "यह नगर लन्दन के समान विस्तृत घना बसा हुआ और धनी है। फर्क इतना ही है कि यहां के लोग लन्दनवालो से ज्यादा ऐश्वर्य के स्वामी हैं।"[2] करघा और चरखा भारतीय सामाजिक ढाँचे की धुरी थे, जिनसे निरन्तर असंख्य बुनकर तथा सूत कातने वाले पैदा होते रहते थे। पुरातन काल से यूरोप हिन्दुस्तानी बुनकरो के तैयार किये हुए बेहतरीन कपड़े मंगवाता रहा और बदले में अपनी मूल्यवान धातुएं भेजता रहा, जो सुनार के पास पहुचती रही। सुनार भारतीय समाज का

---

1. पं. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक : पृ संख्या 593
2. " " " 594

नितान्त आवश्यक अंग था, जो रंक से लेकर राजाओं तक का केन्द्रबिन्दु था। देवताओ की मूर्तियाँ निर्मित करने मे अपनी कला-प्रतिभा को प्रदर्शित करता था।

अंग्रेज विजेताओ ने आकर हिन्दुस्तान के करघे को तोड़ा और चरखे को तबाह किया। इंग्लैण्ड ने पहले हिन्दुस्तान के बने सूती कपड़ो को यूरोप के बाजार से बाहर निकाला। फिर हिन्दुस्तान में अपना सूत कपड़ों से पाट दिया। सन् 1813 से पहले भारत मुख्यतः निर्यात करनेवाला देश था, परन्तु बाद मे वह आयात करनेवाला देश बन गया। हिन्दुस्तान से विदेशों को माल ले जाने और बदले में सोना और चाँदी लाने का जो प्रवाह चल रहा था, उसका रुख उलटा हो गया। अब विदेशी माल हिन्दुस्तान में आने लगा और यहाँ का सोना-चाँदी बाहर जाने लगा। इस सम्बन्ध में पं. जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है : "आम तौर पर किसी भी देश को सरकार का यह कर्तव्य है कि वह उस देश के उद्योगों की रक्षा करें, और उन्हे तरजीह दें। मगर, हिफाजत और तरजीह देना तो दूर रहा, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने ब्रिटिश उद्योगो के रास्ते में आने वाले हरेक हिन्दुस्तानी उद्योग को कसकर ठोकर लगाई। हिन्दुस्तान में जहाज बनाने का काम चौपट हो गया, धातु के कारीगर-लुहार आदि-अपना कारोबार न चला सके और काँच और कागज बनाने का धन्धा भी धीरे-धीरे चल बसा।"[1]

इंग्लैण्ड के उद्योगवादी बनने से पहले ही एक प्रसिद्ध अंग्रेज लेखक एडम स्मिथ ने जो राजनैतिक अर्थशास्त्र का जन्मदाता कहा जाता है, हिन्दुस्तान पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन के हानिकारक परिणामों की ओर अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "वेल्थ आफ नेशन्स" जो कि सन् 1776 में प्रकाशित हुई थी, में संकेत किया था :– "चाहे किसी भी देश के लिए हो, ऐसी सरकार, जो सिर्फ व्यापारियों की कम्पनी से ही बनी हो, सब से खराब सरकार है। ... ... शासक होने की हैसियत में तो उसके हित बिल्कुल वही होने चाहिए जो उसके हित उस देश के बिलकुल खिलाफ़ होंगे।"[2]

---

1. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक · पृ. सं. 593
2. " " "

इस घातक नीति का नतीजा यह हुआ कि बेचारे गरीब बेघरबार, बेरोजगार और भूखों मरते कारीगरो को गाँवो मे जाकर खेती की शरण लेनी पडी। परन्तु खेती भी उनका स्वागत करने के लिए तैयार न थी। बहुत अधिक संख्या में लोग भूख से तड़प-तड़पकर मर गये। सन् 1834 में हिन्दुस्तान के अंग्रेज गवर्नर जनरल ने यह रिपोर्ट की थी –"व्यापार के इतिहास में ऐसी तबाही का शायद ही कोई दूसरा उदाहरण मिले। सूती कपड़ा बुननेवाले जुलाहो की हड्डियो से हिन्दुस्तान के मैदानो पर सफेदी छा रही है– वे हड्डियों से भरे पड़े हैं।"[1]

यह कितना हृदय विदारक दृश्य है। इस सम्बन्ध मे कार्ल मार्क्स का यह मन्तव्य है— "थैलीशाहो ने भारत को अपनी जागीर बना लिया था, अल्पतंत्र ने अपनी फौज द्वारा उसे जीत लिया था और कारखानाशाही ने उसे अपनी सूती माल से पाट दिया था, और इन तीनों के हित बहुत समय तक साथ–साथ चलते रहे।"[2]

-0-

भारतीय किसानों की तबाही

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का हिन्दुस्तान पर शासन करने का मुख्य उद्देश्य सिर्फ रुपया कमाना और अपने हिस्सेदारों मे मुनाफा बाँटना था। इसलिए आये दिन राजस्व के नये–नये स्रोत ढूंढे जाते थे। उसके फौलादी पंजो से हिन्दुस्तान का कोई भी आदमी नही बच सका था।

---

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे मे : पृ. स. 67, 597.
2. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे मे : पृ. 67

यह आश्चर्य की बात थी कि हिन्दुस्तान पर बाडंर से समय–समय पर अनेक आक्रमण हुए। अनेक, लडाइयां हुई, अनेक परिवर्तन भी हुए, परन्तु यहां के गांव उन प्रभावो से बिल्कुल ही अछूते रहे। गांवो ने अति प्राचीनकाल से अपना अस्तित्व बनाये रखा था। वहां के जीवन मे स्थिरता थी और सुख–शान्ति थी। किसान पूरी तरह खुशहाल थे। गांव की सामाजिक स्थिति स्थिर थी। सन् 1830 मे हिन्दुस्तान के अंग्रेज गवर्नर सर चार्ल्स मेटकाफ ने ग्राम पंचायतो के सम्बन्ध मे लिखा था।

"ग्राम–पंचायते छोटे–छोटे प्रजातन्त्र हैं, अपनी जरूरत की करीब–करीब हरेक चीज उनमे मौजूद है, और बाहरी सम्बन्धो से हर तरह स्वतन्त्र है। ऐसा मालूम होता है कि जहां कोई दूसरी चीज नही ठहर पाती, उनकी हस्ती कायम रहती है। ग्राम–पंचायतो का यह सघ, जिसमे हरेक पचायत खुद एक अलग छोटी–सी रियासत के समान है, उनके सुख–शान्ति से रहने और बहुत हद तक उनको आजादी और खुद मुख्तारी का उपयोग कराने मे भारी सहायक होता है।"[1]

परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भयंकर नीतियो के कारण खुशहाल गांव भी उजड गए। अंग्रेज विजेताओ ने भारत मे कृषि की उपेक्षा की और उसे भारी नुकसान पहुंचाया। कम्पनी हर तरह के तानाशाही साधनो द्वारा लोगो से उनकी आखिरी कौडी तक वसूल कर लेती थी और उनकी श्रम शक्ति की अन्तिम बूंद तक चूस लेती थी।

पं. नेहरूजी के अनुसार जमीदार प्रथा एक खराब प्रथा थी जो अंग्रेजो ने हिन्दुस्तान मे पैदा की थी। उनसे पहले इसकी कोई हस्ती, कोई वजूद न था। यह प्रथा समाज रूपी गाड़ी का पांचवां पहिया था, जो कि गैर जरूरी, बल्कि एक रुकावट और जमीन पर एक बेकार बोझ भी था। इस प्रथा के कारण जमीन की पैदावार तीन भागों मे बट जाती थी। एक भाग जमीदार को मिलता था, जो कि जमीन का मालिक होता था, वह काश्तकार

1. विश्व इतिहास की झलक . जवाहर लाल नेहरू : 600

के पल्ले पड़ता था। इस तरह किसान के श्रम का बुरी तरह शोषण होता था। जमीदार के लालची पंजे से बेचारे किसान की रक्षा का कोई साधन न था।

बाद मे अंग्रेजो ने करो की वसूली के लिए एक नये तरीके को जन्म दिया। लगान की वसूली के लिए एजेण्ट के रूप मे कलेक्टर नियुक्त किये गए। किसानो से वसूल की गई रकम मे से एजेंण्ट अपने मेहनताने के रूप मे दसवाँ हिस्सा रख ले सकता था। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ ही समय के बाद जमीन का लगान दुगुना कर दिया गया। यदि कोई समय पर लगान अदा न करता तो तुरन्त उसे खेत से बेदखल कर दिया जाता था। किसान पर बेरहमी के साथ अत्याचार किये जाते और उसे शारीरिक यातनाए दी जाती थी। "इस तरह किसान के सम्पर्क मे आने वाले हरेक शख्स ने उसे लूटा, लगान वसूल करनेवाला, जमीदार, बनिया, प्लाण्टर और उसका कारिन्दा और सबसे बड़ा बनिया खुद अंग्रेज सरकार– चाहे ईण्ट इण्डिया कम्पनी की मार्फत, चाहे सीधा–सब के सब उसे चूसते गये। इस सारे शोषण की जड मे थी अंग्रेजो की वह नीति जो वे हिन्दुस्तान मे जानबूझकर चला रहे थे।"[1]

अंग्रेजो के शासन काल मे हिन्दुस्तान मे पाँच बार भयकर अकाल पड़े जैसे सन् 1769–70 मे बगाल और बिहार मे सन् 1861 मे उत्तर भारत मे सन् 1876 मे उत्तर मध्य दक्षिणी हिन्दुस्तान मे सन् 1990 मे उत्तरी और मध्य हिन्दुस्तान मे। कहा जाता है कि इन भयकर अकालो मे हिन्दुस्तान की एक चौथाई आबादी काल–कवलित हो गई। परन्तु इन अकालो के समयो मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बड़ी निर्दयता के साथ किसानो से लगान की पाई–पाई वसूल करके छोड़ी। इस सम्बन्ध मे प. नेहरू जी ने लिखा . "ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अफसरो की असाधारण मुस्तैदी का जिक्र खास तौर पर किया जाना चाहिए। चाहे लाखो–करोड़ो की तादाद मे मर्द–औरत और बच्चे मौत के घाट उतरते रहे वे तो मुर्दों की लाशो तक से रुपया खीचने की जुर्रत रखते थे, ताकि इग्लैण्ड के मालदारो को भारी से भारी मुनाफे बाँटे जा सके।"[2]

---

1. जवाहर लाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक : 608
2. " " 606

इन सब का नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान के सारे गाव तबाह और बरबाद हो गए। बड़े-बड़े मालगुजार तक भिखारी बन गये। बेचारे किसानो की क्या बिसात? इस लूट-खसोटे के दौर मे, वे भूखे-नगे बेघर-मुर्दे से हो गए। अंग्रेजी के जालिमाना अत्याचारो ने उन पर ऐसा आतंक जमा दिया था कि किसानों के हृदय और आत्मा जो कुछ उनके थी सब कुछ नष्ट कर दिया था। इस सम्बन्ध में बहादुर अंग्रेज महिला फ्लोरेंस नाइटिंगल ने सन् 1878 मे लिखा– "हमारे पूर्वी साम्राज्य का किसान, पूर्व में, नही–नही, शायद सारी दुनिया मे सबसे ज्यादा दर्दनाक नजारा है। दुनियां के सबसे ज्यादा जरखेज मुल्क में और बहुत सी ऐसी जगहो पर जहाँ पर अकाल नाम की कोई चीज होती ही नही थी, लोगो को चकनाचूर कर देनेवाली और लगातार आधे पेट भूखों रहकर मरने की हालत पैदा कर दी।"[1]

इस तरह के भयानक अत्याचारो, निर्दयतापूर्ण उत्पीड़नो, किसानो और कारीगरो की हृदय विदारक तबाही को देखने के बाद भी किस जाति का खून खौल नही उठेगा ? प्रतिशोध के शोले नही भड़क उठेंगे ? विप्लव का ज्वालामुखी क्यो न फूट पड़ेगा ? ये सब कुछ अवश्यभावी था। कार्लमार्क्स का यह निष्कर्ष था कि इग्लैंड के निकृष्टतम् स्वार्थों ने हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति को जन्म दिया था :

· "यह सत्य है कि हिन्दुस्तान में सामाजिक क्रान्ति का कारण बनने में इंग्लैण्ड के निकृष्टतम् स्वार्थों से प्रेरित हुआ था और जिस ढग से उसने उन स्वार्थों की सिद्धि की थी, वह मूर्खतापूर्ण था।"[2]

-0-

1. जवाहर लाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक : 610
2. कार्लमार्क्स : फ्रेडरिक एगेल्स . उपनिवेशवाद के बारे मे : पृ. सं. 51

भारतवासियों की सम्पत्ति को हड़पना

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जिन नीतियो ने हिन्दुस्तानी कारीगरो और किसानो को तबाह कर दिया था, उन्ही नीतियो ने कालान्तर से भारतवासियों की सम्पत्ति जमींदारो की भू-सम्पत्ति, कुलीनो की पेशने और देशी राजाओ-महाराजाओ की रियासतें जबरदस्ती छीन ली थी। यद्यपि जमीदारी प्रथा को भारत मे अंग्रेजो ने ही जन्म दिया था, कुलीनो को पेशने और देशी राजाओं-महाराजाओ को संरक्षण देने का अग्रेजो ने समझौता किया था, परन्तु अंग्रेज सरकार ने निजी स्वार्थों के वशीभूत इन सब को उलट दिया। नये राजस्व के स्रोतों की खोज में पुरानी व्यवस्था तोड दी गई और नये कानून बनाये गये। भारत में जागीरों और इनामो पर फिर से अधिकार किया गया। गोद लेने के कानून को खत्म करने का तो किसी को स्वप्न में भी ख्याल नहीं आया था। लेकिन यहां यह सवाल उठता है कि अंग्रेजों ने ऐसी मक्कारी क्यों की ?

सन् 1848 मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वित्तीय कठिनायां इस सीमा तक जा पहुंची थी कि उसके लिए किसी न किसी तरह अपने राजस्व को बढ़ाना अनिवार्य हो गया था। दिन-पर-दिन कम्पनी पर कर्ज का भार बढ़ता जा रहा था। तब तक अपनी विजयों को कार्यान्वित करने तथा अपने संस्थाओं का निर्माण करने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी ब्रिटिश राज्य से 5 करोड़ पौण्ड से अधिक ऋण उठा चुकी थी। राजस्व को बढाना जरूरी हो गया था। परिणामत: कौन्सिल अर्थात गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी के अधीन काम करने वाली परिषद की एक रिपोर्ट प्रकाशित की गयी, जिसमें लगभग स्पष्ट रूप से इस सिद्धान्त का उल्लेख किया गया था, कि देशी राजाओ महाराजाओं से रियासतें छीन कर और इस तरह ब्रिटिश क्षेत्र को विस्तृत करके ही अधिक राजस्व प्राप्त किया जा सकता है। तदनुसार जब सतारा नरेश आपा साहिब की मृत्यु हुई तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसके दत्तक उत्तराधिकारी को मान्यता नही दी और राज्य को अपने अधिकार क्षेत्र मे मिला लिया। उसके

बाद जब कभी-भी कोई राजा निःसन्तान मर जाता तो उसके राज्य पर अधिकार कर लिया जाता।

कम्पनी की इस शासन संचालन की नयी प्रणाली द्वारा भारत में सम्पत्ति की पुरानी व्यवस्था तोड दी गयी जिससे हर हिन्दू जो भू-सम्पत्ति रखता था, बुरी तरह से प्रभावित हो गया। जब्ती के इस नये तरीके से राजस्व का एक नया स्रोत मिल गया। उस समय के दस्तावेजो के आधार पर यह कहा जाता है कि इस प्रकार मालिकों से जब्त की गई भू-सम्पत्ति से सालाना आय-सन् 1848 से 54 के वर्षों मे केवल तीन नगरो-अहाता बगाल, अहाता बम्बई और पंजाब से ग्यारह लाख पौण्ड से भी अधिक हुई थी।

ब्रिटिश सरकार भारतवासियों की सम्पत्ति हथियाने का यह एक ढंग अपना कर भी सन्तुष्ट नही हुई, उसने कुलीनो की पेंशने भी बन्द कर दी जिन्हे वह संधियो की शर्तों के अनुसार देने पर बाध्य थी।

कजर्वेटिव पार्टी के नेता श्री डिजरेली, जो बाद मे सन् 1868 तथा 1874 से 1880 तक ब्रिटेन का प्रधान मंत्री बना, उसका लन्दन के "मर्दों के घर" में 28 जुलाई 1857 मे दिया गया तीन घण्टो का सारगर्भित भाषण 14 अगस्त 1857 के न्यूयार्क डैली ट्रिबून के समाचारपत्र मे प्रकाशित हुआ था, उसमे भारतवासियो की भू-सम्पत्ति जब्ती सम्बन्धी शासन-प्रणाली की घोर निन्दा की गयी थी- "जब्ती का यह नया तरीका बहुत विस्तृत, आश्चर्यजनक तथा लज्जाजनक पैमाने पर अमल मे लाया जा रहा है।"[1]

-0-

---

1. कार्लमार्क्स · फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे में : पृ. 178

उपसंहार : काल विभाजन

इससे पूर्व जो तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं, उनके और अन्य महत्वपूर्ण दस्तावेजों से भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि अंग्रेजों की साम्राज्य-स्थापना के बाद से हिन्दुस्तान में असन्तोष, आक्रोश और विद्रोह के शोले भीतर ही भीतर ज्वालामुखी का रूप धारण करते जा रहे थे। अफसोस तो इस बात का है कि भारत को अंग्रेजों ने अपनी बहादुरी से नहीं, बल्कि छल-कपट और जालसाजी की शर्मनाक हरकतों के द्वारा जीता था और ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली थी। परन्तु बहुत शीघ्र ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मूर्खतापूर्ण बर्बरताओं और निकृष्टतम स्वार्थों-लालचों ने भारत में राष्ट्रीय सशस्त्र क्रान्ति की उर्वरा भूमि तैयार कर दी। यह बात दूसरी है कि उन दिनों कोई केन्द्रीय संगठन नहीं था, फिर भी हैदरअली और नाना फडनवीस आदि दूरदर्शी नेताओं ने बहुत पहले ही अंग्रेजों की बदनीयती और हिन्दुस्तान की तबाही को अच्छी तरह से समझ लिया था। उन्होंने केन्द्रीय संगठन बनाने का प्रयास किया था, परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिल सकी।

सन् 1748 से 1947 तक इन दो सौ वर्षों में यह समान प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि देश की साधारण जनता से लेकर राजा-महाराजाओं तक यह अनुभव कर रहे थे कि ब्रिटिश जुए को उतार फेंकने में ही देश का परित्राण और कल्याण है। अतएव सशस्त्र राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास में 1857 से पूर्व देशी राजाओं-महाराजाओं द्वारा अंग्रेजों से लड़ी गई लड़ाइयों को जोड़ लेने पर दो शताब्दियों का इतिहास बनता है।

अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी संगठन के कार्यकारी अध्यक्ष श्री शीलभद्रयाजी सांसद ने भी सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम के इतिहास को दो सौ वर्षों का स्वीकार किया है। हिंसात्मक एवं अहिंसात्मक आन्दोलनों के आधार पर उन्होंने दो शताब्दियों के इतिहास का काल-विभाजन किया है।

इस सम्बन्ध में अखिल भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी संगठन के अध्यक्ष पं. शीलभद्रयाजी का अभिमत है– "भारत की आजादी की लडाई का आरम्भ 1757 में प्लासी की लडाई से हुआ। यही वह समय था जब भारत सार्वभौम सत्ता सम्पन्न गणराज्य घोषित हुआ। हम स्वतन्त्रता–संग्राम की अध्ययन की दृष्टि से मुख्य रूप से पाँच चरणों में बाँट सकते है। पहला चरण 1748 से 1848 तक जिस कालावधि में अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह भडक उठे थे। महाराष्ट्र और पंजाब में सत्रहवी शताब्दी में जो 'हिन्दू राष्ट्रवाद' की भावना जागृति हुई थी, वह अट्‌ठारहवीं शताब्दी में 'राष्ट्रीय चेतना' के रूप में विकसित हुई और सारे देश में व्याप्त हो गयी। इस कालखण्ड में अनेक राष्ट्रीय वीर पुरुषों का जन्म हुआ, जिन्होंने सशस्त्र संग्राम का नेतृत्व किया।

दूसरे चरण में सन् 1849 से 1909 तक का काल आता है जिसमें विश्व प्रसिद्ध सन् '57 का राष्ट्रीय संग्राम हुआ– जिसने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की जड़ें उखाड फेंक दी थी। यहाँ से राष्ट्रीय संग्राम ने एक नया मोड़ लिया।

तीसरे चरण में गदर पार्टी का संग्राम आता है जिसका समय था सन् 1909 से 1920 तक। इस कालखण्ड में भारतीय राष्ट्रीय चेतना न केवल भारत में अपितु विदेशों में व्याप्त हो गई थी। विदेशों में गदर पार्टी की स्थापना हुई। इस पार्टी ने विदेशों में स्थित भारतीयों का संगठन किया और भारतीय राष्ट्रीय चेतना जागृत की और तन–मन–धन से स्वतन्त्रता–संग्राम को तीव्र किया। यह अध्याय अनेक दृष्टियों से स्वतंत्रता–संग्राम का महत्वपूर्ण अध्याय है।

सन् 1920 से 1939 का कालखण्ड स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का स्वर्णयुग रहा है। इस काल खण्ड में स्वतन्त्रता संग्राम व्यापक रूप धारण कर त्रिमुखात्मक हो गया था। कांग्रेस दल द्वारा उदारवादी आन्दोलन, स्वराज्यदल द्वारा काम–रोको–आन्दोलन और क्रान्तिकारी दल द्वारा उग्रवादी आन्दोलन चला। फलस्वरूप सारा देश जाग उठा। आज़ादी का स्वर बुलन्द हुआ।

स्वतन्त्रता-सग्राम के अन्तिम चरण 1940 से 1947 मे आजाद हिन्द फौज का स्वाधीनता सग्राम आता है। इस कालखण्ड मे नेताजी के नेतृत्व में जापान, सिगापुर आदि विदेशो मे आजाद हिन्द फौज की स्थापना हुई। यह उल्लेखनीय है कि सिगापुर मे भारतीय आज़ाद हिन्द सरकार की स्थापना हुई थी जिसके राष्ट्रपति नेताजी सुभाष चन्द्र बोस बने। इस काल खण्ड मे विगत विद्रोह, अवरोध, लडाइयो आदि ने विधिवत् युद्ध का रूप ले लिया था। आज़ाद हिन्द फौज ने बर्मा के जगलो के मार्ग से अंग्रेजो सेना पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध हुआ। मणिपुर और नागालैंड पर आजाद हिन्द फौज का अधिकार हो गया था। अस्तु,

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर दो शताब्दियो के स्वतंत्रता–सग्राम के इतिहास का निम्न प्रकार काल विभाजन किया जा सकता है :

(1)	अग्रेजो के विरुद्ध प्रतिरोध–विद्रोह	.	1748 से 1848 तक 100 वर्ष
(2)	सन् '57 का राष्ट्रीय सग्राम	.	1849 से 1909 तक 60 वर्ष
(3)	ग़दर पार्टी का सग्राम	.	1909 से 1920 तक 12 वर्ष
(4)	त्रिकोणात्मक स्वाधीनता सग्राम	:	1920 से 1939 तक 20 वर्ष
(5)	आजाद हिन्द फौज का स्वाधीनता सग्राम	:	1940 से 1947 तक 8 वर्ष
		योग	200 वर्ष

इन दो शताब्दियो के कालखण्ड मे देश और विदेशो मे जो घटनाएँ और प्रघटनाएँ घटित हो रही थीं, उनका प्रभाव प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से स्वाधीनता सग्राम पर भी पड रहा था। तदनुसार सशस्त्र राष्ट्रीय क्रान्ति की पद्धति और कार्यक्रम भी बदलते जा रहे थे। किन्तु स्वाधीनता-संग्राम की मूल

प्रवृत्ति सशस्त्र क्रान्ति और मुख्य लक्ष्य आजादी प्राप्त करना था। इस सम्बन्ध में भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने एक महत्त्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन करते हुए 12 जून 1989 को कहा– स्वतंत्रता-संग्राम में गांधीवादियों और क्रान्तिकारियों के योगदान को अलग–अलग करके आंकना उचित नहीं है, क्योंकि महात्मा गांधी सहित सभी क्रान्तिकारी थे। आजादी की लड़ाई में क्रान्तिकारी और गांधीवादी एक-दूसरे के पूरक रहे और उनमें कहीं टकराव नहीं था।

द्वितीय अध्याय

अंग्रेजों के विरुद्ध प्रतिरोध व विद्रोह

(1748 से 1848 तक)

विषय क्रम .

1. मुगल बादशाहो की अदूरदर्शिता
2. काल—कोठरी
3. अग्रेज राज्य की स्थापना
4. महाराष्ट्र मे राष्ट्रीयता का उदय
5 आन्ध्र मे राष्ट्रीयता का उदय
6 कर्नाटक मे राष्ट्रीयता का उदय
7. केरल मे राष्ट्रीयता का उदय
8. मद्रास मे राष्ट्रीयता का उदय
9. पंजाब मे राष्ट्रीयता का उदय
10. बिहार मे राष्ट्रीयता का उदय
11. आसाम में राष्ट्रीयता का उदय
12. उड़ीसा मे राष्ट्रीयता का उदय
13. गुजरात मे राष्ट्रीयता का उदय
14. बगाल मे राष्ट्रीयता का उदय
15. अग्रेजो के विरुद्ध छुटपुट प्रतिरोध एव विद्रोह : 1748–1848
16. निष्कर्ष

मुग़ल बादशाहों की अदूरदर्शिता

सन् 1748 से 1848 के कालखण्ड मे इग्लिस्तान की दो तरह की तस्वीरे हमारे सामने आती है, एक सत्ता पाने के पहले की और दूसरी सत्ता पाने के बाद की। पहली तस्वीर मे अग्रेजो का जो चरित्र उभरता है, वह कोई उदार मानवतावादी नही, अपितु अत्यन्त बर्बर, जालसाजी, विश्वासघाती, मक्कारी, जासूसी, लोभी चरित्र है। दूसरी तस्वीर मे उनकी लूटमारो, शोषणो एवं अत्याचारो के द्वारा अधिकाधिक सत्ता हथियाने सम्बन्धी चरित्र उभरकर सामने आता है। एक ही चरित्र के ये दो पहलू थे। प्रसिद्ध इतिहासकार ने इस सम्बन्ध मे कहा "ब्रिटिश हिन्दुस्तान के आरम्भ के इतिहास का ध्यान आता है, जी कि शायद दुनिया भर मे राजनीतिक छल की सब से बड़ी मिसाल है।"

अट्ठारहवी शताब्दी मे जहाँ इग्लिस्तान बर्बर तथा प्रतिक्रियावादी था, वहाँ भारत की सभ्यता कही ऊँची थी। इस सम्बन्ध मे प. नेहरू का अभिमत है– "इस मामले मे और बहुत सी दूसरी बातो मे जिनका मानवता और व्यक्ति की प्रतिष्ठा से सबध है, हिन्दुस्तान कही आगे था और उसकी सभ्यता कही ऊंची थी। "इग्लिस्तान से बहशियाना, जाब्ता फौजदारी वाले बर्बर रूप ने उसके दूसरे रूप, उदार, बहादुर, सुसस्कृत, आजादी समर्थक वाले रूप को खत्म कर दिया था। फलत हिन्दुस्तान मे बर्बरता का नगा नाच हुआ। इन दो इग्लिस्तान मे से कौनसा इंग्लिस्तान हिन्दुस्तान मे आया? शेक्सपियर और मिल्टनवाला, उदार बाती और लेखो और वीरता के कारनामोवाला, राजनीतिक क्रान्ति और आजादी के हक मे लड़ाई करनेवाला विज्ञान और कला कौशल मे उन्नति वाला इग्लिस्तान यहाँ आया था या फिर बहशियाना, जाब्ता फौजदारीवाला, बर्बर व्यवहार करने वाला, और सामन्तीवादी और

प्रतिक्रियावादी इंग्लिस्तान आया ? क्यों कि दो इंग्लिस्तान रहे हैं, जिस तरह कि हर देश में जातीय चरित्र के दो पहलू होते हैं ।"[1]

अंग्रेजो के आने के पहले हिन्दुस्तान एक धनी और समृद्ध देश था । यह बात उल्लेखनीय है कि उस समय का इंग्लैण्ड भारत की आबादी, धन-वैभव, व्यापार, कला-कौशल, दस्तकारी, खुशहाली शासन प्रबन्ध, विद्या-बल, संस्कृति और सभ्यता मे किसी बात मे भी किसी तरह की बराबरी नहीं कर सकता था । अंग्रेज इतिहास लेखक एम सी हिल लिखता है– "अट्ठारहवी सदी के मध्य मे बगाल के किसानो की हालत उस समय के फ्रांस अथवा जर्मनी के किसानो की हालत मे कही बढकर थी ।" हिन्दुस्तान की समृद्धि और खुशहाली के सम्बन्ध मे साम्राज्य-निर्माता के नाम से प्रसिद्ध क्लाइव ने सन् 1757 की प्लासी की लडाई के बाद बगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद को "लन्दन के इतना विस्तृत, आबाद और सम्पन्न शहर बताया था ।"

वास्तव मे बंगाल एक सम्पन्न एव खुशहाल राज्य था । हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासन का पहला पूरा अनुभव बगाल को हुआ । उस राज्य का आरम्भ खुल्लमखुल्ला लूट-मार से हुआ और उस मे अधिक से अधिक जमीन का लगान केवल जीवित किसान से ही नही, बल्कि उसके मरने पर भी वसूल किया जाता था । अंग्रेजो के मन मे धन का प्रबल लालच बढता गया । प्लासी के युद्ध के बाद बगाल का लूट का सारा धन लन्दन पहुँचने लगा । इतिहासकारो का अभिमत है कि हिन्दुस्तानी दौलत ने ही इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया । इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति सन् 1770 मे शुरू हुई, जब कि अंग्रेजो के साम्राज्य की स्थापना भारत मे सन् 1757 मे हुई थी । जब से दुनिया शुरू हुई है, किसी भी पूंजी से कभी भी इतना लाभ नही हुआ जितना कि हिन्दुस्तान की लूट से, क्यों कि करीब-करीब पचास बरस तक ग्रेट ब्रिटेन का कोई भी मुकाबिला करने वाला नही था ।

उन दिनो हिन्दुस्तान के उद्योग-धन्धे अपनी उन्नति के शिखर पर थे । यहाँ की कारीगिरी और दस्तकारी जगत प्रसिद्ध थी । हिन्दुस्तानी माल की

1. प जवाहर लाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक :

अच्छाइयों से आकर्षित होकर ही अंग्रेज भारत आए थे, क्योंकि इस माल की यूरोप में बड़ी खपत थी। ब्रिटिश इण्डिया कम्पनी का आरम्भ के दिनो में मुख्य धन्धा ही हिन्दुस्तानी माल का यूरोप मे रोजगार करना था, और यह तिजारत कम्पनी के लिए लाभदायी सिद्ध हुई और कम्पनी के हिस्सेदारो को लम्बे नफ़े मिलते रहे।

सन् 1600 ई. में इंग्लैण्ड की महारानी "एलिजेबेथ" ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की थी। यह कम्पनी कुछ अंग्रेज सौदागरो की एक मण्डली थी, जो भारत के साथ व्यापार करने के लिए पहले से ही उत्सुक थी। सन् 1608 में पहला अंग्रेजी जहाज भारत पहुँचा। सूरत उस समय भारत वर्ष के व्यापार की एक प्रसिद्ध और खास जगह थी। जहाज का कप्तान मिस्टर हाकिन्स सब से पहला अंग्रेज था जिसने समुद्र के मार्ग से आकर भारत की भूमि पर पैर रखा। 6 फरवरी 1913 को सम्राट जहाँगीर ने सूरत मे अंग्रेजो को व्यापर करने के लिए एक कोठी बनाने की आज्ञा दे दी और यह भी आज्ञा दी कि मुग़ल दरबार मे उनका एक दूत रहा करे।

अंग्रेज किस प्रकार हिन्दुस्तान मे अपने पैर धीरे-धीरे जमाते गए, और किस प्रकार उन्होने सत्ता हथियायो, इस सम्बन्ध मे यह कहावत् पूरी तरह चीरतार्थ होती है : "मुगलो ने अंग्रेजों को सल्तनत बख्श दी।" भारत मे अंग्रेजों के राज्य स्थापना के पीछे मुगल बादशाहो की अदूरदर्शिता थी।

सन् 1640 मे शाहजहाँ की एक लडकी किसी तरह जल गई। उसका इलाज करने वालो मे एक अंग्रेज डॉक्टर भी था। शाहजादी अच्छी हो गई। जब इलाज करने वालो को इनाम देने का समय आया, तब अंग्रेज डॉक्टर की प्रार्थना पर शाहजहाँ ने बंगाल भर के अन्दर अंग्रेजो के माल पर चुगी माफ कर दी और उन्हें उस प्रान्त में अपनी कोठियाँ हुगली में बनाने तथा उनके जहाजों को हुगली नदी तक आने की अनुमति दे दी।

इस के बाद औरंगजेब का समय आया। बम्बई का टापू जहाँ पर केवल एक छोटी पुर्तगाली बस्ती थी, सन 1661 में इंग्लैण्ड के बादशाह को पुर्तगालियो से दहेज में मिला और सन् 1688 मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे अपने बादशाह

से खरीद लिया। सन् 1654 के करीब शिवाजी का बल बढने लगा। सूरत के अग्रेज कोठीवालों ने औरंगजेब को शिवाजी के विरुद्ध मदद देने तथा मुगल साम्राज्य की ओर से सूरत की रक्षा करने का वादा किया। औरंगजेब इस पर प्रसन्न होकर अंग्रेजो को अपना व्यापार बढाने की अनेक तरह की नई सुविधाएं प्रदान कर दीं।

भारत मे अन्तिम यूरोपियन जाति जो इस सिलसिले मे यहाँ आई, फ्रान्सीसी थी। अग्रेजो की ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ही तरह फ्रासीसियो ने भी ठीक उसी उद्देश्य से भारत मे व्यापार करने की इच्छा से सन् 1664 मे एक कम्पनी कायम की।

फ्रांसीसियों की नीति आरम्भ ही से यह थी कि वे अपने सद्व्यवहार द्वारा भारतीय नरेशो को प्रसन्न करके अपने पक्ष मे लेने की कोशिश करते थे। फ्रासीसियो के इन व्यवहारो से अंग्रेजों के दिल मे फ्रासीसियो के प्रति ईर्षा उत्पन्न होना स्वाभाविक था। फलस्वरूप दोनो कम्पनियों में प्रति-स्पर्धा बराबर जारी रही। ये दोनो कम्पनियां इस देश मे अपनी–अपनी फ़ौजें रखती थी और जहाँ कही किसी दो भारतीय नरेशों में लडाई होती थी, तो एक एक का और दूसरी दूसरे का पक्ष लेकर लड़ाई में शामिल हो जाती थी। इनका उद्देश्य भारतीय नरेशो की सहायता का सहारा लेकर अपने यूरोपियन शत्रु को समाप्त करना होता था।

–0–

काल–कोठरी

उन दिनो हिन्दुस्तान मे अग्रेजो के बढ़ते प्रभाव को खत्म करने की जिन सूबेदारो ने कोशिश की थी, उनमें बंगाल का नवाब अलीवर्दी खाँ और उसी का नाती सिराजुद्दौला था। नवाब अलीवर्दी खाँ बंगाल, बिहार और

उड़ीसा तीनों प्रान्तों का सूबेदार था और बड़ा दूरदर्शी था। सब से पहले इस बात को वह बहुत अच्छी तरह समझ गया था कि व्यापार के बहाने अंग्रेजो द्वारा भारत मे अंग्रेजी राज्य कायम करने की अन्दर-अन्दर योजनाएँ बनाई जा रही हैं। अंग्रेजों की इन भीतरी चालों और इरादों को वह खूब जानता था, पर वह लाचार था। एक ओर दिल्ली शासकों का संरक्षण अंग्रेजों को प्राप्त था और दूसरी ओर मराठों के सैनिकों के प्रबल आक्रमणों से वह बेहद परेशान था। इन सब कारणों के बावजूद अलीवर्दी खाँ ने यह ठान लिया था कि अंग्रेजों की रण-शक्ति को नाश किये बिना बंगाल राज्य का कल्याण कदापि नहीं होगा। इसीलिए वह अपने नाती युवराज सिराजुद्दौला को समय-समय पर सावधान किया करता था।

अलीवर्दी खाँ एक लोकप्रिय शासक था। हिन्दू-मुसलमान सभी का वह प्रीति-पात्र था। वह सरल स्वभाव, शान्त, उत्साहशील, न्यायपरायण और धर्मात्मा नवाब था। वह हिन्दुओं पर विशेष श्रद्धा रखता था। बंगाल की प्रजा उसके शासन में सुखी थी और किसान खुशहाल थे। अलीवर्दी खाँ की मृत्यु के बाद उसका नाती सिराजुद्दौला बंगाल का शासक बना। वह अपने बाल्यकाल से साहसी और बहादुर था। अपने नाना अलीवर्दी खाँ के साथ वह कई लड़ाइयों में भाग ले चुका था। उसकी असाधारण वीरता, निडरता एवं ज्ञान को देखकर ही अलीवर्दी खाँ ने 24 वर्ष के नवयुवक को बंगाल, बिहार और उड़ीसा का युवराज-पद प्रदान किया था। दिन-प्रति-दिन अंग्रेजों की बढ़ती हुई धृष्टता और अनुशासन-हीनता को देखकर सिराजुद्दौला ने 20 जून 1756 को कलकत्ते पर आक्रमण किया और "अंग्रेजी दरबार-कोठी" के तमाम अंग्रेजों को कैद कर लिया। यह वही काल-कोठरी है जिसे अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने सिराजुद्दौला को कलंकित करने के लिए ही काल-कोठरी की कल्पित कहानी गढ़ी थी। सभी अंग्रेज व्यापारी सन् 1756 मे भारत के सब से अधिक उपजाऊ और समृद्ध प्रान्त बंगाल से निकाल बाहर किये गए। सिराजु-द्दौला ने कलकत्ते का नाम बदलकर "अलीनगर" रखा था।

उन दिनों सत्ता के लिए जो होड़ मची हुई थी, उसका विश्लेषण करते हुए पं. नेहरू जी ने लिखा— "अट्ठारहवीं सदी में, हिन्दुस्तान में, अधि-

कार के चार दावेदार थे . दो इनमे से हिन्दुस्तानी थे और दो विदेशी । हिन्दुस्तानी थे मराठे और दक्खिन मे हैदरअली और उसका पुत्र टीपू सुलतान और विदेशी थे अंग्रेज और फ्रांसीसी । सदी के पहले आधे हिस्से मे ऐसा जान पड़ता था कि इनमे से मराठे सारे हिन्दुस्तान पर शासन स्थापित कर लेगे और मुगल सल्तनत के उत्तराधिकारी बन जायेगे । सन् 1737 मे ही उनकी सेनाएं दिल्ली के फाटको तक पहुँच गई थी और कोई शक्ति इतनी बलशाली न रह गई थी कि उनका सामना कर सके ।"

–o–

अंग्रेज राज्य की स्थापना

नवाब सिराजुद्दौला को कलकत्ता विजय का बदला क्लाइव ने एक वर्ष के बाद छल-कपट के साथ लिया । बंगाल मे, क्लाइव ने, जाल-साजी, छल-कपट और विद्रोह को बढावा देकर सिराजुद्दौला से नाम मात्र की लड़ाई लड़कर 23 जून 1757 को प्लासी का युद्ध जीत लिया । इसके साथ ही अंग्रेजो के साम्राज्य की नीव पड़ी । इस प्रकार भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अन्त कुछ समय के लिए हो गया । यह इतिहास की अजीब बात है कि अमरीका के संयुक्तराष्ट्र की स्वतंत्रता का प्राय. वही समय था जो कि हिन्दुस्तान के स्वतंत्रता खोने का ।

यह बहुत दुर्भाग्य की बात है कि सिराजुद्दौला की पराजय के पीछे उसी के सरदारो का विश्वासघात था । उसकी सारी सेना विश्वासघाती से छलनी-छलनी हो चुकी थी । ऐन मौके पर जबकि विजय श्री सिराजुद्दौला के पैरो तले खेलती हुई-सी दिखाई देती थी, उसके विश्वस्त सरदार मीरजाफ़र,

रायदुर्लभ और यारलफ्त अपनी 45,000 सेना के साथ मुड़कर अंग्रेजों की सेना मे जा मिले। इस सम्बन्ध मे कर्नल मालेसन ने लिखा है--

"जबतक मीरमदन जिन्दा रहा, तबतक वह अपनी केवल 1200 सेना से तीनो विश्वासघातको के प्रयत्नो को निष्फल करता रहा। उसके जीते-जी अंग्रेजी सेना के लिए अपने पैर जमा सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु मीर-मदन की मृत्यु से सिराजुद्दौला लाचार हो गया। उसका दिल टूट गया।"

अंग्रेज इतिहास-लेखको द्वारा सिराजुद्दौला का चरित्र कलंकित किया गया, किन्तु उसकी सच्चाई, उसकी योग्यता और उसकी ईमानदारी मे किसी तरह का भी सन्देह नही हो सकता। उसमें यदि कुछ दोष भी था, तो सिर्फ यह था, विदेशियो की तिकड़मी चालो को न समझ सकना, उन पर विश्वास और दया करना और बराबर उनके साथ अमन से रहने की आशा करना।

युद्ध मे उसका एकमात्र वफादार-सेनापति मीर मदन वीरगति को प्राप्त हुआ तो वह अकेला पड़ गया था। लिहाजा उसे हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद भाग पड़ा। पर वहाँ भी कोई उसका साथ देने को तैयार नही था, तो वह 28 जून की रात फ़कीर के वेश में मुर्शिदाबाद को छोडकर भग-वान् गोला नाम के शहर की ओर निकल गया। बाद में उसे राजमहल मे गिरफ्तार करके मुर्शिदाबाद लाया गया। जहाँ उसका सोते हुए, मुहम्मद बेग ने कत्ल कर दिया।

विदेशी इतिहासकारो मे केवल कर्नल मालेसन ही एक ऐसा है जिसने सिराजुद्दौला के साथ इन्साफ करने की कोशिश की है। वह लिखता है : "सिराजुद्दौला में और चाहे कोई भी दोष क्यो न रहे हों, उसने अपने मालिक के साथ न विश्वासघात किया और न अपने देश को बेचा। इस बात से भी इन्कार नही किया जा सकता कि शराफ़त के पैमाने पर सिराजुद्दौला का नाम क्लाइव के नाम की अपेक्षा बहुत ऊँचा नजर आता है। इस शोकान्त नाटक के प्रधान पात्रों मे अकेला एक सिराजुद्दौला ही ऐसा था जिसने किसी को धोखा देने की कोशिश नही की।"

20 अक्तूबर 1760 को मीर कासिम को बंगाल की सूबेदारी सौंप दी गयी। मीर कासिम की योग्यता, बल, प्रजा की हित-चिन्ता, दूरदर्शिता, वीरता और कुशल प्रशासन की प्रशंसा सभी इतिहास-लेखकों ने मुक्त कण्ठ से की है। किन्तु वारेन हेस्टिंग्स के अनुसार मीर कासिम को इस पद के लिए इसलिए चुना गया था, क्योंकि वह कायर था और उसमे युद्ध की प्रवृत्ति नही देखी गई थी। किन्तु उसने यह अनुमान एकदम गलत साबित कर दिखाया।

नवाब मीर कासिम

अंग्रेज सौदागरो की जिन मनमानी और गैर कानूनी माँगो से भारतीय सौदागरो और जमीदारो की गहरी क्षति हुई थी, उसके सामने घुटने टेकने से उसने साफ़ इन्कार कर दिया। कम्पनी के अनुचित हस्तक्षेप से बचने के लिए वह अपनी राजधानी को मुर्शिदाबाद से मुंगेर ले गया था। लडाई का उसका इरादा तो न था किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे इतना दबाया कि वह लड़ने पर मजबूर हो गया। इस युद्ध मे उसे दिल्ली के मुगल सम्राट शाह आलम और लखनऊ के नवाब शुजा उद्दौला का भी साथ मिला, परन्तु उनकी सम्मिलित सेना भी कम्पनी की नये ढग से प्रशिक्षित सेना के सामने टिक नही सकी। फिर उसकी सेना के एक अंग्रेज सिपाही के विश्वासघात ने रही-सही कसर पूरी कर दी। 1764 मे बक्सर के युद्ध मे बुरी तरह पराजित होकर मीर कासिम को 1777 मे अपनी मृत्यु तक दर-ब-दर हो भटकना पड़ा। किन्तु नवाब की पराजय से सघर्ष का अन्त नही हुआ। उपद्रव और विद्रोह बराबर होते रहे।

इस दु:खान्त के सम्बन्ध में भारतीय इतिहासकार श्री गिरधर शुक्ल का यह निष्कर्ष है "एक ओर भारतीय शासकों की भावुकता व अदूरदर्शिता दूसरी ओर भारतीय जनता मे राजनैतिक बोध तथा उससे उत्पन्न होने वाले देश प्रेम और राष्ट्रीयता के भावो की कमी और तीसरी ओर उच्च श्रेणी के भारतवासियो के चरित्र की लज्जा-जनक स्वार्थपरायणता और विश्वास

घातकता इन तीनो ने मिलकर केवल सिराजुद्दौला का ही अन्त नही कर दिया, वरन् सिराजुद्दौला की लाश के साथ–साथ भारत की आजादी को भी सदियो के लिए दफन कर दिया।"

इस प्रकार अंग्रेजो ने छल–कपट और षडयन्त्रो के द्वारा बगाल, उडीसा और बिहार राज्यो पर अपना अधिकार जमा लिया। उन दिनो अंग्रेजो का प्रतिरोध करने वाली शक्तिशाली जाति यदि कोई थी तो वह मराठा–जाति थी। दिन-प्रति-दिन मराठा-जाति अपना सैनिक प्रभाव बढ़ाती जा रही थी। सारे देश मे अपना साम्राज्य स्थापना के लिए वह अग्रसर होती जा रही थी। सारे देश मे उसकी सैनिक धाक जम गई थी। इस जाति ने अपने पराक्रमों से इतिहास को एक नया मोड़ दिया। मुगलो के अस्त के बाद और अंग्रेजो के राज्य–शासन के उदय से पूर्व के कालखण्ड मे देश मे मराठो का शासन था। सन् 1737 मे ही मराठो की सेनाएँ दिल्ली के फाटको तक पहुँच गई थी और कोई शक्ति उतनी बलशाली न रह गई थी कि उनका सामना कर सके। सन् 1758 मे युद्ध जीतकर मराठो ने पजाब मे अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। इतिहासकारो का अभिमत है मुगल साम्राज्य का नाश अंग्रेजो के हाथो नही हुआ, वरन् मराठो की वजह से हुआ। सच्चाई तो यह है कि मराठो को कुचलने के लिए मुगलो और अंग्रेजो का सयुक्त मोर्चा बन गया था। इसके बावजूद मराठो का हौसला बुलन्द था। अपने राज्य का विस्तार वे बराबर करते जा रहे थे। उन्होने कई लडाइयाँ लड़ी और विजय प्राप्त की।

-0-

महाराष्ट्र में : राष्ट्रीयता का उदय

महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी

मराठा-जाति मे गजब की सगठन शक्ति, धार्मिक एव राष्ट्रीय चेतना थी। प्रति-रक्षा की भावना ने उनमे राष्ट्रीय चेतना को जगाया। औरगजेब की कट्टारता, असहिष्णुता और बर्बर अत्याचारो ने मराठा जाति में एक वीर पुरुष शिवाजी को जन्म दिया था। "मराठो का गौरव और मुगल साम्राज्य की घर्रा देने-वाला अगर कोई था तो वह मराठो का नायक शिवाजी। मुगल हाकिम तो शिवाजी से इतने डर गये थे कि अपनी रक्षा के लिए उन्हे धन देने लगे। यही इतिहास प्रसिद्ध 'चौथ' यानी लगान का चौथा अश, जिसे मराठे जहाँ जीते, वही वसूल करते थे। इस तरह मराठो की ताकत तो बढ़ती गई और दिल्ली का साम्राज्य कमजोर होता गया। सन् 1674 ई॰ मे शिवाजी ने बडी धूमधाम के साथ अपनी राज्याभिषेक-उत्सव मनाया और मृत्यु तक वे एक के बाद एक राज्य जीतते गए।

मराठा-जाति मे जागृति, धार्मिक भावना, एकता और राष्ट्रीय चेतना को पैदा करने मे महाराष्ट्र के सन्त कवियो – रामदास और तुकाराम की कविताओ और भजनो ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। समर्थ रामदास स्वामी ने जनता को "स्वराज्य ही स्वधर्म है" इस मन्त्र का प्रबोध देते हुए कहा था : "स्वधर्म के लिए अपने प्राणो को अर्पित करो और अपने प्राणो को न्यौछावर करते समय अपने धर्म के शत्रुओ के प्राणो की बलि ले लो। इस प्रकार संघर्ष करते हुए अपने राज्य को पुन स्वाधीन कर लो।" इस प्रकार के प्रबोधो से जनता मे धार्मिक एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत हुई। उन्ही दिनों

समर्थ रामदास

विजातियो पर विजय प्राप्त करने के लिए एक वीर-साहसी नेतृत्व शिवाजी के रूप मे उदय हुआ था। आज भी महाराष्ट्र मे इस वीर पुरुष शिवाजी की पूजा बड़ी श्रद्धा के साथ होती है। नेहरू जी लिखते है– "शिवाजी उभरती हुई हिन्दू जातीयता का प्रतीक था और पुराने साहित्य से प्रेरणा प्राप्त करता था, वह साहसी था और उसमे नेतृत्व के बड़े गुण थे। उसने मराठों को एक सुदृढ और सम्मिलित सैनिक दल का रूप दिया, उन्हें एक राष्ट्रीय पृष्ठभूमि दी, और ऐसी शक्ति बना दिया, जिसने कि मुगल सुल्तनत को बिगाडकर छोडा। वह सन् 1680 मे मरा, लेकिन मराठों की शक्ति बन गई थी।"

स्वामी विवेकानन्द ने अपने 'शिवचरित्र' मे लिखा है– "अखण्ड भारत का स्वप्न महाराष्ट्र मे सर्वप्रथम समर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी ने देखा था।"

इस बीच सन् 1761 मे अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण ने मराठों के साम्राज्य स्थापित करने के स्वप्न को नष्ट कर दिया। इस पराजय के बाद क्रमशः उन्होंने अपने को संभाला। अन्दरूनी शक्ति के रूप में मराठे उभरकर आए। मराठो का साम्राज्य कई स्वतंत्र राज्यों में बँट गया। पूना के पेशवा के संरक्षण में इनका एक गुट्ट अवश्य स्थापित रहा। बड़े राज्यों के सरदारो में ग्वालियर के सिन्धिया, इन्दौर के होलकर और बडौदा के गायकवाड थे।

ज्यों-ज्यों अठारहवी सदी समाप्त होने आई, यह स्पष्ट हो गया कि लड़ाई केवल दो शक्तियो में अर्थात् मराठो और अंग्रेजों मे और सभी राज्य और प्रदेश इन दोनों को मातहत या उनसे जुडे हुए थे। यह दुर्भाग्य की बात थी कि मराठा सरदारों में, आपस मे बैर चल रहा था और अंग्रेजों ने इनसे

अलग-अलग लड़कर इन्हे हराया । औरंगजेब के समय मराठो मे जो संगठन एव एकता की शक्ति थी, उसे अग्रेजो ने अपनी कूटनीति के द्वारा नष्ट किया । उनकी कूटनीति का मूलमन्त्र- "फूट डालो और हुकूमत करो" था । फिर भी मराठो ने कुछ मार्के की लड़ाइयाँ जीती थी, विशेषकर 1804 मे आगरे के पास इन्होने अंग्रेजो को बुरी तरह परास्त किया । कई बार ऐसा होता था कि हारे हुए अग्रेजो को इंग्लैण्ड से सेना, धन, हथियारो की मदद मिल जाती थी और वे उठ खड़े हो जाते थे । ऐसी मदद दूसरो को नसीब नही थी, क्योंकि समुद्र के मार्गो पर अग्रेजो का अधिकार था ।

प. नेहरू लिखते है- "फिर भी मराठो ने बहुत से योग्य व्यक्ति पैदा किये जो राजनीतिज्ञ भी थे और योद्धा भी, और इनमे नाना फड़नवीस, पेशवा बाजीराव (प्रथम), ग्वालियर के महादजी सिन्धिया और इन्दौर के यशवन्तराव होलकर की गिनती होनी चाहिए, और हमे उस अद्भुत नारी को भी न भूलना चाहिए अर्थात् इन्दौर की रानी अहिल्याबाई को । उनके सैनिक अच्छे थे, अपनी जगह पर डटे रहनेवाले और वीरता से मृत्यु का सामना करने-वाले ।"

पेशवा बाजीराव ने अग्रेजो को भारत से खदेडकर मराठा साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय किया था । उसकी मृत्यु के बाद नाना फड़नवीस ने उस योजना को पूरा करने में अपने को समर्पित कर दिया । मराठो ने अंग्रेजों से कई टक्करे ली और उन्हे कई बार हरा दिया । 1794 में ग्वालियर के महादजी सिन्धिया और 1800 में पेशवा मन्त्री नाना फड़नवीस इन दोनो राजनीतिज्ञों की मृत्यु के बाद, मराठो की ताकत टुकड़े-टुकडे हो गई । इतिहासकारों की मान्यता है "नाना फड़नवीस के साथ मराठा राज्य का सब सयानापन बिदा हो गया ।" इतिहासकार अहिल्याबाई की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं- "अहिल्याबाई एक लोकप्रिया शासिका रही । वह सन् 1765 से 1795 तक यानी तीस वर्ष तक इन्दौर की शासिका थी । जिस समय वह गद्दी पर बैठी, वह तीस वर्ष की नौजवान विधवा थी, अपने राज्य के शासन मे उसे भारी कामयाबी मिली । आज भी वह मध्य भारत में एक सन्त या साध्वी की तरह मानी और पूजी जाती है ।"

6)

नाना फड़नवीस

बालाजी जनार्दन भानु उर्फ नाना फडनवीस का जन्म सतारा मे हुआ था । ये चतुर राजनीतिज्ञ तथा देशभक्त थे । उनमे व्यावहारिक ज्ञान तथा वास्तविकता की गजब की चेतना थी । उन मे तीन गुण थे :– स्वामिभक्ति, स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान । उनके जीवन की यही कसौटी थी । उनके सामने मुख्य रूप से तीन समस्याएँ थी ’– पेशवा पद को स्थिर रखना, मराठा सघ को बनाये रखना तथा अंग्रेजो से मराठा राज्य की रक्षा करना । कुशल राजनीतिज्ञ नाना फडनवीस पर मराठा-संघ की नीति संचालन का भार सन् 1774 से आया ।

मराठा–संघ के घटक–सिंधिया, होल्कर, गायक्वाड तथा भोसलें– इनमें परस्पर द्वेष और कटुता थी । फलत अनेक षड्यंत्र, विप्लव, विश्वासघात आदि घृणित कार्य होते थे । अत: नाना फड़नवीस को बड़ी दूरदर्शिता एवं कूटनीतिज्ञता के साथ संघ का संचालन करना पडा । राज्य के भीतर सुव्यवस्था लाने का भार भी उन पर आ पडा । सभी सरदार पेशवा को अपना नेता मानते थे । परन्तु पानीपत की तीसरी लडाई (1761) के बाद पेशवा का नियंत्रण अत्यन्त शिथिल हो गया था । पेशवा के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में मतभेद और आपसी षड्यंत्र भी चल रहे थे ।

राज्य की ऐसी विलक्षण परिस्थितियों में अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए नाना ने पेशवा की, तथा मराठा राज्य की रक्षा की तथा मराठा संघ को विच्छिन्न होने से बचाया । नाना ने अंग्रेजों के साथ कई बार युद्ध किया और उन्हे पराजित कर पूरा राज्य जीत लिया । नाना की सब से बडी विशेषता यही थी कि उन्होंने अंग्रेजों की बढ़ती हुई शक्ति को रोका और संघ को विच्छिन्न होने से बचाया । परन्तु नाना को मृत्यु के बाद ही मराठा–संघ का अन्त हुआ । लार्ड वेलजली का कथन नाना के सम्बन्ध में स्मरणीय है– “नाना फडनवीस केवल एक योग्य मंत्री ही नहीं था, किन्तु वह ईमानदार तथा उच्च आदर्श से उत्प्रेरित था । उसने अपना सारा जीवन राज्य के कल्याण के लिए तथा अपने अधिकारियों की कल्याण-कामना के लिए उत्सर्ग किया ।

"भारत मे अंग्रेज राज्य की स्थापना के बाद महाराष्ट्र में जो विद्रोह हुए, उनमे उल्लेखनीय है।

शमोसी विद्रोह

1822 मे सतारा और आस-पास के क्षेत्रों (6) मे ब्रिटिश शासन प्रणाली के विरुद्ध चित्तूरसिंह के नेतृत्व मे विद्रोह हुआ था, जो शमोसी विद्रोह के नाम से प्रसिद्ध है।

कोल्हापुर विद्रोह . (1844)

सितम्बर 1844 मे कोल्हापुर के गडकरियो, अंग्रेजो द्वारा नियुक्त मंत्री दाजी कृष्णा पण्डित के विरोध मे विद्रोह कर दिया। 4 अक्तूबर 1844 को स्थानीय लड़ाकू पटुको और सिबड़ी भी विद्रोह मे शामिल हो गये। दाजी कृष्ण पण्डित और अंग्रेजो के मित्र अफसर बंदी बना लिये गये। अंग्रेजो द्वारा निकाले गये कुछ पुराने मंत्रियो को प्रशासन भार सभालने को वापस बुलाया गया। विद्रोही अंग्रेजो के अधीन निकट के इलाके मे छापे मारने लगे। अंग्रेजो ने सैन्य बल का अत्यधिक प्रयोग किया और 1844 के अन्त तक विद्रोहियो से मुख्य किले छीन लिये।

आन्ध्र में राष्ट्रीय चेतना का उदय

सत्ता पाने के प्रतिद्वन्द्वी फ्रान्सीसियो और दूसरे शासको को पराजित कर अंग्रेजो ने जिस राज्य को प्राप्त किया था, उसे स्थिर रखने के लिए उन्हे थोड़ा समय लगा। तेलुगु राज्य के छोटे मोटे राजा, जमीदार, बंटाईदार आदि अधिकारियो ने तुरन्त उनकी अधीनता को स्वीकार नही किया। मुगल साम्राज्य-काल से ही इन लोगों को समय-समय पर अपने से ऊँचे अधिकारियों के विरुद्ध-विद्रोह करने की आदत थी। इनमें से अनेको के अधिकार मे कई दुर्गों के साथ-साथ सेना, हथियार, नौकर-चाकर आदि थे। वे लोग साधारण भूस्वामी थे। राज्य, ऐश्वर्य, भोग-विलासो को भोगने के साथ-साथ राजसी ठाठ-बाट से अपने मण्डलो में कानून की व्यवस्था और शान्ति की स्थापना करते हुए अपना समय व्यतीत कर रहे थे। मुगल साम्राज्य के पतन से उत्पन्न अराजकता की स्थिति के कारण 1748 के बाद इनकी शक्ति में और वृद्धि हो गई थी। कुछ लोग अंग्रेज साम्राज्य की आलोचना स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे। वास्तव मे वे अपनी शक्ति को आजमाना चाहते थे। उन्होने विद्रोह के मार्ग को अपनाया और उत्साह के साथ अपने विद्रोह को प्रदर्शित किया। अंग्रेजो की शासन-व्यवस्था को उखाड़ फेंकने मे फ्रान्सीसी और महाराष्ट्र के शासक प्रयत्नशील थे। विद्रोहियो को सफल होने की पूर्ण आशा थी। इसीलिए 1768 के बाद उत्तर सरकारी क्षेत्र मे और 1800 के बाद रायलसीमा के क्षेत्र में कुछ वर्षो तक अंग्रेजों के लिए अनेक उलझनें और परेशानियाँ उत्पन्न हुईं। उसी समय देश पर शासन करने की दक्षता अंग्रेजो में बहुत कम थी। वे मूलतः व्यापारी थे और व्यापार के द्वारा अधिक लाभ पाने के लिए ही हमारे देश मे आये थे। वे सब कम्पनी के नौकर थे। इसलिए उन्होने अपनी कुशलता और निपुणता व्यापार में ही दिखाई थी। वे सफल व्यापारी तो अवश्य थे, परन्तु शासन करने की प्रतिभा और क्षमता उनमे नही थी। अनेक कारणो से 1768 से 1838 तक सरकारी क्षेत्र मे और 1800 से 1804 तक रायलसीमा मे अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह होते रहे। परन्तु अन्ततः इन सब को कुचल कर अंग्रेजी ने अपना साम्राज्य स्थापित किया।

1768 तक गंजाम मण्डल मे लगभग बीस जमीदार थे। उनके अधीन चौंतीस दुर्ग थे। लगभग 35,000 सेना थी। उन सब मे मात्र तीन चार जमीदारो को छोड़कर सभी ने अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह किया। उनमें मुख्य रूप से पर्लाकिमिडि, गुंसुरु, मोहिरि, प्रतापगिरि के जमीदारो ने अनेक बार विद्रोह किये। उनमे कुछ के पास पर्वत प्रदेश के मध्य मन्नेम प्रान्त में दुर्ग थे। इसलिए बहुत समय तक उन प्रान्तो मे जाने के लिए अंग्रेजो की सेना भयभीत थी। शेष प्रदेशों में अंग्रेजो सेना से पराजित होकर जमीदार मन्नेम के दुर्गों मे पहुँचकर षड्यंत्र करने लगे। 1800 तक मद्रास के शासक मैसूर के सुल्तानों से युद्ध करते रहे। इस कारण सरकारी क्षेत्र के विद्रोह कुचलने के लिए आवश्यक सेना वहाँ नही भेज सके।

गंजाम मण्डल मे जितने विद्रोह हुए थे, उतने विशाखपट्टणम मे नही हुए। पर कुछ वर्षों के बाद वह प्रदेश भी उन सकटो से बच नही सका। ये संकट बहुत करके विजयनगर के राजाओ के प्राबल्य के कारण पैदा हुए थे। 1759–68 के मध्य उत्पन्न अराजकता की स्थिति मे इन्होने विशाखपट्टणम के अनेक जमीदारो और गंजाम के कुछ जमीदारो को हराकर उनकी जमीनो को स्वतंत्र कर दिया। वे निरकुशता के साथ उन सभी प्रान्तो पर शासन करने लगे। पराजित जमीदारो को बन्दी बनाकर विशाखपट्टणम के कारागृह मे रखा गया। विजयनगर के राजाओ के आधिपत्य को ठुकरा कर शासन करना अंग्रेजो के लिए असम्भव हो गया था। इसलिए अंग्रेज उनसे सन्धि करना चाहते थे। परन्तु विजयनगर के राजा के भाई और राज्य के दीवान सीता-रामराजु ने राजा को सधि करने से रोक दिया। बाद मे अंग्रेजो ने अपनी सैन्य शक्ति को बढाकर सारे बलवों को कुचल दिया। 19 वीं शताब्दी के आरम्भ होने तक तेलुगु देश के अधिकाश प्रदेश अंग्रेजो के प्रत्यक्ष शासन मे आ गए थे।

राजा विजयनगरम् द्वारा विद्रोह

सन् 1794 मे विजयनगरम के राजा ने अंग्रेजो को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र लड़ाई शुरू की थी। इस सघर्ष मे विजयनगरम के राजा मारे गए थे।

कर्नाटक में राष्ट्रीयता का उदय

उन दिनों दक्षिण में अंग्रेजों के कट्टर शत्रु हैदरअली और उसका बेटा टीपू सुल्तान थे जिन्होंने अंग्रेजो को कई बार बुरी तरह हराया और ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शक्ति को प्राय. समाप्त कर दिया। लेकिन ये लोग दक्खिन तक ही सीमित रहे और सारे हिन्दुस्तान में जो कुछ होता था, उस पर उनका कोई सीधा असर न होता। इन्होंने जबर्दस्त समुद्री-बेड़ा तैयार किया था।

हैदरअली

हैदरअली मैसूर का एक योग्य एवं बहादुर शासक था। वह हिन्दुस्तान के इतिहास का एक अद्‌भुत प्रधान पुरुष था। उसका एक तरह का राष्ट्रीय आदर्श था और उसमे एक कल्पनाशील नेता के गुण थे। उसमे परिश्रम करने की अद्‌भुत् शक्ति थी। विजयनगर साम्राज्य के अलग-अलग राज्यो को जोड़कर हैदरअली ने मैसूर राज्य की स्थापना की थी। वह बड़ा आत्मसंयमी था और दूरदर्शी भी। सर्वप्रथम उसने यह अनुभव किया था, समुद्र-शक्ति का क्या महत्व है और अंग्रेजों को निकाल-बाहर करने मे समुद्र-शक्ति कितनी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। उसने अपना समुद्र बेड़ा तैयार करना शुरू कर दिया और माल द्वीप टापू पर अधिकार कर लिया और उसे जहाज बनाने और समुद्री कार्यवाहियो का जबर्दस्त अड्डा बनाया। दूसरी ओर हैदरअली का यह प्रयास रहा कि संगठित सैनिक-शक्ति तैयार की जाए। उसने मिल-जुलकर अंग्रेजो को देश से निकाल बाहर करने के उद्देश्य से मराठो, निजाम और अवध आदि के शासको के पास संदेश भेजे। एक जबर्दस्त संगठन तैयार करने का पूरा प्रयास किया, किन्तु वह सफल न हो सका। वह निराश नहीं हुआ, बड़ा बहादुर था। कर्नाटक पर विजय प्राप्त कर हैदरअली मद्रास

की ओर गया, उधर टीपू और कर्नल बेली पुन्निभबाक में युद्धरत थे। अंग्रेजों की पराजय हुई। यह पराजय अंग्रेजों के लिए अशुभ साबित हुई। विजयी हैदर आगे बढता गया और उसने अर्काट के किले और नगर पर भी कब्जा कर लिया। पर 6 दिसम्बर 1782 की रात अर्काट के किले में हैदरअली की मृत्यु हो गई। हैदरअली के मरने के बाद उनके बेटे टीपू सुल्तान ने जहाजी बेड़े को सुदृढ करने के काम को आगे बढाया और इस सिलसिले में नेपोलियन इत्यादि शासकों से सहयोग प्राप्त करने की उसने कोशिश की। टीपू सुल्तान अपने पिता की तरह ही बहादुर था। विद्रोह, पराक्रम और रण-कौशल उसे अपने पिता हैदरअली से विरासत में मिले थे। उसकी माँ उसकी बहादुरी की प्रेरणा-स्रोत थी। वह एक बहादुर महिला थी।

शेरे मैसूर टीपू सुलतान

शेरे-मैसूर टीपू सुलतान

अंग्रेजों से मैसूर की दूसरी लड़ाई में सन् 1783 में अपने पिता की मृत्यु के बाद टीपू सुलतान ने मैसूर की बागडोर संभाली थी। विरासत में मिली लड़ाई को टीपू ने 1784 में अपनी जीत के साथ ही खत्म किया। पाँच साल बाद टीपू सुलतान से अंग्रेज फिर टकराये। इस बार अंग्रेजों ने मराठा व हैदराबाद के निजाम की मदद से टीपू को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। टीपू को मजबूरन आधे राज्य और जुरमाने की बड़ी राशि के साथ अपने दोनों को अंग्रेजों के पास बन्धक रखना पड़ा।

एक महान् देश-भक्त व स्वतंत्रता-प्रेमी अपनी इस हार से तिलमिला गया। टीपू ने अफगानिस्तान, फ्रांस से भी मदद माँगी, पर ज्यादा सफलता नही मिली। इधर लार्ड वेलेस्ली ने गवर्नर बनने के बाद सब से पहला फैसला टीपू सुलतान को कुचल देने का ही किया। उन्होंने टीपू से अधीनता-संधि

स्वीकार करने को कहा, फिर टीपू ने इनकार की वजह बताकर मैसूर पर चढाई कर दी। 17 अप्रैल 1799 मे मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टणम् को अंग्रेजी सेना ने घेर लिया। 4 मई को किले मर हमला हुआ, जिसके फाटक के बाहर टीपू लडते–कडते शहीद हो गये। उनके बेटो ने तुरन्त आत्मसमर्पण कर दिया, मैसूर पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया। इस तरह एक सच्चा देशभक्त अंग्रेजो को भारत से खदेड़ने का सपना अपने मन मे ही लिये चला गया। टीपू ही एक मात्र भारतीय शासक था, जिसने किसी भी भारतीय राजा, हिन्दू या मुसलमान के खिलाफ अंग्रेजो का साथ नही दिया। अगर शेरे–मैसूर का सपना पूरा नहीं हो सका, तो उसके कारण उनके वस के बाहर थे।

टीपू की राजधानी श्रीरंगपट्टणम थी, जो आज खण्डहर के रूप में है। टीपू को अपने पिता हैदरअली की गलतियो का फल भुगतना पडा–सेना के बड़े मदो पर फ्रांसीसियो की नियुक्ति का नतीजा टीपू को उठाना मड़ा।

टीपू सुल्तान के सम्बन्ध मे इतिहासकारो में मतभेद है। कुछ इतिहासकार उसे साम्प्रदायिक सिद्ध करते हैं, कि वह साम्प्रदायिक था, किन्तु महात्मा-गांधी ने अपने अंग्रेजी अखबार 'यग इण्डिया' मे 23 जनवरी 1930 को टीपू सुल्तान के बारे में लिखा— "टीपू सुल्तान अंग्रेज इतिहासकारो की निगाह में तो साम्प्रदायिक मुसलमान था, जिसने हिन्दुओ को जबर्दस्ती मुसलमान बनाया। लेकिन यह सब झूठ है। असलियत या सच्चाई तो यह है कि उसके सम्बन्ध हिन्दुओ से बहुत ही दोस्ताना थे।" दूसरे विद्वान श्री के. आर. मलकानी का अभिमत है– "टीपू सुल्तान श्रीरगा की मूर्ति के सामने हर सुबह सिर नवाता था। उसने सौ मन्दिरो की देखभाल की। मराठा सेना द्वारा बरबाद किये गए श्रृंगेरी के शारदापीठ की उसने पुन: प्रतिष्ठा करवाई। ऐसे व्यक्ति को हिन्दू विरोधी कहना तथ्यो से मजाक करना ही माना जाएगा।"

सारांश यह है कि टीपू सुल्तान को अपने समय के हिन्दू और मुसलमान शासकों से लड़ना पड़ा, परन्तु उसका सब से बड़ा दुश्मन अंग्रेज था। वह सारा जीवन अंग्रेजो से जूझता रहा। उसने किसी भी हिन्दू या मुसलमान शत्रु-शासक को हटाने के लिए अंग्रेजो की मदद नही ली, जबकि उसके विरुद्ध

मराठों और निज़ाम हैदराबाद ने मिलकर अंग्रेजों का साथ दिया। जिस अंग्रेजी फौज के साथ उसकी आखिरी लड़ाई हुई थी और जिसमे वह वीरगति को प्राप्त हुआ था, उसमें मराठा (हिन्दू) और निजाम (मुसलमान) सेनाएँ अंग्रेजों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर लडी थी।

कित्तूर की रानी चेन्नम्मा और रायन्ना :

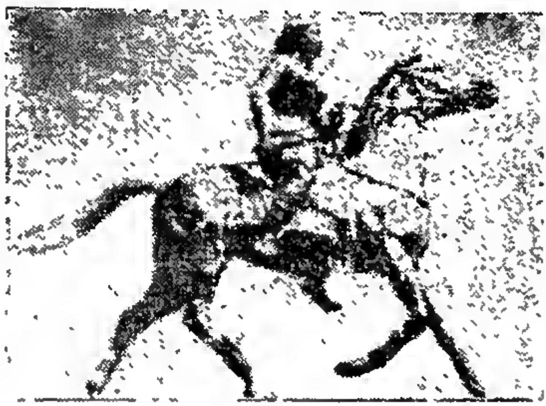

चेन्नम्मा कित्तूर की रानी

जब अंग्रेजो ने कर्नाटक में कित्तूर की छोटी-सी रियासत हड़पने की कोशिश की तो वहाँ की लोकप्रिय रानी चेन्नम्मा ने अंग्रेजों के विरुद्ध हथियार उठा लिये और अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष छेड दिया। किन्तु दिसम्बर 1824 में उसे गिरफ्तार कर लिया गया और 21 फरवरी 1829 को जेल में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

मगर रानी की मृत्यु के बाद भी संघर्ष समाप्त नही हुआ। कित्तूर की सांगली का एक गरीब चौकीदार रायन्ना भी 1824 में रानी के साथ गिरफ्तार हुआ था, वह जल्दी ही छूट गया और रानी का अधूरा संघर्ष उसने जारी रखा। वह बड़ा स्वामिभक्त, बहादुर, जीवट और साहसी था। अपनी रानी चेन्नम्मा के संघर्ष के साथ रायन्ना प्रतिबद्ध था। उसने गुरिल्ला-लड़ाई छेड़

रायन्ना

दी। उसने अंग्रेजो के खेमे, उनके दस्तावेज यहाँ तक कि उनके किलो मे भी छापे मार-कर नष्ट कर डाले। उसे जनता का भरपूर सहयोग प्राप्त था। जनवरी 1830 मे उसने सवगाओ नगर पर छापा मारकर सारे सरकारी दस्तावेज नष्ट कर दिये। धारवाड से बम्बई तक की सारी डाक-प्रणाली उसने तहस-नहस कर डाली। अप्रैल 1830 में रायन्ना को पकड़ कर फाँसी पर लटका दिया गया।

केरल में राष्ट्रीयता का उदय

वेलुथाम्पी की शहादत :

स्वाधीनता संग्राम मे जहाँ उत्तर भारत की सक्रिय भूमिका रही, वही दक्षिण भारत की भूमिका भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नही है। विशेषकर केरल-राज्य में 19 वी शताब्दी के आरम्भ मे स्वाधीनता सग्राम हुआ था। इस संग्राम मे स्वदेश के लिए वीरगति प्राप्त करनेवाले वेलुथाम्पी भारत के प्रथम स्वतंत्रता सेनानियो में से एक थे, परन्तु स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में इस अमर सेनानी का नाम उपेक्षित रहा है।

वेलुथाम्पी

केरल में एक बड़ी रियासत थी त्रावणकोर। सन् 1798 में महाराजा बलराम वर्मा सोलह वर्ष की अवस्था में सिंहासनारूढ़ हुए। महाराज की उम्र कम होने के कारण रियासत की वास्तविक बागडोर–ब्रिटिश रेजिडेंट मेकाले के हाथ में थी। इस रियासत का दीवान जयंजन शकरन् बड़ा ही धूर्त और भ्रष्ट था। अंग्रेज रेजिडेंट से उसकी मिली भगत थी। दोनों के अत्याचारों से जनता बुरी तरह त्रस्त थी। ऐसे समय में एक नेता उभरा–वेलुथाम्पी।

दिन–ब–दिन दीवान जयंजन के अत्याचार जनता पर बढ़ते गए और जनता का शोषण बढ़ता गया। उत्पीडित जनता ने वेलुथाम्पी के नेतृत्व में बगावत का झण्डा उठाया। वेलुथाम्पी ने जनता को संगठित कर संघर्ष किया। उस संघर्ष में दीवान जयंजन को अपदस्थ होना पड़ा। महाराज बलराम वर्मा ने जयंजन को हटाकर जनता के नेता वेलुथाम्पी को अपना नया दीवान बनाया। वेलुथाम्पी ने दीवान के रूप में जनता के दुःखों को दूर किया और रियासत की चोरबाजारी, भ्रष्टाचार और अनियंत्रित कारोबार के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। जयंजन, भ्रष्ट व्यापारी ताराकन सहित सारे अपराधी गिरफ्तार कर लिये गए। ताराकान का सारा खजाना जब्त कर लिया गया। ताराकान आग–बूगला होकर रेजिडेंट मेकाले के पास पहुँचा। मेकाले ने ताराकान की जब्त करली गयी सारी सम्पत्ति को तत्काल लौटाने का हुक्म जारी किया, जिसे वेलुथाम्पी ने ठुकरा दिया। इससे क्रुद्ध होकर मेकाले ने थाम्पी को पदच्युत करने का महाराजा को आदेश दिया।

वेलुथाम्पी ने फैसला कर लिया था कि गोरे रेजिडेंट मेकाले की मनमानी नहीं चलने देगा। उसने राजा को सलाह दी कि राजस्व की रकम मेकाले को न दी जाए। राजा ने इस सलाह को मान लिया।

राजस्व न देने का एक ही मतलब था– कम्पनी सरकार को युद्ध के लिए आमंत्रण देना था। वेलुथाम्पी ने युद्ध की तैयारी शुरू कर दी थी।

त्रावणकोर के पड़ोसी राज्य कोचीन मे भी अंग्रेजो के खिलाफ वातावरण बन गया था। कोचीन के राजा ने भी थाम्पी का साथ देने का फैसला किया। दोनो रियासतो ने मिलकर युद्ध करना निश्चय किया।

18 दिसम्बर, 1808 को वेलुथाम्पी की सेना ने रेजिडेंट मेकाले पर अचानक धावा बोल दिया। दोनो सेनाओ के बीच घमासान युद्ध हुआ। अन्त में, रेजिडेंसी का पतन हुआ। वहाँ यूनियन जैक उतार कर त्रावणकोर–कोचीन का झण्डा फहरा दिया गया। रेजिडेंट मेकाले को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा। परन्तु यह आजादी बहुत समय तक बनी न रह सकी। मेकाले आधुनिक शस्त्रों से सज्जित गोरो की बड़ी फ़ौज लेकर वापस आया। थाम्पी ने जनता का उत्साह बढ़ाया। गाँव–गाँव घूमकर जनता को सुसंगठित किया। जनता एक जुट होकर व कमर कसकर थाम्पी के पीछे खड़ी हो गई। घमासान युद्ध हुआ, परन्तु इस बार थाम्पी की सेना अंग्रेजो के सामने टिक न सकी। अब राजा की जान बचाने का प्रश्न था।

वेलु थाम्पी ने राजा को किसी तरह यह पत्र लिखने के लिए राजी कर लिया– "इस बग़ावत से मेरा या मेरी प्रजा का कोई सम्बन्ध नही है।" थाम्पी की सलाह पर रियासत को सर्वनाश से बचाने के लिए राजा सन्धि के लिए तैयार हो गया। युद्ध समाप्त हो गया।

परन्तु मेकाले को इससे सन्तोष नही हुआ। उसके मन मे बदले की आग भड़क रही थी। वेलुथाम्पी को वह गिरफ्तार करना चाहता था। परन्तु थाम्पी और उसका भाई पद्मनाभन् फरार हो गए थे। वे जगलो मे दर–दर भटक रहे थे। वे एक दिन मंदिर मे छिपे हुए थे। एक भेदिये ने यह बात मेकाले को बता दी। मेकाले ने गोरी सेना से मंदिर को घेर लिया। वेलुथाम्पी को जब यह विश्वास हो गया कि गोरी सेना के हाथ पड़ने से वह बच नही

सकता, तो उसने पद्मनामन से कहा कि वह अपने खंजर को उसकी छाती में भोंक दे। पद्मनामन् को हिचकिचाते देखकर वेलुथाम्पी ने स्वयं खंजर अपनी छाती में भोंक ली। वह वहीं मर गया। मेकाले के हाथ लगा वेलुथाम्पी का खून से लथपथ निष्प्राण शरीर। इस प्रकार स्वाधीनता संग्राम की वेदी पर सर्वप्रथम वेलुथाम्पी ने अपना बलिदान दिया।

मद्रास में राष्ट्रीयता का उदय

उन्हीं दिनों मे मद्रास मे राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। स्वाधीनता संग्राम मे वीर पाड्य कट्टबोम्मन का विशिष्ट स्थान है। अट्ठारहवीं शती के अन्तिम दिनों मे बेनरमैन मद्रास प्रान्त का अंग्रेज गवर्नर था। मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत पाँचालकुरिच्ची नामक राज्य था। इस राज्य का राजा वीर पाण्ड्य कट्टबोम्मन था। वह बड़ा ही वीर, देशप्रेमी और स्वतन्त्रता सेनानी था। उसने मरते समय तक अंग्रेजी आधिपत्य स्वीकार नहीं किया। इस कारण उसने अंग्रेज सरकार को लगान देने से इंकार किया और अंग्रेज सेना का सामना भी किया। उसने कई अंग्रेज सैनिकों को युद्ध मे मार डाला। अन्त मे वह छल से गिरफ्तार कर लिया गया।

14 अक्तूबर 1799 को कट्टबोम्मन को गवर्नर बेनरमैन के सामने प्रस्तुत किया गया। गवर्नर ने उससे अपने अपराध स्वीकार करने का आग्रह

किया। उसे क्षमा कर देने की लालच दी, परन्तु वीर कट्टबोम्मन ने गवर्नर के सामने अपनी असाधारण वीरता, साहस और निर्भयता का परिचय दिया और सिंह-गर्जना की कि वह अंग्रेज-लुटेरों के सामने सिर झुकाने वाला नहीं है। उसने अपने आपको निर्दोष सिद्ध किया। उसने अंग्रेज अधिकारी के सामने सिर झुकाने की अपेक्षा मृत्यु को वरण करना अधिक उचित समझा। उसने भविष्यवाणी की कि भारत में एक नहीं, असंख्य कट्टबोम्मन पैदा होंगे जो एक दिन अंग्रेज-लुटेरों को भारत से भगा देंगे।

गवर्नर ने क्रुद्ध होकर कट्टबोम्मन को फांसी का दण्ड दिया। उसके दूसरे ही दिन 15 अक्तूबर 1799 को उसे फांसी दी गई। अन्तिम समय भी वीर पाण्ड्य की यही इच्छा थी कि भारत को स्वतन्त्र करने के लिए उसका बार-बार जन्म हो।

पंजाब में राष्ट्रीयता का उदय

शेरसिंह की वीरता :

अट्ठारहवीं सदी की शुरूआत में जब कि सारी दुनिया में लड़ाइयाँ, अशान्ति, निर्दयता और पाशविकता छायी हुई थी, पंजाब में महाराजा रणजीत सिंह ने अपना एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था और उसने अपनी सूझबूझ से एक बलशाली सेना खड़ी कर ली थी। वह एक अद्भुत मनुष्य, हद्दर्जे का बहादुर और मानवतावादी था। लड़ाइयों के द्वारा खून खराब

करना उसे पसन्द नही था। उसके सम्बन्ध मे एक विदेशी इतिहासकार ने लिखा है– "एक अकेले आदमी ने इतना बडा राज्य, इतने कम पापो के साथ, कभी न स्थापित किया था।" महाराजा रणजीतसिंह सन् 1827 के करीब तमाम पंजाब और कश्मीर का मालिक बन गया था। सन् 1839 मे उसकी मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु के फौरन बाद सिख रियासतें कमजोर हो गईं और धीरे-धीरे टूटने लगी थी। "मुसीबत मे आदमी ऊँचा उठता है और सफलता मिल जाने के बाद गिर जाता है'– इस पुरानी कहावत को सिख जाति चरितार्थ करती है। जैसे ही सिखों को राजनैतिक सफलता मिल गई, वैसे ही उनकी सफलता की असली बुनियाद कमजोर पड गई थी।

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद उसका दूसरा बेटा शेर सिंह मेहताब कौर का सुपुत्र था, वह बडा बहादुर, बुद्धिमान और हर तरह से योग्य था। उसने सीमा की लडाई मे भाग लिया था और कुछ वर्ष तक राजगद्दी पर भी बैठा था। उसके समय अंग्रेजो के साथ उसकी छुटपुट अनबन होती रही और अंग्रेजी सरकार के साथ उसके संबंध दिन–ब-दिन बिगडते गए। परिणाम स्वरूप 7 अक्तूबर 1848 को लार्ड डलहौजी ने कम्पनी सरकार को पत्र लिख-कर कि पूरा पजाब विद्रोह की दिशा से बढ रहा है, सारा पजाब काबिज करना ही होगा और 19 नवम्बर 1848 को सेनापति गफ ने रावी नदी को पार किया। 22 नवम्बर 1848 को चिनाब नदी के पास रामनगर मे शेर सिंह पर आक्रमण किया गया। परन्तु सिक्ख जाति एक वीर जाति, देश प्रेमी और देश की परम्परा के प्रति उसका स्वाभिमान इतिहास प्रसिद्ध है। सिक्खो ने खदन खोदकर चिलियानवाला मे अपनी सेना इकट्ठा कर रखी थी। 13 जन-वरी 1849 को गोरी सेना ने युद्ध किया, पर उसे यहाँ मुंह की खानी पडी थी।

इस पराजय के बाद सेनापति गफ ने फिर अपनी विशाल सेना लाकर मुलतान के किले को घेर लिया और तोपे दागनी शुरू की। शेरसिंह और उसकी सेना ने बडी बहादुरी के साथ जमकर युद्ध किया। इस युद्ध मे दोनो तरफ से सेना ने तोपो की लडाई लड़ी थी, इसलिए इसे "Battle of guns" कहते हैं। घमासान युद्ध के बाद 13 मार्च 1849 को शेरसिंह और उसके अन्य सरदारो ने आत्मसमर्पण कर दिया। यह अजीब विडम्बना है कि सिक्खो की

वीर जाति जो रण क्षेत्र में मरना ही जानती थी, अपनी आनबान पर डटकर शान से "युद्ध में तो बस मृत्यु ही विजय है" को अपना धर्म मानती थी, वही जाति छलपूर्वक पराजित हो गई थी। आपसी फूट, भारत के राष्ट्रीय जीवन का सब से बड़ा अभिशाप रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है। शेरसिंह भी आपसी फूट का शिकार हो गया।

वीर शेरसिंह जो प्राण रहते, वीर भोग्य वसुन्धरा की अपने रक्त की अन्तिम बूंद देकर भी, रक्षा करना ही जानता है--वह अपने मन की छटपटाहट असीम वेदना को प्रकट करता है- कविवर जयशंकर प्रसाद की कारुद पंक्तियाँ इस संदर्भ में दृष्टव्य हैं :

वीरभूमि पंचनद की वीरता से रिक्त नही।
भारत के वीर तो ऐसे लड़े थे कि :-

"यवनो के हाथों से स्वतन्त्रता को छीनकर
खेलता था यौवन विलासी मत्त-पचनद
प्रणय विहीन एक वासना की छाया मे
फिर भी लड़े थे हम निज प्राण पण से।।"[1]

शस्त्र-समर्पण करते समय शेरसिंह की आत्मा शत-शत खण्डों मे बँट जाती है। वीर व्यक्ति का सब से बड़ा गौरव है बलिदान। जिसे बलिदान का सौभाग्य नहीं मिल सका, तो वह अपनी नियति पर अट्टाहास क्यो न करें ?

"भिक्षा नही मांगता हूँ
आज इन प्राणों की।"[2]

(प्रसाद · "शेरसिंह का आत्मसमर्पण"

बिहार में राष्ट्रीय चेतना का उदय

बुद्धो भगत :- (1827)

बिहार मे सिंहभूम के "हो" लोगों ने 1827 मे भी विद्रोह किया था, पर तब उन्हे दबा दिया गया था। किन्तु जब 1831 मे छोटा- नागपुर के मुंडाओ ने विद्रोह किया तो "हो" भी उनके साथ शामिल हो गये। इस इलाके के लगभग एक हजार गैर आदिवासी बाशिंदो को विद्रोहियो ने मार डाला। मार्च 1932 मे ही सेना की सहायता से यह विद्रोह शान्त हो पाया। "हो" नेता बुद्धो भगत ने आत्म-समर्पण से इन्कार कर दिया और अपने परिवार के साथ लडते हुए ही प्राण न्यौछावर कर दिये। यह क्षेत्र 1837 तक अशान्त रहा।

कोल-विद्रोह : (1831)

रांची, सिंहभूम, हजारीबाग, पालमू और मानभूम के पश्चिमी क्षेत्रो में कोल लोगो द्वारा 1831 मे विद्रोह हुआ था। सिंहभूम मे कोल-विद्रोह काबू मे आया ही था कि निकटस्थ मानभूम के भूमिजो ने 1832 मे गंगानारायण के नेतृत्व में विद्रोह शुरू कर दिया। गंगानारायण दीवान, माधवसिंह को (जिन की हत्या हुई थी) वारभूम रियासत पाना चाहता था। औद्योगिक केन्द्र बड़ा बाजार लूटने के बाद विद्रोहियो ने मुन्सिफ की कचहरी, पुलिस थाना और नमक-दारोगा की कचहरी जैसे सरकारी दफ्तरो को आग लगा दी। उन्होंने फौज पर भी आक्रमण किया। जून 1932 में फौजो को बांकुरा खदेड़ने में सफल हो गये।

खोंद विद्रोह : (1846)

बिहार और उड़ीसा की सीमा पर बसे खोंद आदिवासी शिशु-हत्या और मानव-बलि के अपने रिवाजों को रोकने की अंग्रेजों की कोशिश से भय-

भीत थे । 1840 में उन्होंने विद्रोह कर दिया और कैप्टन मैकफरसन को पकड़ने मे सफल हो गये और उसे 170 मरिहा (मानव–बलि के लिए आदिवासियो द्वारा चुने गये लोग) छोडने पर मजबूर कर दिया । उसी वर्ष अप्रैल तक यह विद्रोह दबा दिया गया ।

किन्तु चकरा बिसाई के नेतृत्व में खोद फिर एक जुट हुए और उन्होने अगले तीन वर्ष तक अंग्रेजों के विरुद्ध अपना सघर्ष जारी रखा । अंग्रेजों को तब यही उचित लगा कि निर्वासित खोद सरदार को वापस 1848 मे अपनी जगह बुला ले । 1855 मे चकरा बिसाई ने फिर विद्रोह छेड़ा- इस बार मानव-बलि के अधिकार के लिए नही (यह प्रथा वे छोड़ चुके थे), बल्कि पारम्परिक आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों को सुरक्षा के लिए । अन्ततः यह विद्रोह भी कुचल दिया गया ।

सन्थाल परगना-विद्रोह : (1855–65)

बिहार और पश्चिम बंगाल के निकटवर्ती क्षेत्रों में रहनेवाले सन्थाल 1855–65 मे विद्रोह में उठ खडे हुए । विद्रोह का कारण था गैर–आदिवासी लोगों द्वारा उनका आर्थिक और सामाजिक शोषण, खासकर "साहिब लोग" द्वारा उनकी स्त्रियो की बेइज्जती । शुरू मे यह आन्दोलन ब्रिटिश–विरोधी नही था, बल्कि गैर–आदिवासी भारतीयो, बंगाल और उत्तर भारत के उन "सभ्य लोगों" के विरुद्ध था जो भारी संख्या मे सन्थाल क्षेत्र में आये और सन्थालों के बे–रोकटोक आर्थिक और यौन शोषण मे लग गये । आन्दोलन, अंग्रेज विरोधी तब बना जब सन्थालो ने देखा कि शासन उनकी मदद करने के बजाय उनके शोषको की सहायता करने में अधिक रुचि ले रहा था । सिन्धु और कनु नाम के दो भाइयो के नेतृत्व मे 10,000 सन्थाल, जून 1865 को मिले और खुद की सरकार की स्थापना का अपना निश्चय व्यक्त किया । एक ही महीने मे आन्दोलनकारियो की संख्या बहुत बढ गयी और आन्दोलन फैल गया । भागलपुर और राजमहल के बीच विद्रोहियो ने डाक–सेवा समाप्त कर दी । सन्थालों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन की (जो अभी भी वहाँ अंग्रेज सरकार के स्थान पर शासन कर रही थी) समाप्ति की घोषणा कर दी और

अपनी सुबह की शुरुआत की। मुख्यत कुल्हाड़ियों और जहरीले तीरों से लैस सन्थालो ने बडी सख्या में हर बाहरी यूरोपियन बगले पर आक्रमण कर दिया और अग्रेज प्लाटरो रेलवे कर्मचारियों, भारतीय पुलिस अफसरों, व्यापारियों, किसानो और उनके बीबी–बच्चो को कत्ल कर दिया।

आसाम में राष्ट्रीयता का उदय

खासी-विद्रोह : (1829)

तीरोतसिंह जिस राज्य के शासक थे, वह उन दिनो कोहिमा फट्सफड़ा के नाम से जाना जाता था, अब वह नोगखलाओ का राज्य कहलाता है जो आसाम राज्य मे स्थित है। खासी पहाडी का कायम रूप और दूसरी ओर सिलहट अग्रेजो के हाथ मे थे, वे चाहते थे कि आसाम और सिलहट के बीच रास्ता निकाला जाये जिससे वे बर्मा फौज भेजने के काम लाये। ब्रिटिश प्रतिनिधि डेविड स्कॉट ने तीरोतसिंह को अपने को नोंगखलाओं में रहने देने को राजी कर लिया। इस तरह काफी बड़ी सेना और लवाजमा सड़क बनाने के बहाने भीतर घुस आया। खासी इससे आतंकग्रस्त हो गये। जब अफवाह फैली कि अग्रेज टेक्स लगाना चाहते है तो उनका संदेह और बढा। 1829 मे तीरोतसिंह ने नोगखलाओ पर हमला कर दिया। दूसरे सरदार भी उनमे मिल गये और लम्बा छापामार युद्ध छिड़ गया।

गारो, खामरी और सिगपो लोगो की सहायता से खासी लोगो ने उत्तरी पूर्वी सीमा पर चढ़ाई की। अपने वीर राजा के अधीन आदिवासी इतनी बहादुरी से लडे कि शत्रुओ तक को उनकी प्रशसा करनी पडी। अग्रेजो ने तीरतसिंह को अपनी ओर मिलाना चाहा, किन्तु अपने इलाके की बिना शर्त

वापसी के बगैर उन्होने ब्रिटिश सरकार से बातचीत करना स्वीकार नही किया। पर अन्ततः उन्हे आत्म-समर्पण करना पडा और वे ढाका भेज दिये गए।

अमर खासी स्वतन्त्रता सेनानी नोंगखलाओ-राज्य के शासक तिरोतसिह ने सन् 1930 मे अंग्रेजो की विस्तारवादी नीतियो के विरुद्ध ऐसे समय लड़े थे, जब भारत स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए पूरी तरह तैयार नही था। तिरोतसिह ने अपने राज्य की स्वतंत्रता, सास्कृतिक एवं परम्पराओ की रक्षा हेतु अंग्रेजो से संघर्ष किया था। यह नोगखला-युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। यह युद्ध चार वर्षों तक चला था। राज्य का प्रत्येक गांव युद्ध-क्षेत्र बन गया था। इस युद्ध मे दो सैनिक अधिकारी-कैप्टन बोलियन तथा कैप्टन बेडिंग फील्ड और साठ अंग्रेज सैनिक और अनेक भारतीय सैनिक मारे गए। अन्त मे तिरोतसिह अपने ही साथियो के विश्वासघात से मारे गए। 'शान्ति-वार्ता' के लिए उन्हें बुलाया गया और धोखे से गिरफ्तार कर लिया गया, जैसा कि अन्य राजाओं के साथ हुआ था। परन्तु 'तिरोतसिह' का नाम भावी पीढ़ियो को एक ऐसे बहादुर व्यक्ति के रूप मे सदा स्मरणीय रहेगा, जो सिद्धान्तों पर अडिग रहा और जिसने उन्ही सिद्धान्तों के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया।

1830 मे ब्रह्मपुत्र घाटी के सिलहट व आसपास के खासी, जयन्ती और गारो लोगों द्वारा अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह हुआ था। सन् 1828 मे असम के 'अहोम' लोगों द्वारा भी अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कर दी थी, जो 'अहोम-विद्रोह' के नाम से प्रसिद्ध है।

उड़ीसा में राष्ट्रीयता का उदय

उड़ीसा के जंगम जिले मे विद्रोह के कारण मॉर्शल लॉ लागू करना पडा था। जहाँ गुरदर का जमींदार धनजय भांजा 1835 मे विद्रोही हो गया था। जिले के अंग्रेज कलेक्टर ने कहा था– "सरकार (अग्रेज) की सत्ता इस जिले में वही तक स्वीकारी जाती है, जहाँ तक सेना तैनात है। वरना पडोसी जमींदार, पहाड़ी मुखिया तैनात है, सरदार और कही तो हमारे सरकारी अफसर भी गुमसूर परिवार के पतन और सरकार की सत्ता की स्थापना के विरुद्ध हैं। विद्रोह को दबाने के लिए दो कर्नल, एक लेफ्टिनेंट कर्नल, तीन मेजर और 11 कप्तान एक वर्ष से अधिक समय यानो जनवरी 1836 से फरवरी 1937 तक सैनिक कार्रवाई करते रहे। उसी वक्त पार्लाकिमेंड़ी के जमींदार ने भी विद्रोह कर दिया। पर 1835 में उसका दमन कर दिया गया। कर्नूल के नरसिहम्मा-रेड्डी ने 1846 में अपनी पिछली पेंशन देने से सरकार के इन्कार कर देने पर विद्रोह किया, मगर 1847 मे वह पकडा गया और फासी पर चढ़ा दिया गया।

गुजरात में राष्ट्रीय चेतना का उदय

कच्छ-विद्रोह :–

कच्छ के राजा राव भारमल को फुसला कर अंग्रेजो ने 1816 मे उनसे एक सन्धि पर हस्ताक्षर करवा लिये थे, किन्तु उन्हे अंग्रेजों का प्रभुत्व स्वीकार नही हुआ। पर उनकी अग्रेज–विरोधी कार्रवाइयां, अंग्रेजों ने विफल कर दी। 1819 में उन्होने उसे गद्दी से उतार कर उसके नन्हें बेटे को शासक नियुक्त करा दिया। प्रशासन का काम अंग्रेजो की देखरेख मे झरेजा सरदारो के सुपुर्द हुआ। 1825 मे करीब 2000 मिन्नियो और सिन्धियो के साथ झरेजा सरदारो

ने कच्छ के अंग्रेज रेजिडेंट से राव भारमल को गद्दी पर वापस बैठाने का आग्रह किया, पर अंग्रेजो ने उन पर काबू पा लिया। 1831 मे कच्छ मे फिर अशांति हुई जिसके कारण अंग्रेजो ने 1832 मे जनता के उन पारम्परिक अधिकारो की सुरक्षा का वचन दिया जो अंग्रेज नवीनीकरण के कारण नष्ट हो रहे थे। सन् 1831 में कच्छ और काठियावाड मे अंग्रेजो को उखाड फेकने के लिए सशस्त्र संघर्ष हुआ था।

कोली-विद्रोह :

गुजरात का कोली-विद्रोह प्रसिद्ध है। गुजरात का कोली-विद्रोह 19 वी सदी मे 1820 से लेकर 1850 तक तीन दशक चला। भीलो के पड़ोसी कोली लोगों ने 1829, 1839 और 1844–48 मे अंग्रेजो की गुलामी के खिलाफ विद्रोह किया था। 1825 मे कोलियो को कुचल दिया गया। 1828 मे वे पुनः विद्रोह कर उठे, पर फिर उसे दबा दिया गया। 1829 मे उन्होने फिर तीन ब्राह्मणो के नेतृत्व मे पेशवा को पुनर्स्थापना की माँग करते हुए विद्रोह किया, उन्होने पेशवा के नाम पर प्रशासन भी चलाया। 1849 मे कोली पहाड़ी प्रदेश के अपने मुख्य केन्द्र से पुणे के उत्तर-पश्चिमी भाग की ओर बढे। उन्होने नासिक और अहमदनगर जिले पर आक्रमण किया और 1845 मे सतारा जा पहुँचे। 1846 में अंग्रेज सेना ने इस विद्रोह को कुचल डाला किन्तु 1850 मे इसके नेताओ की गिरफ्तारी पर ही यह आन्दोलन पूरी तरह समाप्त हुआ।

सूरत में सन् 1844 मे नमक पर 'कर' बढाने के विरोध में अंग्रेजो के खिलाफ व्यापक रूप से जन-आन्दोलन हुआ था।

बंगाल में राष्ट्रीयता का उदय

बैराकपुर-विद्रोह :

भारतीय सिपाहियो का पहला विद्रोह 1764 में हुआ था। जब पटना मे मीरकासिम के विरुद्ध लड़ते हुए मनरो की सेना की एक पूरी बटालियन नवाब की सेना में मिल गयी थी। इन सैनिको पर, गिरफ्तारी के बाद मुकदमा चलया गया और 24 सिपाहियो को तोप से उडा दिया गया।

अंग्रेजो के खिलाफ़ विद्रोह की आरम्भिक घटनाओं में से एक थी। 1824 में अंग्रेज फौज में बंगाल के बैरकपुर स्थित 47 वी नेटिव इन्फेंट्री के भारतीय सैनिको का खुला विरोध था इन सैनिकों ने अपने शस्त्र डालने से माफ इन्कार कर दिया था। अंग्रेज सिपाहियो ने उन पर निर्दयतापूर्वक गोलियाँ दागी। अनेक सिपाही तो वही मर गये, बाकी का कोर्टमार्शल हुआ और अनेक को मौत की सजा सुनायी गयी। भारतीय अफसरो ने विद्रोह मे भाग भी नहीं लिया था, पर उन्हे बर्खास्त कर दिया गया। सेना से इस रेजिमेंड का नामो-निशान ही मिटा दिया गया। इस घटना का कितना गहरा असर पडा था, यह इसी बात से जाहिर है कि इसके 32 वर्ष बाद भी अन्य रेजिमेंटो के 2,33,000 सिपाहियो को यह घटना सिर्फ याद थी, बल्कि 1857 मे अंग्रेजो का विरोध करनेवालों के लिए यह प्रेरणा–स्रोत भी थी।

एक वर्ष बाद अक्तूबर 1825 मे भी इसी तरह की अवज्ञा की घटना असम की अंग्रेज सेना में हुई जब ग्रेनेडियर कम्पनी ने खराब मौसम के कारण मार्च करने से इन्कार कर दिया। जब विद्रोहियों के नेता गिरफ्तार किये गये तो अन्य सैनिक भी उनके साथ गिरफ्तार होना चाहते थे।

पागलपंथी-विद्रोह :

कमशाह द्वारा स्थापित पागलपंथी–सम्प्रदाय के लोगों ने उत्तर बंगाल में 1825 में विद्रोह कर दिया। 1840 तक यह क्षेत्र अंग्रेजों के लिए सिरदर्द बना रहा।

सन्यासी-विद्रोह :–

1770 के अकाल, अंग्रेजो के कठोर व शोषक कानूनों के खिलाफ सन्यासियो का विद्रोह हुआ था। ब्रिटिश शासको की परेशानी का बहुत बडा कारण सन्यासी विद्रोह था। प्रारम्भिक विद्रोहो में महत्वपूर्ण सन्यासी विद्रोह से जुड़े ज्यादातर आन्दोलनकारी गिरि–सम्प्रदाय के थे। यह सम्प्रदाय अद्वैत-वाद के प्रतिपादक शंकराचार्य के दस सम्प्रदायो में से एक था।

सैनिक तौर-तरीको से काम करनेवाले इन विद्रोही सन्यासियो ने अकबर के काल में भी अधिक संगठित होकर लड़ाकू दल बना लिया था और 18 वीं सदी मे सेनाओ में भी गिरि–सम्प्रदाय के संन्यासी और सशस्त्र नागाओ ने अपने कौशल

का परिचय दिया था। अपनी उसी परम्परा को कायम रखते हुए यह विद्रोह उभरा और अपनी ताकत और हिम्मत दिखा गया।

अतीत से देखें तो अवध के नवाब की सेना मे अहमदशाह अब्दाली की ओर से मराठो के विरुद्ध सशस्त्र गोसाइयो की एक टुकड़ी लड़ी थी और बक्सर की लड़ाई मे हिम्मत गिरि की अगवाई मे 5000 सिपाही बंगाल से अंग्रेजो को खदेड़ने के लिए मीरकासिम की तरफ से लड़े थे। सिन्धिया और होल्कर सरदारो की सेनाओं में भी सन्यासियो का वर्चस्व था। सन्यासियों के विद्रोह की एक लम्बी परम्परा रही।

सन्यासी विद्रोह तब भड़का जब बंगाल मे ब्रिटिश हुकूमत कायम हो गयी थी और उसकी नीतियो ने जमींदारो, किसानो और कारीगरो को उत्पीड़ित करना शुरू कर दिया था। राजस्व की वसूली मे सख्ती बरती जाने लगी थी। अत्याचार और अन्याय बढते जा रहे थे। एक तरफ असन्तोष था और दूसरी तरफ 1770 के अकाल से उपजी अराजकता ने विद्रोह को जन्म दिया और सन्यासियो और फकीरों के झुण्डो ने भूखे किसानो को साथ लेकर दक्षिण बंगाल में खड़ी फसल पर हल्ला बोल दिया। आगजनी-लूटपाट की और फसल को चौपट कर दिया।

उसके बाद विद्रोह की आग की लपटें तेज होकर चारो ओर फैलती गयी। ब्रिटिश सरकार ने सन्यासियों पर नियंत्रण करने हेतु जो कठोर नियम बनाये थे जिनमें धर्म स्थानों से आनेवाली यात्रियों पर पाबन्दी भी सम्मिलित है, इससे विद्रोह और भड़क उठा। फलत. 1763 में सन्यासियो ने कारखानो पर हमला किया और वे संगठित होकर ब्रिटिश फौजो से जूझ गये। छापामार रणनीति अपनाई गयी। सन्यासी धन इकट्ठा करते, शस्त्र बटोरते, फिर हमला करते और जब सिपाहियों की टुकड़ियाँ उनका पीछा करतीं तो वे भाग चुके होते। इस तरह जगह–जगह उन्होंने ब्रिटिश–सेनाओं को पराजित किया। परन्तु काफी कठिनाइयों के बाद सशस्त्र अंग्रेज सैनिकों की मदद से वारेन हेस्टिंगस को विद्रोह को दबाने मे सफलता मिली थी।

9)

अंग्रेजों के विरुद्ध छुटपुट प्रतिरोध व विद्रोह : 1748-1848 तक

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के पूर्व देश मे अंग्रेजो के खिलाफ अनेक महत्त्वपूर्ण बगावत और सैनिक विद्रोह हुए थे। 1764 मे बंगाल में सिपाही विद्रोह हुआ। अंग्रेज अधिकारियो ने इस विद्रोह को दबाने के लिए 30 सैनिको को तोपो से उडा दिया। 1803-1804 मे उड़ीसा मे जमीदारों ने विद्रोह संगठित किया था, खोड मे, असम में, खासी पहाड़ियों में हर कही फैलते ब्रिटिश पंजों पर वार हुए थे। खौफनाक साये से लड़ने की यह कथा, हमारे इतिहास का बहुत कुछ अचर्चित, किन्तु स्वर्णिम पक्ष है, जो इस धारणा को खण्डित करता है कि हमने दासता के स्वागत मे अपने द्वार खोल रखे थे। 1806 में वेल्लोर में सिपाहियो ने बगावत की, मगर हिंसा बल पर उन्हें कुचल दिया गया। 1828 मे बैरकपुर मे 47 वी रेजिमेंट के सिपाहियों ने समुद्री मार्ग से बर्मा जाने से इन्कार कर दिया। उस रेजिमेंट को भंग कर, निहत्थे सिपाहियो पर गोलियाँ चलायी गयीं और सिपाहियो के नेताओं को फाँसी दे दी गयी। 1836 में संथालों ने इतनी बड़ी बग़ावत की थी कि अंग्रेजों के पाँव उखड़ने लगे थे। 1855 में राजमहल के संथालो ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत कर दी थी। 1844 मे सात बटालियनो ने वेतन और भत्ते के सवाल पर विद्रोह कर दिया। अफ़गान युद्ध के दौरान भी सिपाही बगावत कर गये। इसे दबाने के लिए दो सूबेदारों (एक हिन्दू और दूसरे मुसलमान) को गोली मार दी गयी।

इन छुटपुट विद्रोहों के साथ-साथ 1748-1848 के बीच के एक सौ वर्षों में अनेक विद्रोह हुए, जिनमें कुछ मुख्य हैं :-

चौर हो विद्रोह :-

1768 धालभूम, कालिपाल, धोलका और बडाभूम के राजाओं ने 1768 में एक जुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ़ विद्रोह कर दिया था।

भील-विद्रोह -

1818-1846 के पश्चिमी घाट क्षेत्र के भीलो ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया। 1817-1819 मे अंग्रेजों के खिलाफ भीलो ने सशस्त्र लड़ाई छेड़ी थी। शुरू मे इस भील-विद्रोह के पीछे पेशवा बाजीराव द्वितीय और उनके सेनापति त्रिंबकजी डागलिया का हाथ समझा जाता रहा। किन्तु 30 वर्ष के लम्बे अरसे तक भीलो के विद्रोह जारी रहने से यह दिखता है कि इस आन्दोलन की जड़ें गहरी थी। यह इस बात मे भी स्पष्ट होता है कि गांवो के मुखिया भी भीलों के समर्थक थे। 1825 मे बगलाना मे, 1831 मे धार मे और 1846 मे मालवा मे भील-विद्रोह हुए।

नाइकदास-आन्दोलन :-

यह आन्दोलन यद्यपि हमारे आलोच्य काल खण्ड मे नहीं आता है, परन्तु वन्यजनजाति आन्दोलन होने से इसे भी यहाँ जोड़ लिया गया है। महाराष्ट्र की वन्यजनजाति ने अक्तूबर 1858 मे विद्रोह किया। हालाकि अंग्रेज उन्हे हटा नही पाये, उनके नेता रूपानाइक ने मार्च 1859 मे अंग्रेजो का सन्धि-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। 1868 मे रूपानाइक का साथ विवेकगांव के एक नाइकदास जोरिया से हो गया, जो अपने को परमेश्वर बताता था। वे अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे जिसका धार्मिक नेता जोरिया हो और नेता रूपासिंह, उन्होने बरिया राज्य मे रायगढ़ पर हमला किया-ताकि वहाँ का राजस्व वसूल कर सकें। अन्त मे वे और रूपा का बेटा गललिया गिरफ्तार कर लिये गये, उन पर मुकदमा चला और फाँसी दे दी गयी।

निष्कर्ष

1748 से 1848 तक के इन सौ वर्षों के अन्तराल में अंग्रेज शासकों के विरुद्ध जो प्रतिरोध एवं विद्रोह हुए थे, वे प्रायः जन-जातियों, आदिवासियों, पिछड़ी जातियों, साधुओं, फकीरों आदि के द्वारा हुए थे, जिन्हें हम जन-आन्दोलन कह सकते हैं। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष करने वालों ने अपना तन–मन–धन दाँव पर लगा दिया था। उनमें स्वातन्त्र्य प्रेम का प्राबल्य था किन्तु स्वतंत्रता-संग्राम में स्वातंत्र्य प्रेम ही काफ़ी नहीं हो सकता, उसके लिए एकता और संगठन की आवश्यकता रहती है। अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में देश की समस्त जनता को न जोड़ पाने से ये विद्रोह चन्द लोगों के हद तक सीमित रह गए। इन विद्रोहों की यह सब से बड़ी कमी थी। दूसरी कमी थी ब्रिटिश विरोधी तमाम शक्तियों का एकजुट न हो पाना। अंग्रेजों ने इस स्थिति का पूरा–पूरा लाभ उठाया और छल-बल, कपट–घूस से एक के विरुद्ध दूसरे को लड़ाते हुए अपने साम्राज्य को फैलाया।

जैसे–जैसे अंग्रेजी–सत्ता की ताकत बढ़ती गई, वह ज्यादा से ज्यादा अत्याचारी और खूंखार होती गई। वह किसी न किसी बहाने लड़ाई छेड़ने लगी। ऐसी बहुत–सी लड़ाइयाँ हुईं और बहुत खून खराबा हुआ। अत्यचारों और लूट–मार का ज़बरदस्त दौर चला। इन सब से अंग्रेजों की बर्बरता और पाशविकता ही सिद्ध होती है।

इतिहासकार हमें बताते हैं कि अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने की सज़ा के तौर पर कितनी बेरहमी से इन इलाकों में अंग्रेजी राज का दमनचक्र चला। यहाँ की अर्थ-व्यवस्था को चौपट करने के लिए दस्तकार उजाडे गये। बुनकरों की उंगलियाँ काट दी गयीं। अब तक दूर यूरोप तक तैयार माल भेजनेवालों को, विलायत से आये तैयार माल के खरीदारों में बदल दिया गया। अंग्रेजी सरकार "प्रगतिशील" कार्यों में एक बड़ा कार्य उनका प्रतिरोध करनेवाले क्षेत्रों और वर्गों को नेस्तानाबूद नहीं, तो कम-से-कम निःस्तेज कर देना भी था।

अंग्रेज विजेताओ की आरम्भ मे यह कूटनीति रही है कि जीते हुए प्रदेशो में एक ऐसे नये आदमी को नवाब या शासक बना दिया जाए जो शून्य मात्र हो, सारा शासन-प्रबंध हिन्दुस्तानी कर्मचारियों के हाथो मे रहे, असली मालिक अंग्रेज रहे, पर हिन्दुस्तानी ही मालगुजारी वसूल करें, बाहर के हमलो और भीतर के विद्रोहो से रक्षा करे, युद्ध करें और सन्धियाँ करें, किन्तु अंग्रेजो की बादशाहत जन-साधारण की आँखो से छिपी रहे।

निष्कर्षतः सन् 1748 से 1848 तक इन सौ वर्षो मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के काले कारनामे थे : अंग्रेज रेजिडेंटो का देशी दरबारो में रहकर फूट डलवाना, रिश्वतें देना, गुप्त साजिशे करना, हत्याएँ कराना और जालसाजियाँ करना, देशी नरेशो की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ "सन्धि और मित्रता" के जाल मे फँसाकर, बिना अपना मान और सर्वस्व दिये, बाहर निकलने नही देना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की निर्धारित नीति के अनुसार भारत के हजारों साल के उन्नत व्यापार और उद्योग-धन्धो का नाश कर डालना और इनके फलस्वरूप भारत को सौ और सवासाल के भीतर, ससार के सब से अधिक प्रबल, उन्नत और सम्पन्न देशो की श्रेणी से निकालकर सब से अधिक निर्बल, अवनत और दरिद्र देशो की श्रेणी तक पहुंचा देना इत्यादि।

अंग्रेजों के इन काले कारनामो और अत्याचारो के विरुद्ध देशी नरेशो ने अपनी तलवार उठायी और लड़ते-लड़ते मारे गए और अंग्रेज अन्ततः विजयी हो गए। परन्तु यहाँ यह प्रश्न नही है कि पराजय किसकी हुई है, महत्त्व इस बात का भी नही है कि विजय किसकी हुई, परन्तु महत्त्व तो इस बात का है कि अन्यायी और अत्याचारों का किस बहादुरी के साथ देशी राजाओ एवं जन-जातियो, आदिवासियो, साधु-फ़कीरो आदि ने सामना किया और लड़ते हुए वीरगति पाई।

यह बात सही है कि देशी नरेशों ने अपने शत्रु को पहचानने में भूल की। वे संगठित होकर शत्रु से नहीं लड सके, लेकिन उनका बहाया हुआ खून बेकार नहीं गया, वरन् आगे चलकर रंग ही लाया। ज्वालामुखी पर्वत भीतर-भीतर धधक उठा और उसका विस्फोट सन् 1857 में हुआ जिसने अंग्रेज साम्राज्य की जड़ों को पूरी तरह हिला दिया था। फलत: ब्रिटिश शासन, ईस्ट इण्डिया कम्पनी से छिनकर सीधे ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया के अधीन हो गया। अगले अध्याय में हम सन् 1857 के स्वाधीनता-संग्राम पर सविस्तार विचार करेंगे।

तृतीय अध्याय :

सन् 1857 का स्वाधीनता-संग्राम

(सन् 1849 से 1909 तक)

विषय क्रम :

1. सशस्त्र क्रान्ति के कारण

2. राष्ट्रीयता का स्रोत धार्मिक प्रवचन

3. सेना में असन्तोष

4. सशस्त्र क्रान्ति की व्यापकता

5. वनवासी वीरों द्वारा सशस्त्र क्रान्ति

6. राजा-महाराजाओं का स्वाधीनता-संग्राम :

   क. नाना साहिब

   ख. राव तुलाराम

   ग. कुँवरसिंह बाबू

   घ. वीरांगना लक्ष्मीबाई

   ङ बहादुर शाह जफर

7. सन् सत्तावन : सशस्त्र क्रान्ति की विशेषताएँ

8. स्वतन्त्रता-संग्राम की विफलता के कारण

9. क्रान्ति का प्रभाव

10. वहाबी क्रान्ति एवं कूका-विद्रोह

11. क्रान्ति की छुटपुट घटनाएँ

सशस्त्र क्रान्ति के कारण

इससे पहले के अध्याय मे यह स्पष्ट संकेत दिया गया था कि शासक अंग्रेजों की दो तरह की तस्वीरे-एक सत्ता पाने मे पहले की और दूसरी सत्ता पाने के बाद को देखने को मिलती है। जहाँ तक अंग्रेजो की पहली तस्वीर का प्रश्न है, उसका उल्लेख, सविस्तार इससे पूर्व के अध्याय मे हो चुका है। उनकी दूसरी तस्वीर पर विचार करने से पूर्व सर्वप्रथम विद्रोह के स्वरूप पर विचार करना उचित होगा।

सन् 1857 के सग्राम के सम्बन्ध मे कुछ सहज प्रश्न उठते हैं कि क्या यह केवल सैनिकों का विद्रोह था ? या राजा-महाराजाओ का विद्रोह ? या फिर राष्ट्रीय विद्रोह ? इस सम्बन्ध में पहले अध्याय मे सरसरी तौर पर चर्चा हुई थी, किन्तु यहाँ पर सविस्तार विचार करेंगे। इस सम्बन्ध मे इतिहास-कारो के विभिन्न मत है। उन सारे मतो को हम सुविधा की दृष्टि मे मुख्य रूप से दो वर्गों मे बांटते है। पहला वर्ग अग्रेज इतिहासकारो का है जिनका अभि-मत है- "विद्रोह सेना में उत्पन्न हुआ और इसका कारण कारतूसों वाला मामला था।" परन्तु दूसरे वर्ग में भारतीय इतिहासकार आते हैं, उनका स्पष्ट अभिमत है- "वह भारतीयों का स्वतंत्रता का पहला संग्राम था।" इस वर्ग के लेखको में लालालाजपतराय, वीर–सावरकर, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या, प. नेहरू, डॉ. के. एम. पणिकर, डॉ. ईश्वरी प्रसाद, आर. सी. मजूमदार इत्यादि आते हैं।

वीर–सावरकर अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर के स्वतत्रता संग्राम के घोषणा-पत्र के आधार पर यह सिद्ध करते हैं कि भारतीयों ने अपने देश और धर्म की रक्षा हेतु जो लडाई लडी, वह पहली सशस्त्र लड़ाई थी। उस घोषणा–पत्र के द्वारा बहादुर शाह ने देश की जनता का आह्वान् किया था : "भारत के हिन्दुओ और मुसलमानो उठो ! भाइयो उठो ! परमात्मा के सभी

वरदानो में स्वराज्य ही उसका दिया हुआ सर्वोत्तम वरदान है। जिस शैतान ने उसे हम से छल से लूट लिया है, देखें, वह कब तक उसे सम्भाल सकता है।"[1]

श्री आर. सी. मजूमदार का मत है :- "जब कि यह सब है कि 1857 की क्रान्ति मुख्यत सैनिको का विद्रोह था, इस मत का समर्थन करने के पर्याप्त प्रमाण हैं कि कुछ क्षेत्रो मे विद्रोह व्यापक रूप से फैला और इसने जन-क्रान्ति का रूप धारण कर लिया।"[2] सुप्रसिद्ध समालोचक डॉ रामविलास शर्मा के मतानुसार "सन् सत्तावन का संघर्ष एक महान जन-क्रान्ति था। वह जन-क्रान्ति इस लिए था कि उसमे जनता ने सक्रिय रूप से भाग लिया था। अनेक प्रदेशो में किसानों ने अंग्रेजी सरकार को लगान देना बन्द कर दिया था।"[3]

इसमें कोई सन्देह नही कि सन् 1857 की स्वाधीनता की लडाई इतिहास की अद्भुत घटना थी जिसने संसार की आँखें खोल दी। भारत भर में विद्रोह की आग भडक उठी थी। राजा-महाराजा, नवाब, जमीदार, इनामदार, भारतीय सैनिक काश्तकार, दस्तकार, मजदूर, आदिवासी, हिन्दू-मुस्लिम इत्यादि सभी इस महासमर मे कूद पडे थे। इसी लिए तत्कालीन ब्रिटिश राजपुरुष तथा कजर्वेटिव पार्टी के एक राजनेता डिजरेली, जो सन् 1852 में इग्लैण्ड के वित्तमत्री भी रहे हैं, के भाषण के अंश को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जो न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून समाचार-पत्र के अक 5091 मे 14 अगस्त 1857 को 'एंग्लो भारतीय साम्राज्य के पतन' शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। डिजरेली ने तत्कालीन तथ्यो का विश्लेषण करते हुए यह निष्कर्ष निकाला था : "वर्तमान भारतीय अव्यवस्था सैनिक बगावत न होकर राष्ट्रीय विद्रोह है और सिपाही केवल उसे सक्रिय रूप देनेवाले माध्यम हैं।"-[4]

---

1. वीर सावरकर : 1857 का भारतीय स्वातव्य संग्राम : 1 से 13
2. S. C. BOSE : THE INDIAN STRUGGLE : पृ. स. 30
3. डा. रामविलास शर्मा : सन् सत्तावन का विद्रोह : - पृ सं. 394
4. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद सें बारे में : पृ. 181

अपने भाषण के अन्त मे डिजरेली अपनी सरकार को यह परामर्श देते हैं "वह आक्रमणकारी कार्रवाइयों के बजाय भारत की आन्तरिक स्थिति को सुधारने की ओर ध्यान दे।"[1]

1857 मे इतने व्यापक रूप मे विद्रोह क्यों हुआ ? इसके पीछे देना कि कुछ अंग्रेज इतिहासकारों का मत है कि "मुस्लिम शासकों का कोई षड्यन्त्र था ? या फिर गाय-सूअर की चर्बीवाले कारतूनों का काण्ड था ?" अस्तु, किसी भी घटना-प्रघटना के मूल मे कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। प्रकृति का सारा कारोबार कार्य-कारण की शृंखला के सिद्धान्त द्वारा परिचालित होता है। उसी प्रकार 1857 मे व्यापक रूप मे घटित इतनी बडी घटना के पीछे निश्चित ही कुछ कारण अवश्य थे। उन पर विचार करने पर ही वस्तुस्थिति स्पष्ट हो सकती है।

उपर्युक्त जिन कारणों का उल्लेख हुआ है, वे आंशिक सत्यमात्र हो सकते हैं, पूर्ण सत्य नही। इन काल खण्ड मे भारत मे ब्रिटिश साम्राज्य का आधार पहले DIVIDECT IMPERA का प्राचीन सिद्धान्त था, परन्तु बाद मे ब्रिटिश सरकार एक नये सिद्धान्त–राष्ट्रीयता का नाश करने पर आचरण करने लगी। लार्ड डलहौजी, जो सन् 1848 से 1856 तक भारत का गवर्नर जनरल था, ने लूट-पाट की औपनिवेशिक नीति का अनुसरण किया और उसने व्यपगत सिद्धान्त DOCTRINE OF LAPSE या हड़प–नीति को कठोरतापूर्वक लागू किया। इसका मुख्य कारण था सन् 1848 मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वित्तीय कठिनाइयाँ इस सीमा तक जा पहुँची थी, कि उसके लिए किसी–न–किसी तरह अपने राजस्व को बढाना अनिवार्य हो गया था। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी के अधीन काम करनेवाली कौंसिल (परिषद) की एक रिपोर्ट मे स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया गया था कि देशी राजा-महाराजाओं से रियासते छीनकर और इस तरह ब्रिटिश क्षेत्र को विस्तृत करके ही अधिक राजस्व प्राप्त किया जा सकता है। इसके बाद सरकार ने गोद लेने के सिद्धान्त को जो भारतीय समाज की आधारशिला था, रद्द कर दिया। इस

1. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स . उपनिवेशवाद के बारे मे पृ. 181

सम्बन्ध मे डिजरेली का स्पष्ट मत था – "भारत मे गोद लेने के कानून का सिद्धान्त केवल राजाओ–महाराजाओ और राज्यो का ही विशेषाधिकार नही है, हिन्दुस्तान में वह सिद्धान्त ऐसे प्रत्येक व्यक्ति पर लागू होता है जो भू–सम्पत्ति का मालिक है और धर्म से हिन्दू है।"[1] तदनुसार, अप्रैल 1848 मे सतारा-नरेश आपासाहिब निस्सन्तान मरे तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसके उत्तराधिकारी दत्तक पुत्र को मान्यता नही दी और राज्य को अपने अधिकार क्षेत्र में मिला लिया। जब कि सन् 1825 मे इसी कम्पनी ने कोटा महाराजा के द्वारा गोद लिये पुत्र को स्वीकृति देते हुए इस प्रकार की घोषणा की थी –

"शास्त्रानुसार उत्तराधिकारी के रूप मे दत्तक पुत्र का हिन्दुओ का अधिकार है, तदनुसार कोटा महाराजा को भी है।" इसी प्रकार सन् 1837 मे ओरछा महाराजा द्वारा वारिस के रूप मे स्वीकृत दत्तक पुत्र का ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अनुमोदन किया था, परन्तु गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी की राज्य हड़प-नीति के कारण सन् 1848 से 1854 के वर्षों में एक दर्जन से अधिक स्वतन्त्र राजाओ के राज्य सतारा, जैसपूर, सम्भलकर, बघाट्, ऊदपुर, झासी, नागपुर इत्यादि ब्रिटिश सम्राज्य मे जबरदस्ती मिला लिये गए। इनमें नागपुर ऐसा राज्य था जिसका क्षेत्रफल 76,832 वर्गमील और आबादी साढे छय्यांलीस लाख थी, और राज्य मे अपार धन–भण्डार और अपरिमित वार्षिक आय को डलहौजी ने अपने हस्तगत कर लिया था।

सन् 1854 मे बरार को हथिया लिया गया। इस राज्य का क्षेत्रफल 80 हजार वर्ग मील था और आबादी लगभग 50 लाख थी और राज्य में बेहद दौलत थी। अन्त मे, सन् 1856 में अवध राज्य पर कब्जा कर लिया गया। लार्ड डलहौजी के इस विश्वासघाती आक्रमण द्वारा राज्य पर कब्जा करने से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार की मुठभेड़, न केवल हिन्दुओ से ही, बल्कि मुसलमानो से भी हुई। आक्रमण से पहले अंग्रेज सरकार ने कानपुर में भारी सेना इकट्ठी कर ली। अवध के नवाब वाजिद अली शाह को यह बताया गया था कि नेपाल पर नजर रखने के लिए फौज इकट्ठी की गई है। किन्तु उस

---

1. कार्ल मार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स . उपनिवेशवाद के बारे मे : पृ. सं. 178

सेना ने सहसा आक्रमण करके लखनऊ पर कब्जा कर लिया और बादशाह वाजिद अली शाह को गिरफ्तार कर लिया। उससे आग्रह किया कि वह अपना देश अंग्रेजो के हवाले कर दे, लेकिन उसने नही माना। तब उसे कलकत्ते ले जा गया और राज्य को ईस्टइण्डिया कम्पनी के राज्य क्षेत्र मे मिला दिया गया।

इस प्रकार भारतीय स्वतंत्र राज्यों का हड़प लेने की नीति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी और लार्ड डलहौजी के शासन-काल मे शासन-संचालन की नयी प्रणाली द्वारा भारत में सम्पत्ति की पुरानी व्यवस्था को तोड़ा गया। हिन्दुओं के धर्म मे हस्तक्षेप मनमानी ढंग से किया जाने लगा था जिसका प्रतिशोध अवश्यम्भावी था। ये सब वे ही कारण थे जो भीतर ही भीतर धधकते हुए ज्वालामुखी का रूप धारण करते जा रहे थे।

इसके अतिरिक्त लार्ड डलहौजी ने मुगल सम्राट की उपाधि को खत्म करने का निश्चय किया। बहादुरशाह के सबसे बड़े पुत्र मिर्जा जवावख्त को युवराज स्वीकार करने से इन्कार कर दिया गया और मुगल सम्राट से पुश्तैनी निवास स्थान लालकिले को खाली करके कुतुब मे रहने का आग्रह किया गया। इसी प्रकार पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नाना साहब के साथ भी अन्याय किया गया। ये शासक अपने ही देश मे अपमानित होकर नही रह सकते थे और फलत: अंग्रेजो के घोर शत्रु हो गये।

राज्यो के अतिरिक्त जागीरदारो और इनामदारो की भूमि भी जबर-दस्ती जब्त कर ली गई। मंदिरो तथा मस्जिदो की बड़ी-बड़ी जमीने, जो एक जमाने पहले दान मे मिली हुई थी और लगान से मुक्त थी, उन्हे भी जब्त कर लिया गया। इससे अंग्रेजो को राजस्व का एक नया स्रोत मिल गया। देश के सब से बड़े तीर्थस्थल तिरुपति की समस्त आमदनी भी हड़प ली जाती थी।

धर्म में हस्तक्षेप :

भारतीयो के धार्मिक और सामाजिक रीति-रिवाजो मे अंग्रेजो के द्वारा व्यापक रूप से हस्तक्षेप हुआ। उन्होने एक ओर सुधार कार्य किया जिनमे सती-प्रथा को बन्द कर दिया गया और विधवा विवाह की आज्ञा दे दी गई,

लेकिन दूसरी ओर ईसाई धर्म को प्रोत्साहन देने के लिए हिन्दू उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून में परिवर्तन करके यह व्यवस्था की गई कि ईसाई धर्म ग्रहण के बाद भी उस व्यक्ति की अपनी पैतृक सम्पत्ति मे भाग बना रहेगा । बड़े पैमाने पर भारतीयों को ईसाई धर्म में मिला लेने का अभियान चलाया गया। पुरानी भारतीय शिक्षा–पद्धति समाप्त कर दी गई ।

भारतीयों के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ था, उस सम्बन्ध मे मद्रास परिषद के सदस्य मि. मैलकम ल्यूइन लिखते हैं– "हमने उन्हे भारतीयों को जाति-भ्रष्ट कर दिया है : हमने उनको विवाह की सस्थाओ को बदल दिया है। उनके धर्म के पवित्रतम् रिवाजो की हमने अवहेलना की है, उनके मदिरो की बायदादी को हमने जब्त कर लिया है और अपने सरकारी लेखो मे हमने उन्हे काफिर कहकर कलकित किया है ।"[1]

इस प्रकार सामाजिक रीति–रिवाजो एव धार्मिक हस्तक्षेपो, अग्रेज शासकों के दुर्व्यवहारों के कारणो से जनता मे स्वाभाविक रूप से विद्रोह की भावना भड़क उठी थी ।

भारतीयों के असन्तोष को भड़काने मे आर्थिक कारणो ने भी बारूद का काम किया था । इग्लैण्ड को भारतीय कच्चे माल की और अपने कारखानो मे निर्मित माल को खपाने के लिए भारतीय मण्डियों की आवश्यकता थी। इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इग्लैण्ड ने भारतीय उद्योग–धन्धो को नष्ट कर दिया था । भारत से रूई और कच्चा माल इग्लैण्ड जाने लगा और इस कच्चे माल से बनी हुई चीजें विक्रय के लिए भारत भेजी जाती रही । परिणामतः भारत का धन निरन्तर इग्लैण्ड जाने लगा और दिन–प्रति–दिन भारत निर्धन होता गया ।

---

1. MR MALCOLM LEWIN, CENSES OF THE INDIAN REVOLT.

राष्ट्रीयता का स्रोत धार्मिक प्रवचन

औरंगजेब के युग मे उसकी कट्टरता और असहिष्णुता के कारण प्रति-रक्षा की भावना ने जिस राष्ट्रीय चेतना को जन्म दिया था उसी चेतना ने 1857 की सशस्त्र क्रान्ति को पोषित एव पल्लवित किया। महाराष्ट्र के सन्त कवियो, समर्थ रामदास और तुकाराम की कविताओ, भजनों एव प्रवचनो ने जन-साधारण मे राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया और 1857 की क्रान्ति की ज्वालाओ मे घी का कार्य किया। "स्वधर्म की रक्षा के लिए उठो और स्वराज्य हासिल करो" 250 वर्ष पहले महाराष्ट्र केसरी शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास स्वामी ने जनसाधारण को प्रबोध किया था·

"स्वधर्म के लिए अपने प्राणो को अर्पित करो। अपने प्राणों को न्योछावर करते समय अपने धर्म के शत्रुओ के प्राणो की वलि ले लो। इस प्रकार सघर्ष करते हुए अपने राज्य को पुनः स्वाधीन कर लो।"

इस प्रकार 1857 की सशस्त्र क्रान्ति के प्रसार मे राष्ट्रीय एकता ने जो प्रभावशाली भूमिका निभाई, उसका श्रेय धार्मिक नेताओ को जाता है, क्यो कि इन नेताओं ने अंग्रेजी शासन के प्रति नफ़रत पैदा करने और विद्रोह की आग भडकाने के लिए दिन-रात एक कर दिया था। उन्होने जगह-जगह जाकर धार्मिक प्रवचनो के बहाने अंग्रेजो के जुल्मो को जनता के सामने रखा। जनता को देश-प्रेम, त्याग और वलिदान का पाठ पढाया। अतीत की शौर्य गाथाएँ सुनाकर उन्हे विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। इसका जबरदस्त प्रभाव धार्मिक आस्थावाली जनता पर पडा। अगर इन धार्मिक नेताओ ने देश-धर्म को निभाने का यह अलख न जगाया होता, तो 1857 की क्रान्ति इतना व्यापक रूप धारण न कर पाती। उस समय का नारा था "स्वराज्य ही स्वधर्म है।"

उसी जमाने मे देश प्रेम सम्बन्धी गीतो ने साधारण जनता मे देश-प्रेम को जगाया था। 1857 के ओजस्वी गीतों ने जनता के खून मे आजादी का गर्म जोश भर दिया था। कानपुर के विद्रोह मे नाना साहब के साथी शायर

अजीमुल्ला खाँ के झण्डागीत ने जनता में हलचल मचा दी थी। वन्देमातरम-गीत ने तो नव युवकों को बलिदान की प्रेरणा दी थी। इस प्रकार के गीत उस समय शहीदो की टोलियाँ गाया करती थी। रणक्षेत्र मे बहादुरो का हौसला बढाने के लिए प्रवास-गीत गाये जाते थे। 1857 के संग्राम में जिस तरह जनता ने अपनी बहादुरी दिखाई, उसे देखकर लगता है, उस समय राष्ट्रीय एकता पूरे देश के लिए एक धर्म बन गयी थी। चारो तरफ राष्ट्रीय एकता की आवाज बुलन्द थी। 1857 की राष्ट्रीय एकता का इतिहास स्वयं अपना एक अद्भुत नमूना है जिसे शहीदो ने अपने रक्त से लिखा था।

सेना में असन्तोष

भारतीय सेना मे असन्तोष के कारण अनेक थे। उस समय 20 करोड़ आबादी मे दो लाख भारतीय सैनिक थे, जिनके अफसर अंग्रेज थे। इनकी सख्या चालीस हजार थी। इस प्रकार कम्पनी की सेना मे भारतीयो की सख्या अंग्रेजो से एक लाख साठ हजार अधिक थी, परन्तु उनके साथ भेद-भाव किया जाता। भारतीयो को बहुत कम भत्ता मिलता था और ऊपर से उनके साथ अंग्रेजों का दुर्व्यवहार होता था। 1857 से पहले के एक सौ वर्षों मे जो स्थानीय विद्रोह हुए थे, उनमे किसानो, कारीगरो, आदिवासियो और राजाओ के साथ भारतीय सैनिको ने भी भाग लिया था। भारतीय सैनिक आमतौर पर गरीब किसानों और कारीगरों के बेटे होते थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निरंकुश राज में बढ़ते हुए शोषण, करों का बोझ, जमीनों की बलात् जब्ती, अकालों आदि के कारणों से भारतीय सैनिको में असन्तोष बढता गया। बंगाल की सेना में अवध के लोगों की सख्या बहुत अधिक थी। जब अकारण अवध को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया गया तो सैनिको के मन में रोष उत्पन्न हो गया था। दूसरी ओर अंग्रेजों के द्वारा भारतीयो को ईसाई-धर्म में दीक्षित करने के जोरदार प्रयत्न किये जा रहे थे। हिन्दू-मुसलमानो को धर्म-भ्रष्ट

करने के लिए उन्हे गाय और सूवर की चर्बी से निर्मित नये कारतूस दिये जाने लगे। कारतूसो का कागज, गायों और सूकरो की चर्बी से चिकनाया जाना था, और कारतूसो को इस्तेमाल करते समय सैनिको को उन्हें अनिवार्यत. दान्तो से काटना पडता था जिससे उनका धर्मभ्रष्ट होता था। इस बात को 1857 की क्रान्ति के सब से अधिक प्रामाणिक इतिहासकार सनजॉन ने भी स्वीकार किया है – " इसमें कोई सन्देह नही कि इस मसाले के बनाने मे गाय और सूवर की चर्बी का उपयोग किया गया था।"

सशस्त्र क्रान्ति की व्यापकता

सशस्त्र प्रथम क्रान्ति 22 जनवरी 1857 को कलकत्ता से शुरू हुई थी। भारतीय सैनिको ने चर्बीवाले कारतूसो के प्रयोग के विरुद्ध कलकत्ते से थोड़ी दूरी पर स्थित बारकपुर छावनियो में आग लगा दी।

25 फरवरी को 19 वी देशी रेजीमेण्ट के सिपाहियो ने बेहरामपुर में कारतूसो पर आपत्ति की और बगावत कर दी। 31 मार्च के दिन उस रेजीमेंट को तोड दिया गया।

अमर शहीद मंगलपाण्डे

इस सशस्त्र क्रान्ति मे सर्वप्रथम देश भक्त मंगलपाण्डे ने अपनी शहादत दी थी। मंगलपाण्डे के बलिदान से सारे देश मे हलचल मच गई थी। 29 मार्च 1857 की सर्वाधिक रोमांचित करनेवाली घटना थी, जो स्वाधीनता संग्राम के इतिहास मे अभूतपूर्व थी। बारकपुर (बगाल) स्थित सिपाहियो की 34 वीं रेजीमेंट जब कवायद के मैदान मे खड़ी थी, तब एक सैनिक मंगलपाण्डे, रंजित

से निकलकर आगे बढ़ आया, पाण्डे के हाथ में भरी हुई बन्दूक थी। उसने अपने साथियो को बगावत करने के लिए ललकारा . "भाइयो ! आगे बढ़ो और अपनी स्वतन्त्रता के शत्रुओं पर हम टूट पडे।" तुरन्त सार्जेएट मेजर हृगसन ने मगलपाण्डे को गिरफ्तार कर लेने की सैनिकों को आज्ञा दी, परन्तु किसी ने भी उस आज्ञा का पालन नही किया। मंगल पाण्डे ने क्षण भर मे हृगसन को गोली मार दी। तुरन्त इसके बाद लेफ्टिनेंट भग कर घटना स्थल पर पहुँच गया। हाथा-पाई हुई, उसे भी पाण्डे ने गोली मार दी। सैकड़ों सैनिक चुप-चाप खडे देखते रहे और कुछ सिपाही अपने अंग्रेज अफ़सरो को बन्दूको के कुन्दो से पीटते रहे। तभी कर्नल व्हीलर वहाँ पहुँचा और पाण्डे को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी, उन सैनिको ने मुक्त-कंठ मे साफ इन्कार कर दिया। बाद में मंगलपाण्डे ने शत्रुओ के हाथो मे मरने की अपेक्षा अपने आप मर जाना पसन्द किया और गोली मार ली, परन्तु वे मरे नहीं। बाद मे सैनिक न्याया-लय मे उनके विरुद्ध केस चलाया गया, परन्तु पाण्डे उनके सम्मुख झुके नही। परिणामतः उन्हें फाँसी दे दी गई। इस प्रकार पाण्डे अपनी शहादत देकर अमर हो गए। बाद मे उस रेजीमेण्ट को भी तोड़ दिया गया।

अप्रैल महीने में इलाहाबाद, आगरा और अम्बाला मे बंगाल सेना की अनेक छावनियो को आग की नजर किया गया, मेरठ मे हलके हथियारोवाले घुड़सवारों की तीसरी रेजीमेंट में बलवा हुआ, मद्रास और बम्बई की सेनाओं में भी इसी प्रकार के विद्रोह के विस्फोट देखने मे आए। मई के शुरू मे अवध की राजधानी लखनऊ मे विद्रोह होते-होते रुक गया।

मेरठ की हलके हथियारों वाले घुडसवारों की तीसरी रेजीमेट के 85 सिपाहियो को अलग-अलग मीयाद के लिए कैद की सजा देकर 9 मई को उन्हे जेल में डाल दिया गया। दूसरे दिन 10 मई शाम को घुडसवारों की तीसरी रेजीमेंट के जवान 11 वी तथा 20 वी देशी रेजीमेंटो के साथ कवायद के मैदान में जमा हुए, उन अफ़सरों को मार डाला, जिन्होंने उन्हें शान्त करने की कोशिश की थी, छावनियों में आग लगा दी और जहाँ कहीं भी कोई अंग्रेज हाथ लगा, उसे मौत के घाट उतार दिया। अपने साथियों को जिन्होंने कारतूस

लेने से इन्कार करने पर जेल मे डाला गया था, जेल तोड़कर मुक्त कर दिया गया ।

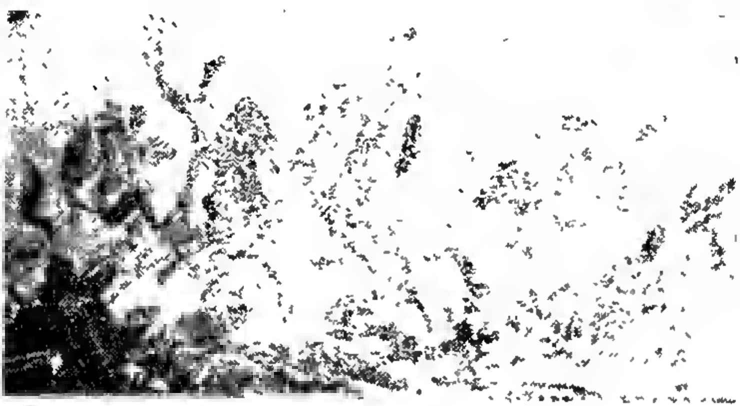

कालपी के मैदान मे लड़ते हुए तात्या टोपे

विद्रोही दस्तो का एक बड़ा जुलूस निकला । हाथी पर बैठे हुए एक स्वामी सामने चल रहे थे, जो सैनिको के मध्य प्रचार कर रहे थे । स्वामीजी के कुछ शिष्य घोड़ो पर स्वतन्त्रता–सग्राम के प्रतीक 'रोटी' और 'कमल' को लिये चल रहे थे ।

बेगम हज़रत महल :

10 मई 1857, स्वतंत्रता–क्रान्ति के इतिहास मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिन था । स्वतन्त्रता की जो आग मेरठ नगर मे भडकी थी, बहुत शीघ्रता से उसने दावानल का रूप धारण कर लिया । एक ओर जहाँ मेरठ मे महिलाओं ने सिपाहियों और देशवासियो मे क्रान्ति की चिनगारी फूंकी, वही दूसरी ओर लखनऊ मे बेगम हज़रत महल ने क्रान्तिकारियो का नेतृत्व किया । सन् 1856 मे जब अवध की सत्ता अंग्रेजी के हाथो से चली गई तो नवाब वाजिद अली शाह लखनऊ छोड़कर कलकत्ता मे जा बसे, परन्तु उनकी बेगम हज़रत महल

बेगम हज़रत महल

ने लखनऊ मे रहना पसन्द किया। 30 मई, 1857 को लखनऊ मे क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ तो बेगम ने शासन की बागडोर अपने हाथो मे ले ली और राज्य का, बडी चतुराई और कुशल राजनीतिज्ञ की भाति, नेतृत्व किया। उन्होने बहादुर सिपाहियो को वीरता के लिए पुरस्कार से सम्मानित किया। बेगम हज़रत महल के सम्बन्ध में 'रसल' का अभिमत था– "उसने सारे अवध में एक आग भड़का दी।"

तात्याटोपे

विद्रोही दस्ते मेरठ से सीधे दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ उनके साथ दिल्ली की छावनी के देशी सैनिक मिल गए, जिनमे पैदल सेना की 38 वी, 54 वी और 74 वी रेजीमेंट और देशी तोपखाने की एक कम्पनी शामिल थी। ब्रिटिश अफसरो पर हमला किया गया। जितने अंग्रेज हाथ लगे, उनके सिर कलम किये गए और दिल्ली के मुगल बादशाह के उत्तराधिकारी बहादुर शाह जफर द्वितीय को 11 मई 1857 को भारत का सम्राट घोषित किया गया।

इसके बाद सारे उत्तरी भारत में विद्रोह की आग भड़क उठी। कानपुर और लखनऊ मे उसने बडा विकराल रूप धारण किया। नाना साहिब ने कानपुर पर अपना अधिकार स्थापित कर अपने को पेशवा घोषित कर दिया। बुन्देलखण्ड में झाँसी की महारानी लक्ष्मी बाई ने और मध्य भारत मे

बाबू कुँवर सिंह

तात्याटोपे ने विद्रोहियों का नेतृत्व सम्भाला। बिहार में जगदीशपुर के कुंवरसिंह ने विद्रोह का संचालन किया। पंजाब, राजपुताना तथा औरंगाबाद और हैदराबाद को छोड़कर दक्षिण भारत में विद्रोह का प्रसार नहीं हो सका।

बहादुर शाह जफर

लार्ड कैनिंग ने विद्रोह के दमन के लिए सबसे पहले अंग्रेजी सेनाएँ दिल्ली की ओर भेजीं। छः सप्ताह की भीषण लड़ाई के बाद दिल्ली पर फिर से अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 20 सितम्बर 1857 को बादशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया। बादशाह को गिरफ्तार करके उसकी पत्नी के साथ रंगून भेज दिया गया। होडसन ने तीन शाहजादों की हत्या कर दी और उनकी लाशें कोतवाली के सामने फेंक दीं। इस निर्मम कृत्य की अनेक अंग्रेज लेखकों ने भी निन्दा की है।

उत्तर प्रदेश में विद्रोहियों के दमन के लिए कर्नल नील को भेजा गया। उसने बनारस और इलाहाबाद पर अधिकार करने के बाद हैवलाक के साथ कानपुर पर हमला किया। दिसम्बर 1857 में कानपुर पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

अंग्रेजों ने क्रान्तिकारियों के साथ जो राक्षसी व्यवहार किये थे, उनके सम्बन्ध में पं. नेहरू लिखते हैं– "बड़ी बेरहमी के साथ बहुत बड़ी तादाद में लोग गोलों से उड़ा दिये गए और हजारों की तादाद में लोग सड़क के किनारे

पर दरख्तो पर फाँसी लटकाकर मार दिय गए । कहा जाता है कि नील नामक एक अंग्रेज जनरल इलाहाबाद से कानपुर तक रास्ते के तमाम आदमियो को फाँसी का झूला बना दिया था । हरे भरे और खुशहाल गांवो को लूट--मारकर उजाड दिया गया और उन्हे मिट्टी मे मिला दिया गया ।"[1]

वीरांगणा रानी लक्ष्मी बाई

मार्च 1858 मे झांसी मे अंग्रेज सेनापति ह्यूरोज और महारानी लक्ष्मी बाई के बीच घमासान लड़ाई हुई । महारानी ने बड़ी वीरता और साहस दिखाया । तात्याटोपे भी वहां रानी की सहायता के लिए पहुंच गए । दुर्भाग्य से वे पराजित हो गए । इसके बावजूद लक्ष्मीबाई ने हिम्मत नही हारी और उठकर अंग्रेजो का मुकाबिला किया । 12 दिनों तक घमासान लडाई हुई,

1. प. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक, भाग 1, पृ. 590

परन्तु अन्त मे अंग्रेजो की विजय हुई। महारानी लक्ष्मीबाई और तात्याटोपे को अंग्रेजी सेना से फिर कालपी और ग्वालियर मे लडाई हुई। लक्ष्मीबाई ने लडते-लडते ही ग्वालियर मे 17 जून 1858 को वीरगति प्राप्त की। कुछ दिनों के बाद मानसिंह के विश्वासघात के कारण तात्याटोपे गिरफ्तार कर लिये गये और 18 अप्रैल 1859 को उन्हे प्राणदण्ड दिया गया।

बाद मे पजाब के फिरोजपुर नगर मे 57 वी और 45 वी देशी रेजीमेंटो ने भी बगावत कर दी थी।

नानासाहिब की प्रेरणा से 12 जून को औरंगाबाद रेजीमेंट ने विद्रोह किया और 18 जुलाई को हैदराबाद मे मौलवी अलाउद्दीन और तुर्रेबाज खाँ के नेतृत्व में 500 रोहिलो की घुडसवार सेना ने विद्रोह किया और रेजीडेन्सी पर धावा बोल दिया। इस लड़ाई मे तुर्रेबाज खाँ मारा गया और अलाउद्दीन को गिरफ्तार करके अण्डमान भेज दिया गया, जहाँ 1886 मे उसकी मृत्यु हो गई।

इस प्रकार सभी देशी फौजो ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया था। दिल्ली, मेरठ, आगरा, इलाहाबाद, अवध, रूहेलखण्ड, पटना आदि प्रदेशो में काफी समय तक विद्रोही सैनिक-शासन की व्यवस्था रही और कुछ क्षेत्रो मे ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया। परन्तु सिक्ख राजाओ ने क्रान्तिकारियो के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाई और राजपुताने के अधिकतर शासक तटस्थ रहे। ग्वालियर के दिनकरराव और हैदराबाद के सालारजंग ने क्रान्ति को कुचलने में ब्रिटिश सरकार की पूरी-पूरी सहायता दी। विद्रोहियों को दबाने मे अंग्रेजो को गुरखों से भी पूरी सहायता मिली। परिणामतः क्रान्तिकारियों की पराजय हुई। कहा जाता है कि इस संग्राम में लगभग 30 हजार भारतीय सैनिक और एक लाख नागरिक मारे गए। इस सग्राम के प्रमुख सेनानी थे-- बहादुरशाह ज़फर द्वितीय (दिल्ली), नाना साहिब (कानपुर), रानी लक्ष्मीबाई (झाँसी), कुँवरसिंह (बिहार), सूबेदार खानबहादुर खान (रोहिल खण्ड), रावतुलाराम

(रेवाड़ी) तथा तात्याटोपे (ग्वालियर) इत्यादि । बहादुरशाह जफर को बर्मा निर्वासित कर दिया गया और झांसी की रानी लक्ष्मीबाई लड़ती हुई शहीद हो गईं ।

स्वतंत्रता–संग्राम के प्रमुख सेनानी

(1) मंगलपाण्डे, (2) रानी लक्ष्मीबाई, (3) कुंवरसिंह, (4) तात्याटोपे, (5) नाना साहिब, (6) बगम हजरत महल, (7) रावतुलाराम (8) बहादुरशाह जफर ।

तांत्याटोपे को अप्रैल 1859 को फाँसी दे दी गई। नाना साहिब नेपाल की ओर चले गए।

वनवासी वीरों द्वारा सशस्त्र क्रान्ति

1857 की सशस्त्र क्रान्ति मे वनवासी वीरो ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी, परन्तु भारत के स्वाधीनता सग्राम के इतिहास में वनवासी क्षेत्रों के क्रान्तिकारियों और स्वातंत्र्य योद्धाओ को विस्मृत कर दिया गया है।

1857 के स्वाधीनता सग्राम से लेकर 1947 तक गिरिवनो के असख्य क्रान्तिकारियो ने स्वाधीनता के महायज्ञ मे अपने प्राणों की आहुति दी थी। अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध सशस्त्र सघर्ष करनेवाले वनवासी वीरों में ही अपूर्व शौर्य, महान देशभक्ति और अद्‌भुत सगठन कुशलता विद्यमान थी।

वनवासी क्षेत्रों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सघर्ष ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के समय से ही शुरू हो गया था। सशस्त्र क्रान्ति की आग सर्वप्रथम वनवासी क्षेत्रो में भडकी थी। 1857 के विद्रोह के समय तो संघर्ष बहुत तेज हो चुका था। 1832 में मानभुम (अब पुरलिया) भूमिज–संघर्ष एक ऐसा ही आन्दोलन था जिसने ब्रिटिश शासन की नीव हिला दी थी। यह आन्दोलन "गगानारायण काहगामी" के नाम से जाना जाता है। आन्दोलन के नेता गंगानारायण थे, जो बहुत ही साहसी, जुझारू और कुशल संगठक थे। अंग्रेजो ने पूरे क्षेत्र में दमन–चक्र चलाया। गाँव के गाँव जला दिये गए। हजारों एकड जमीन पर तैयार फसलों में आग लगा दी गई। गंगानारायण के समर्थकों को चुन-चुनकर खत्म कर दिया गया। हजारो मकानो और झोंपडियों को नष्ट कर दिया गया। भयकर दमन और अत्याचारो के बावजूद यह आन्दोलन

फरवरी 1833 तक चलता रहा। वनवासियो की एकता, साहस और देश भक्ति को देखकर अंग्रेज दंग रह गए। अग्रेजो से एक मुठभेड में गंगानारायण शहीद हो गए। उसके बाद आन्दोलन को दबा दिया गया।

वनवासियों का भगवान बीरसा :

छोटा नागपुर के वन-क्षेत्रो मे सशस्त्र क्रान्ति आन्दोलन में क्रान्ति-नेता बीरसा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वनवासियो मे क्रान्ति की चेतना जगायी थी। बीरसा ने अग्रेजो के विरुद्ध जबरदस्त संघर्ष किया था। बीरसा क्रान्तिकारी ही नही, अपने अदम्य साहस व शौर्य तथा महान् गुणों के कारण वनवासियों द्वारा भगवान के रूप में पूजे जाते हैं।

1830 में महाराष्ट्र के पूना, नासिक तथा ठाणा आदि जिलों के वनवासी क्षेत्रों में क्रान्ति की ज्वाला भड़की थी। इस संघर्ष का नेतृत्व भाऊखेर चिमनजी, दरबारे तथा आग्रव ने किया था। महादेव कोली जाति के इन संगठित वनवासी वीरों ने कम्पनी सरकार के छक्के छुड़ा दिये थे। किन्तु कुछ गद्दारों के कारण अनेक क्रान्तिकारी गिरफ्तार कर लिये गए और उन्हें नासिक में गोली से उडा दिया गया। केवल राघोजी बच निकले परन्तु फरार राघोजी अन्त में साधु वेष में ठाणा जिले में पकडे गए। 2 मई 1848 को दूसरे क्रान्तिकारी रामचन्द्र गणेश गोरे और महादेव के साथ राघोजी को फाँसी दे दी गई।

गुजरात में क्रान्ति की आग भड़की थी। रेखाकांठा तथा पचमहल के बीहड़ जंगलों में नायकदास नामक जाति में उत्पन्न जौरिया भगत एक ऐसा क्रान्तिकारी था, जिसने अंग्रेजो की नीद हराम कर दी थी। भगत ने अंग्रेजी सत्ता को कड़ी चुनौती दी थी। जौरिया भगत, उसके साथी रूपा नायकदास और गलिलिया ने वनवासियों मे क्रान्ति की चेतना जगायी थी। बहादुरी से अंग्रेजी सेना का मुकाबला किया और अन्त में पकड़े गए। किन्तु झुके नहीं

और फांसी के फंदे पर चढ गए। आज भी वनवासी क्षेत्रों में उन अमर वीरो की वीरता की कहानियां आदर और गर्व के साथ सुनायी जाती हैं।

मध्य प्रदेश के निमाड के क्रान्तिकारी तातिया मामा का नाम आज भी लोक-गीतो में और लोक-कथाओ के द्वारा आदर और गर्व के साथ स्मरण किया जाता है। उस समय के होलकर राज्य मे तातिया जामा जनसाधारण के श्रद्धा के पात्र थे। तातिया के नाम से पुलिस भी कांप उठती थी। लाख कोशिश करने पर भी अंग्रेज सरकार तातिया को दबा नही सकी। सरकार ने "तांतिया दमन पुलिस" नाम से एक विशेष पुलिसदस्ता का भी गठन किया, तो भी तांतिया उस पुलिस की पकड मे नही आ सके। वे अग्रेजो से गुरिल्ला लड़ाई लड रहे थे। किन्तु तातिया के बहनोई गणपति ने छल से उन्हे पकड़वा दिया। बाद मे तातिया को फांसी पर लटका दिया गया परन्तु वनवासी जनता तातिया को अपना मसीहा समझकर उसकी पूजा करती है। उसके मरने के बाद उस क्षेत्र मे क्रान्ति और भड़क उठी। शहीद तातिया, जोवित तांतिया टोपे से भी अधिक जनसाधारण का प्रेरणा-स्रोत बन गया। जनता ने महू पाताल पानी स्टेशन पर तातिया के प्रति वनवासियों की श्रद्धा का प्रतीक स्मारक बनाया और हजारो वनवासी आज भी नित्य अपने श्रद्धा-सुमन चढाने वहां आते हैं।

राजा-महाराजाओं का स्वाधीनता-संग्राम

1857 के स्वाधीनता-सग्राम मे राजाओं और महाराजाओ की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सशस्त्र-क्रान्ति की रूप कल्पना और विद्रोह सम्बन्धी योजना-कार्यक्रमो में जिन मेधावी वीरो ने अपना योगदान दिया था, उनमें प्रमुख थे: पेशवा नाना साहिब (धुधूपन्त)। नाना साहिब सशस्त्र क्रान्ति के सूत्रधार थे। त्याग एवं स्वातंत्र्य, उनकी दूरदर्शिता एवं वीरता और सगठन-क्षमता एवं नेतृत्व

योग्यता इत्यादि विलक्षण गुणो के कारण भारतीय इतिहास मे उनका नाम स्वर्णाक्षरो मे अंकित रहेगा।

क. नाना साहिब : (1824-1860)

नाना साहिब

नाना साहिब का जन्म सन् 1824 मे वेणुग्राम निवासी माधव नारायण राव के घर मे हुआ था। इनके पिता पेशवा बाजीराव द्वितीय के सगोत्र भाई थे। पेशवा ने बालक नानाराव को अपना दत्तक पुत्र स्वीकार किया और शिक्षा-दीक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध किया। बाल्यकाल मे ही नाना राव को हाथी-घोड़े की सवारी, तलवार व बन्दूक चलाने की विधि सिखाई गई और कई भाषाओ का अच्छा ज्ञान भी कराया गया। 28 जनवरी 1851 को पेशवा का स्वर्गवास हो गया। दिवगत पेशवा के उत्तराधिकार का प्रश्न उठा। कम्पनी ने नाना राव को पेशवा का उत्तराधिकारी मानने से इन्कार कर दिया। परन्तु नाना राव ने सारी सम्पत्ति को अपने हाथ मे लेकर पेशवा के शस्त्रागार पर भी अधिकार कर लिया। थोडे ही दिनो में नाना राव ने पेशवा की सभी उपाधियो को धारण कर लिया। अपने न्यायोचित अधिकारो को पाने के लिए अन्त मे उन्होने अपने वरिष्ठ सलाहकार अजीमुल्ला खॉं को अपना वकील नियुक्त कर लंदन मे महारानी विक्टोरिया के पास भेजा। परन्तु कोई लाभ नहीं हो सका।

अग्रेजो की मक्कारी नीति से नाना राव धुधुपत निराश होकर चुप नहीं बैठे। उन्होने 1857 की सशस्त्र क्रान्ति की योजना बनाई। रहस्यात्मक ढंग से उन्होने कालपी, दिल्ली, लखनऊ, बिहार आदि राज्यो की यात्रा की और क्रान्ति के लिए सगठन बनाये। जब मेरठ से क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ तो नाना साहिब ने बडी वीरता और दक्षता के साथ क्रान्तिकारियो की सेनाओ का नेतृत्व किया। अग्रेजी खजानो से साठ लाख रुपये और युद्ध सामग्री प्राप्त

को। कानपुर के अग्रेजो को एक गढ मे कैद कर दिया गया और वहाँ भारतीय ध्वज फहराया गया।

सारे क्रान्तिकारी दस्ते दिल्ली प्रस्थान के लिए कानपुर मे एकत्र हुए। नाना साहिब ने उनका नेतृत्व किया। कल्याणपुर से ही नाना साहिब ने अपने सैनिको को कई दस्तो मे बांटा। जब सब अग्रेज सतीचौरा घाट से नावो पर जा रहे थे, क्रान्तिकारियों ने उन पर आक्रमण किया और अनेक अंग्रेजो को मौत के घाट उतार दिया।

1 जुलाई 1857 को अग्रेजों ने प्रस्थान किया तो नाना साहिब ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की और पेशवा की उपाधि भी धारणा की। नाना साहिब ने अग्रेज सेनाओ से फतेहपुर, आग, कानपुर, बिठूर आदि स्थानों में भयकर युद्ध किया। कभी जीत और कभी हार होती रही, परन्तु नाना साहिब में अदम्य साहस की कभी भी कमी नही हुई। उन्होने क्रान्तिकारी सेनाओ का बराबर नेतृत्व किया। 1858 के जनवरी मास मे जब अग्रेजो ने कानपुर व लखनऊ पर अपना कब्जा कर लिया तो रूहेलखण्ड पहुँचकर उन्होंने खान बहादुर खाँ को अपना सहयोग दिया। अंग्रेजो का यह दृढ़ विश्वास था कि जब तक नाना साहिब पकड़े नही जाते, तब तक विप्लव को दबाया नहीं जा सकता। अन्त मे नाना साहिब नेपाल को तराई मे चले गए। तराई मे रहकर उन्होने महाराणा प्रताप की तरह अनेक कष्ट झेले, परन्तु उन्होने फिरंगियो के आगे आत्म–समर्पण नही किया। तराई से वे कहाँ गए, यह किसी को पता नही। अग्रेज सरकार ने नाना साहिब को पकड़वाने के लिए बड़े-बड़े इनाम घोषित किये, सारे प्रयत्न निष्फल हुए। डॉ. रामनिवास शर्मा के अनुसार 1859 मे अमरसिह की सेना का नेतृत्व ग्रहण करने के लिए तराई गये। नेपाल नरेश जंगबहादुर की सेना ने दिसम्बर 59 मे पकड़ लिया। 5 फरवरी 1860 को जेल मे नाना साहिब की मृत्यु हो गयी। निश्चित ही नाना साहिब की देश भक्ति, त्याग, बलिदान, वीरता, स्वाधीनता-सग्राम के इतिहास मे चिरस्मरणीय रहेगा।

ख. महान् क्रान्तिकारी राव तुलाराम (1825–1868)

1857 के प्रथम स्वाधीनता सग्राम मे अपने प्राणो की आहुति देनेवाले भारतीम वीरो मे महान् क्रान्तिकारी राव तुलाराम भी एक थे जिन्हे इतिहासकारो ने अब तक उनके अनुयोज्य स्थान नही दिया।

राव तुलाराम का जन्म 9 दिसम्बर 1825 को रेवाड़ी मे हुआ था। राव पूर्णसिह के पुत्र थे। 14 वर्ष की बाल्यावस्था मे ही पितृ–प्रेम से वंचित हो गए थे। उनकी शिक्षा–दीक्षा मातारानी ज्ञान कौर की देखरेख मे हुई। माता ज्ञान कौर बहुत ही धैर्यवान एव सहनशील महिला थी। राव तुलाराम के चरित्र–निर्माण मे उनकी माता की गहरी छाप थी।

गद्दी पर बैठते ही अपनी रियासत को सुसगठित और सन्तुलित करने के पश्चात राव ने अपनी छोटी परन्तु दक्ष सेना का निर्माण किया और उसे अग्रेजो के विरुद्ध लडने का अद्वितीय प्रशिक्षण दिया। इस सेना मे पैदल और घुडसवार दोनो ही शामिल थे। स्वतन्त्रता–संग्राम के बिगुल के बजते ही बहादुर शाह जफर के आग्रह पर राव ने रेवाडी भोडा कलान तथा शाह जहाँपुर तहसीलो का प्रशासन अपने हाथ मे ले लिया।

वीरवर राव ने 17 मई 1857 को रेवाड़ी तहसील पर अपना अधिकार जमा लिया और बहादुरशाह जफर के फरमान के अनुसार अपने आपको शासक घोषित कर दिया। 20 सितम्बर को अग्रेजो ने दिल्ली को अपने कब्जे में कर लिया। जब अग्रेज सेना पटौदी व खेडी की ओर बढी तो राव तुलाराम ने उनका डटकर मुकाबिला किया। भयभीत होकर अंग्रेजो ने संधि का प्रस्ताव किया परन्तु उन्होने इसे अस्वीकार कर दिया।

कर्नल गेरार्ड के नेतृत्व में अग्रेज सेना ने पुनः आक्रमण किया। नसीबपुर के मैदान मे घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध मे राव की सेना ने कर्नल गेरार्ड को मौत के घाट उतार दिया और बहुत से अग्रेज सैनिको को हताहत किया। अंग्रेज सेना मे भगदड़ मच गयी। परन्तु दुर्भाग्यवश राव के सेनापति राव कृष्णगोपाल

युद्ध में शहीद हो गए। नसीबपुर का यह युद्ध 1857 की क्रान्ति का बहुत ही महत्त्वपूर्ण युद्ध था। यहाँ से अंग्रेज सेना पराजित होकर राजस्थान की ओर भाग गई। राव तुलाराम ने उनका पीछा किया।

अपनी सैन्य शक्ति को बढाने के लिए राव तुलाराम अनेक राजाओ से मिले। विद्रोह के मुख्य सेनानी नानासाहिब और तात्या टोपे से भी उन्होंने भेंट की। उनसे परामर्श और मार्गदर्शन प्राप्त किया। विदेशो से सैन्य सहायता प्राप्त करने के लिए राव तुलाराम ईरान, कन्धार, अफगानिस्तान, काबुल आदि देशों में जाकर सैन्य संगठन किया। परन्तु बीमारी के कारण वे 23 सितम्बर 1863 को 38 वर्ष की आयु मे अमर सेनानी सदैव के लिए इस धरती से बिदा हो गए।

ग. वीर सेनानी कुँवरसिंह बाबू (1782–1858)

कुँवरसिंह 1857 के भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के एक क्रान्तिकारी वीर सेनानी थे। आपका जन्म बिहार प्रदेश के जगदीशपुर नामक ग्राम मे हुआ। जन्मतिथि के सम्बन्ध में मतभेद है, परन्तु राज्य-परिवार के हिसाब से 1782 मे जन्म होना सिद्ध होता है। बचपन में अस्त्र-शस्त्र घुडसवारी, निशानेबाजी, शिकार इत्यादि की शिक्षा दी गई थी। हिन्दी और संस्कृत के अतिरिक्त फारसी भी वे जानते थे।

वीर सेनानी कुँवरसिंह बाबू

पिता बाबू साहबजादा सिंह की मृत्यु के बाद कुँवरसिंह 1830 में जगदीशपुर राज्य की गद्दी पर बैठे। उनकी जमीदारी का विस्तार, बिहार प्रदेश के आरा जिले के जगदीशपुर, परोफरगना, नोनार, आरा, बारह गाँवा आदि अनेक मौजों और परगनो तक था जिसकी वार्षिक आय लगभग साढे नौ

लाख रुपये थी। राजदरबार में "कविराम" प्रधान कवि थे तथा जगदीशपुर की कचहरी न्याय के लिए प्रसिद्ध थी।

अंग्रेज शासकों का साथ न देने के कारण कुंवरसिंह बाबू को बागी घोषित कर विद्रोहियों का नेता करार दिया गया। गिरफ्तार करने की कोशिश हुई, परन्तु स्वातंत्र्य समर के अन्य सेनानियों के द्वारा "रोटी" और "कमल" के माध्यम से संग्राम का निमन्त्रण मिला, वे स्वातंत्र्य-संग्राम मे कूद पड़े। जगदीशपुर छोड़कर सेना का सगठन करते हुए वे आगे बढ़े। दानापुर छावनी के बागी सिपाही उनकी सेना मे आ मिले। 27 जुलाई 1857 को कुंवरसिंह की सेना ने आरा शहर में आक्रमण किया और विजय प्राप्त की। कारागार के कैदी मुक्त कर दिये गए। कुंवरसिंह की पदाति सेना में राजपूत, पठान, किसान कुम्हार, मुराव, बढई, लोहार, बागी सिपाही, अवकाश प्राप्त सिपाही इत्यादि हर वर्ग के लोग थे।

30 जुलाई 1857 को कप्तान अन्वर की सेना से हुई मुठभेड में कुंवरसिंह की दूसरी विजय हुई। परन्तु 12 अगस्त को दिलावर ग्राम में अंग्रेजो से हुई मुठभेड में क्रान्तिकारी पराजित हुए। आरा और जगदीशपुर पर अंग्रेजो का कब्जा हो गया।

परन्तु कुंवरसिंह ने हार न मानी, वे आगे बढ़े। सरकारी सैन्य की 40 वीं पल्टन उनकी सेना मे आ मिली। रीवा पर आक्रमण करने के बाद कुंवरसिंह ने कानपुर में तांत्या टोपे, नाना साहिब और रानी लक्ष्मीबाई से मिलकर क्रान्ति की योजनाएँ बनाईं। कालपी की लडाई में उनके पौत्र वीरभजनसिंह खेत रहे। कुंवरसिंह छ. महीने तक अनेक स्थानों पर घूम-घूमकर क्रान्ति की ज्वाला को फैलाया।

कुंवरसिंह ने अंग्रेजो के साथ अनेक मुठभेडों में विजय प्राप्त की। 17 मार्च 1858 को अतरौलिया नामक ग्राम पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया। 27 मार्च को कर्नल डेमस को ससैन्य पराजित किया, 6 अप्रैल को लार्ड मार्क को हरा दिया और उसी प्रकार जनरल वेलविन, हैमिल्टन डोंस को 17 अप्रैल को मेजर डगलस को पराजित किया। अंग्रेजी फौजो का मुकाबला

करते हुए कुँवरसिंह जगदीशपुर की ओर बढ़े। 22 अप्रैल 1858 को उन्होंने जनरल ली.ग्रांड की सेना को पराजित कर अपनी राजधानी जगदीशपुर पर पुनः अधिकार कर लिया। अन्तिम विजय के ठीक तीसरे दिन 25 अप्रैल 1858 की लड़ाई में हाथ कट जाने के कारण वीर सेनानी कुँवरसिंह की मृत्यु हो गई। कुँवरसिंह महान योद्धा के साथ-साथ लोकप्रिय शासक भी थे। उन्होंने अपनी प्रजा की बहुमूल्य सेवा की।

घ. वीरांगना लक्ष्मीबाई

वीरांगना लक्ष्मीबाई

1857 में जिन वीरों ने विद्रोह का नेतृत्व किया था और समरभूमि में अपने अद्भुत साहस एवं बहादुरी से शत्रु के दांत खट्टे किये थे, उनमें महान वीरांगना झांसी की रानी लक्ष्मीबाई थी। इस स्वाधीनता संग्राम के महानतम नेता नाना साहेब और लक्ष्मीबाई दोनों उस क्रान्ति-वृक्ष के एक शाखा के दो फल थे। वास्तव में स्वाधीनता संग्राम-गगन की लक्ष्मीबाई एक उज्ज्वल नक्षत्र थी, जो देश प्रेमियों के लिए प्रेरणा-स्रोत बनीं। पं. जवाहरलाल लिखते हैं -
"विद्रोह और इसके दमन के बीच काले पर्दे पर एक उज्ज्वल नाम चमक रहा है। यह नाम है एक बीस वर्ष की बाल विधवा झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का जो मर्दों का-सा बाना पहनकर अंग्रेजों के खिलाफ अपनी प्रजा का नेतृत्व करने के लिए मैदान में निकल आई। उसके जोश, उसकी काबलियत और उसके निडर साहस की बहुत-सी कहानियाँ कही जाती हैं। यहाँ तक कि जिस अंग्रेज जनरल ने उसका मुकाबला किया था उसने भी उसे बागी नेताओं में सब से योग्य और सबसे बहादुर कहा है। वह लड़ती हुई युद्ध में काम आई।"[1]

1. पं. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक, भाग : 1 : पृ. 591

इस वीरांगना का जन्म वाराणसी मे सन् 1835 मे हुआ। पिता का नाम मोरोपन्त ताम्बे और माता का नाम भागीरथी बाई था। बचपन का नाम मनुबाई या मणि कर्णिका था। लोगो ने लाड से उस बालिका को "छबीली" नाम रखा। लक्ष्मीबाई अपने बाल्यकाल से ही बहादुर थी। नाना साहब के साथ घुड़सवारी से लेकर तलवार चलाने तक सभी मामलो मे होड लेने लगी। युद्ध-कला मे वह निपुण हो गयी थी। यह विचित्र सयोग की बात थी कि 1857 के विद्रोही तीनो नेता नाना साहब, लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे उन दिनो ब्रह्मावर्त मे एक साथ रह रहे थे।

सात साल की उम्र मे मनुबाई का विवाह झासी के महाराजा गंगाधर राव बाबा साहब से हुआ। मनुबाई लक्ष्मीबाई बनी और वह महारानी पद की भी अधिकारिणी बन गई। महाराजा सन् 1853 तक जीवित रहे, पर वे निस्सन्तान रहे, तो मरने से पहले, उन्होने कप्तान मार्टिन, कमाण्डर झांसी ब्रिटिश शासन तथा अपने दरबार के सामने दामोदर राव को दत्तक पुत्र के रूप मे ग्रहण कर लिया था। परन्तु उनकी मृत्यु के बाद ब्रिटिश शासन ने गगाधरराव के दत्तक पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी स्वीकार नही किया। झांसी को ब्रिटिश शासन मे मिला लिया। जब सरकार का निर्णय महारानी के सम्मुख रखा गया तो लक्ष्मीबाई ने यह सिंह-गर्जना की "मैं अपनी झांसी नही दूंगी।"

महारानी के भाग्य में शान्ति बदी नही थी। इस लिए पहले तो सदाशिव नामक एक व्यक्ति खडा हो गया। उसने झांसी से 30 मील दूर करेरा का किला जीतकर अपने को झांसी का नरेश घोषित कर दिया। महारानी ने युद्ध करके उसे हराया और अपने किले मे कैद कर लिया।

इसके बाद ओरछा राज्य के दीवान नत्थे खां ने झांसी पर चढाई कर दी। महारानी ने बडी बहादुरी के साथ उसे भी युद्ध मे हरा दिया। कहा जाता है कि उसके साथ साठ हजार सेना थी।

1857 मे जब देश में जगह-जगह विद्रोह छिड गया, तब झांसी की सेना ने विद्रोह कर दिया। वहां एक एक अंग्रेज को चुन-चुनकर मार डाला गया।

महारानी ने अब राज्य की बागडोर अपने हाथ मे ले ली । तदुपरान्त झाँसी पर सर ह्यूरोज नामक कुशल सेनापति ने प्रबल सेना के साथ आक्रमण किया । महारानी ने बड़े साहस और कुशलता के साथ मोर्चाबन्दी की । आठ दिन तक भयकर युद्ध हुआ ।

लक्ष्मीबाई की सेना ने झाँसी की हर इंच भूमि के लिए लडाई की । 31 मार्च झाँसी को मदद के लिए 1857 के विद्रोह का नेता तात्याटोपे अपने बीस हजार सैनिक लेकर वहा पहुचा और झाँसी के समीप दोनों सेनाओं के बीच जम कर मुठभेड़ हुई, परन्तु अन्त मे अग्रेजो की विजय हो गयी । अग्रेजो ने अब पूरी शक्ति के साथ झाँसी पर आक्रमण किया । लक्ष्मीबाई ग्यारह दिन तक (22 मार्च से 3 अप्रैल तक) बड़ी बहादुरी के साथ लड़ती रही । जब विजय की कोई आशा नही रही, तो उन्होंने आठ वर्ष के दामोदर राव को अपनी पीठ से बाधा और वे एक हजार सैनिको के साथ अग्रेजी सेना को चीरती हुई आगे निकल गयी । बिना कुछ खाये-पिये, निरन्तर अपना घोड़ा दौड़ाते हुए वे कालपी पहुँची । कई बार अग्रेजो के साथ मुठभेड़ हुई । 17 जून को ग्वालियार ब्रिगेडियर स्मिथ के साथ मुठभेड़ मे वे शहीद हो गईं । ग्वालियर मे उसी स्थान पर उनकी समाधि बनी हुई है ।

ङ. बहादुरशाह ज़फ़र (1775–1862)

बहादुर शाह ज़फ़र

सिराजुद्दीन बहादुर शाह ज़फ़र का जन्म 24 अक्तूबर 1775 को दिल्ली के लाल किले मे लालबाई की कोख से उस समय हुआ, जब मुग़लिया हुकूमत का चिराग़ टिमटिमा रहा था । नादिरशाह और अहमद शाह अब्दाली के क्रूर आक्रमणो और लूट-खसोटो ने दिल्ली को बिल्कुल खोखला बना दिया था । ऐसे नाजुक समय मे 30 सितम्बर 1837 को बहादुरशाह ज़फ़र अपने पिता

अकबर शाह सानी की मृत्यु के बाद दिल्ली की गद्दी पर बैठे। शुरू से ही उन्हे अपार मुसीबतों का सामना करना पड़ा। बहादुर शाह जफ़र दिल्ली के अन्तिम सम्राट थे। किन्तु वे नाम मात्र के ही शासक थे। वास्तविक राज्याधिकार अंग्रेजो के हाथ मे था।

ज़फ़र का बचपन बड़े ही लाड़-प्यार मे बीता। शिक्षा-दीक्षा भी बड़े उच्च स्तर पर दी गयी। साथ ही वे सारी शिक्षाएँ भी उन्हे दी गयी जो उस समय की परम्परा के अनुसार एक सैनिक को दी जाती थी। ज़फ़र मुगल खानदान मे सबसे उच्चकोटि के व्यक्ति माने जाते थे। उनका चरित्र बड़ा उज्ज्वल रहा। साथ ही वे सूफी स्वभाव के व्यक्ति थे। वे फारसी के अच्छे विद्वान् थे और उर्दू मे प्रभावोत्पादक कविता भी करते थे। जफर एक ओर जहाँ मुग़लिया खानदान के आखिरी चिराग़ रहे, वही दूसरी ओर वे एक महान् राष्ट्रीय कवि भी थे। उन्होने सूफीयाना ढंग पर जो रचनाएँ लिखी, वे उर्दू-साहित्य मे एक अनमोल रत्न साबित हुईं। ज़फ़र द्वारा रचित कई 'दीवान' उपलब्ध हैं। कविता की ओर अधिक झुकाव होने के कारण राजकार्यों की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दे पाते थे।

ज़फर को अंग्रेजो से शुरू से ही घोर नफ़रत थी। वे अंग्रेजों की मनहूस सूरत कभी देखना पसन्द नहीं करते थे। 11 मई 1857 को देश में विद्रोह की आग भड़क उठी। देश भक्त मचल उठे। सारे देश के लोगों ने बहादुर शाह ज़फ़र को असली सम्राट मान लिया और उनके नेतृत्व में देश को आज़ाद कराने का संकल्प ले लिया। बहादुर शाह ज़फ़र ने देशवासियों का आह्वान किया– "हिन्दोस्तान के लोगो उठो और फिरंगियों को मुल्क से निकाल बाहर करो। आजादी हमारी सब से कीमती बरकत है, इसकी हिफ़ाज़त करना हमारा सब से बड़ा फर्ज है।" फलत: विद्रोही दस्ते मेरठ से सीधे दिल्ली जा पहुँचे। वहाँ उनके साथ दिल्ली की छावनी के देशी सैनिक मिल गए। ब्रिटिश अफ़सरों और सेना पर आक्रमण किया गया। जितने अंग्रेज हाथ लगे, उनके सिर कलम किये गए। इस लड़ाई में विजय मिली। लाल किले पर हरा और सुनहरा झण्डा फहराया गया और बहादुर शाह ज़फ़र को 11 मई 1857 को भारत का सम्राट घोषित किया गया। दिल्ली विजय की यह स्थिति करीब

साढे चार मास तक बनी रही, लेकिन कुछ देशद्रोहियों के कारण अंग्रेजों ने बाहर से अधिक सेना मँगवा कर विद्रोह को कुचल दिया। फिर भी छः सप्ताह तक लड़ाई चलती रही। मेजर हडसन ने देश भक्तों पर जो जुल्म ढाये कि मानवता रो पड़ी। 20 सितम्बर 1857 को बादशाह ने आत्मसमर्पण कर दिया। ज़फ़र को गिरफ्तार कर उन पर बग़ावत का झूठा मुकदमा चलाया गया। बूढ़े बादशाह जिसका कुसूर बस इतना था कि जिस किसी कीमत पर और जिस तरह भी हो सके अंग्रेजों को इस मुल्क से बाहर निकाल दिया जाए। बादशाह की गिरफ्तारी के बाद मेजर हडसन ने जब बादशाह के सामने उनके बेटों व पोतों के सर काट कर पेश किये तो बूढ़े बादशाह ने कहा– "हडसन ! अभी मेरी कुछ और औलादें बाक़ी हैं। लेकिन एक बात याद रखना कि उनके सर कट जाने के बाद भी तुम मुझे मेरे रास्ते से नहीं डिगा सकते।" आजीवन कारावास की सज़ा देकर बहादुर शाह ज़फ़र को उनकी पत्नी बेगम जीनत महल के साथ रंगून भेज दिया गया, जहाँ उन पर बड़े जुल्म ढाये गए। अंग्रेजों ने उन्हें तड़पा-तड़पाकर 7 नबम्बर 1862 को मार डाला। मरते समय भी ज़फ़र को अपने वतन से बेहद प्यार था, उनके दिल में अजीब-सी कसक बाकी रह गयी :–

कितना है बदनसीब ज़फ़र दफ़न के लिए।
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कूवे यार में।।

सन् सत्तावन : सशस्त्र क्रान्ति की विशेषताएँ

1857 की सशस्त्र क्रान्ति ठीक उस समय शुरू हुई जब अहाता बंगाल से लगभग सभी यूरोपीय सैनिक फारस की लड़ाई मे भेज दिये गए थे। इससे पहले भी कई बार विद्रोह उठ खड़े हुए थे, परन्तु इस बार जो व्यापक रूप मे विद्रोह हुआ, उसकी अपनी कुछ विशेषताएँ थी।

1. पहली बार भारतीय सैनिकों की रजीमेण्टो ने अपने यूरोपीय अफसरों को मौत के घाट उतार दिया था।

2. यह पहला अवसर था, जब मुसलमान और हिन्दू एक दूसरे के प्रति अपने वैमनस्य को भुलाकर उभय स्वामियो के विरुद्ध अपनी कमर कस ली थी।

3 यहाँ विचित्र बात यह थी कि पहली बार हिन्दुओ ने बलवे शुरू किये। अन्त मे दिल्ली के सिंहासन पर एक मुसलमान बादशाह को बिठाया गया।

4. यह पहला ही अवसर था कि विद्रोह कुछ स्थानो तक सीमित न रहकर पूरे देश मे व्याप्त हो गया था।

5 पहली बार ही एग्लो भारतीय सेना में विद्रोह बिल्कुल उस समय हुआ है, जब महान् एशियाई राष्ट्रो मे अग्रेजी सत्ता के विरुद्ध घृणा-भाव व्यापक स्तर पर प्रदर्शित हो रहा था, क्यो कि बंगाल की सेना मे होनेवाले विद्रोह का फारस और चीन की लड़ाइयो से गहरा सम्बन्ध था।

6. विद्रोह की योजना देश-व्यापी बनायी गई थी। योजना की विशेषता यह थी कि यह कार्यक्रम इतने सगठित एव गोपनीय ढंग से सचालित

किया गया था कि विद्रोह से पहले अंग्रेज शासकों को कानोंकान खबर नही हुई ।

देशी राजाओं और सेना के भीतर 'रोटी' और 'कमल' जो क्रमशः "आजादी" और "विद्रोह" के प्रतीक थे, पहुंचा कर गुप्त रूप से विद्रोह का सन्देश दिया गया था। सारे देश मे विद्रोह की तिथि 31 मई 1857 निश्चित की गई थी।

7. जबर्दस्त कठिनाइयो के बावजूद भारतीय सेना और जनता अंग्रेजो के साथ खूब लड़ी और बहादुरी के साथ लड़ी थी। यह संग्राम इतिहास की एक अपूर्व एव अविस्मरणीय घटना थी।

8. विद्रोही सैनिकों ने राजनैतिक प्रचारको की महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। गांवो मे जाकर सैनिको ने अंग्रेज शासको के प्रति घृणा पैदा की और उनमे राष्ट्रीय प्रेम जगाया था।

9. सन् सत्तावन का संघर्ष एक महान जन-क्रान्ति था। इस क्रांति मे जनता के सभी वर्गों के लोगो ने भाग लिया। उसका नेतृत्व सेना के हाथ में था। सैनिक और किसान उसके मूलाधार थे। सिपाहियो, किसानो और कुछ सामन्तो का संयुक्त मोर्चा था। उनका मूल उद्देश्य राजनीतिक था-अंग्रेजो को निकाल कर देश मे अपनी सत्ता कायम करना। इस राज्य क्रान्ति को यूरोप और एशिया की तमाम स्वाधीनता प्रेमी जनता की सहानुभूति प्राप्त थी। भारतीयो मे राष्ट्रवाद का जन्म हुआ।

10 सन् सत्तावन के विद्रोह को निर्दयता के साथ कुचल देने के बाद देशी जनता पर जिस प्रकार के भयंकर जुल्म ढाये गये और जगह-जगह जो लूटमार की गई थी, वह सब नादिर शाह को भी मात करनेवाली थी, इसके बावजूद क्रान्तिकारियो का हौसला पस्त नही हुआ, अपितु "सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है" —की उत्सर्ग भावना से आगे भी सशस्त्र क्रान्ति के मशाल को तेज करते रहे। सर्वत्र क्रान्ति के शोले भड़कते रहे।

11. विद्रोह के उद्देश्य

सन् 1857 के विद्रोह के सम्बन्ध मे डॉ रामविलास शर्मा का अभिमत है– "देश को आजाद करना, राष्ट्रीय एकता स्थापित करना– इन दो उद्देश्यो के साथ सिपाहियों का एक तीसरा उद्देश्य भी था– सामन्ती निरंकुशता खत्म करके लोकतांत्रिक आधार पर शासन का पुनर्गठन करना।"[1]

हिन्दुस्तान के सिपाही जिन उद्देश्यों के लिए लड रहे थे, उनकी सफलताओं के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता अत्यन्त आवश्यक थी। राष्ट्रीय एकता, स्वाधीनता और नयी लोक सत्ता– इन तीन मे एक भी उद्देश्य हिन्दू–मुस्लिम एकता के बिना चरितार्थ न होता था।

अंग्रेजो को सब से बडी असफलता यह मिली कि वे बकरीद त्योहार के अवसर पर शहर मे हिन्दू–मुस्लिम दगा न करा सके। उनके जासूसो ने हिन्दुओ के खिलाफ जेहाद का नारा लगाया, गोकुशी के सवाल को लेकर मुसलमानो को भडकाने की कोशिश की गयी। अंग्रेजो ने बाहर कुमक तैयार रखी, ताकि जेहादी बनकर भीतर के दगाइयो को मदद पहुँचाई जाये। लेकिन सिपाहियो के देश–प्रेम के आगे उनकी एक न चली।

शहर में डुग्गी पीटी गई– "खल्क खुदा की, मुल्क बादशाह का, हुक्म फ़ौज के बड़े सरदार का, जो कोई इस मौसम बकरीद मे या उसके आगे या पीछे गाय या बैल का बछडा या बछडी या भैंस या भैसा खुला या छिपाकर अपने घर में जिबह और कुरबानी करेगा, वह आदमी हुजूर जहाँपनाह का दुश्मन समझा जायगा और उसको मौत की सज़ा होगी।"[2]

12. राष्ट्रीय अपमान का बदला

भारतीय सैनिक प्लासी की लड़ाई को भूले न थे। सौ साल बाद युद्ध भूमि में शत्रु का रक्त बहाकर वे राष्ट्रीय अपमान का बदला ले रहे थे। उच्च

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा : धर्मयुग–10, 17 मई 1970 का अंक : विशेष लेख
2. असहर अब्बास रिज़वी : स्वतंत्र दिल्ली : पृष्ठ 114

उद्देश्य से प्रेरित होने के कारण सिपाहियों के मन में गोरी नस्ल या अंग्रेज जाति के प्रति कोई विद्वेष नहीं था। उन्होंने बहुत जगह अंग्रेज अफसरों को बचाने, उन्हें सकुशल भगा देने का प्रयत्न किया। मेरठ में 9 मई की शाम को ड्यूगफ के सिपाहियों ने उन्हें सूचित किया कि कल 10 मई इतवार को विद्रोह निश्चित रूप से होगा, वे भाग जायें। गफ ने ऊपर वाले अफसरों को सूचित किया, उन्होंने ध्यान नहीं दिया। दूसरे दिन सिपाही गफ को घोड़े पर बिठाकर, घोड़े की लगाम पकड़ कर उसे जबर्दस्ती लाइन बाहर कर आये। कैप्टिन क्रेगी और लेफ्टिनेंट मैकेंजी के परिवारों की रक्षा सिपाहियों ने की। "सचमुच मैं यह कह सकता हूँ कि हमारे आदमियों ने एक भी अफसर की जान नहीं ली।" सचाई यह थी कि 23 जून 1857 को प्लासी के युद्ध की सौ वीं सालगिरह के दिन अंग्रेज चिन्तित थे कि इस दिन हिन्दू-मुसलमान मिलकर उन पर टूट पड़ेंगे और इस विश्वास से हमला करेंगे कि भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक देशी-शासन स्थापित हो जाएगा।

स्वतंत्रता संग्राम की विफलता के कारण

1. क्रान्ति के लिए 31 मई 1857 तिथि सुनिश्चित थी, एक साथ सभी स्थानों पर अंग्रेजों पर आक्रमण करना था, परन्तु भाग्यवश क्रान्ति समय से पहले ही आक्रोश एवं उत्साह के कारण कुछ स्थानों पर शुरू हो गयी। एक साथ देशव्यापी न हो सकी। अंग्रेज सचेत हो गए और विद्रोह को कुचलने में सफल हो सके।

2 अंग्रेजों की सेना अनेक स्थानों पर पराजित हो गई और दिल्ली पर क्रान्तिकारियों का अधिकार हो गया। बहादुर शाह जफर को सम्राट

---

1. ड्यूगफ। ओल्ड मेमारीज : 1897 : पृष्ठ 39

घोषित कर दिया गया। कई महीनो तक उनका शासन चलता रहा, परन्तु समुद्री मार्गों पर अंग्रेजो का अधिकार होने से बाहर से अपार सेना और युद्ध सामग्री मंगवा ली गई थी और फिर हारे हुए राज्यो एवं नगरो को जीत लिया गया। अंग्रेजों की तुलना में क्रान्तिकारियो के पास आर्थिक और सैनिक साधन बहुत सीमित थे। इसके अतिरिक्त तार–डाक और रेलो की शाही व्यवस्था अंग्रेजों के हाथ मे थी, जो उनके लिए बड़ा वरदान सिद्ध हुआ।

3. दुर्भाग्य से काश्मीर, नेपाल, जींद, पटियाला, नाभा, जयपुर, हैदराबाद, ग्वालियर के राजाओ ने क्रान्तिकारियो का साथ न देकर, अंग्रेजो की हर सम्भव सहायता की।

अ) गोरखों और सिखो ने इस विद्रोह में ब्रिटिश सरकार का साथ दिया। यह एक खास बात है कि इस विद्रोह मे अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दू और मुसलमान बहुत कम शामिल हुए।

आ) अनेक देशी रियासतो और जागीरदारो ने 1857 में खुलकर अंग्रेजो का साथ दिया। प्रथम स्वाधीनता सग्राम के आरम्भिक दौर में अंग्रेज लगभग हताश हो चुके थे, लेकिन देशी रियासतो की मदद से ही उन्हें नया जीवन मिला।

पटियाला, जींद, ग्वालियर और हैदराबाद के राजाओ ने तो विद्रोह दबाने के लिए अंग्रेजो को अपनी फ़ौज, अस्त्र-शस्त्र और खाद्यान्न भी उपलब्ध कराये।

इ) तत्कालीन यूरोपीय इतिहासकारो ने ग्वालियर के प्रधान मंत्री दिनकर राव रजवाड़े और राजा जयाजीराव सिन्धिया तथा हैदराबाद के सालारजंग की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

ग्वालियर पर 18 दिनों तक लक्ष्मीबाई आदि क्रांतिकारियो का कब्जा रहा। 19 वें दिन अंग्रेज फ़ौज कामयाब हो पाई। अंग्रेजों ने पुनः सिन्धिया को तोहफ़े में ग्वालियर राज सौंप दिया।

4. क्रान्तिकारियो मे नाना साहिब, रानी लक्ष्मीबाई, तात्याटोपे को छोड़कर क्रान्ति के अन्य नेताओ को युद्ध-सचालन का कोई विशेष अनुभव नही था, जब कि अग्रेजी सेना की कमान बहुत ही अनुभवी एवं कुशल सेनापतियो के हाथ मे थी। क्रान्तिकारियो को अपना कोई सर्वोच्च कमाण्डर भी नही मिला था।

5. क्रान्तिकारी सेना मे अनुशासन और सगठन की कमी थी। बहादुरशाह की गिरफ्तारी के बाद यह कमजोरी उभर कर प्रकट हुई।

6. क्रान्तिकारी सेना तलवारो से लड रही थी, जब कि अग्रेजी सेना तोप आदि आधुनिक शस्त्रो से लड़ रही थी। क्रान्तिकारियो के पास आधुनिक अस्त्र-शस्त्र नहीं थे।

7. कम्पनी की सेना क्रान्तिकारी सेना से बहुत अधिक थी। विद्रोह के समय बाहर से समुद्री मार्ग से हजारो की सेना और युद्ध-सामग्री मगवाई गई थी। क्रान्तिकारियों को बाहर के देशो से इस प्रकार का प्रोत्साहन एव सहायता भी नही मिली थी। विद्रोह विशुद्ध रूप से देशी था। क्रान्तिकारी सेना अपने बल पर अंग्रेजो से लडी थी। उनमे स्वराज्य की भावना, आक्रोश, साहस, उत्साह, बहादुरी हिलोरे ले रही थी।

क्रान्ति का प्रभाव

1. 1857 की क्रान्ति बहुत निर्दयता के साथ कुचल दी गई, परन्तु इस क्रान्ति से ब्रिटिश शासन की जड़े हिल गईं। भारतीयो तथा अंग्रेज शासको के पारस्पकि सम्बन्धो एवं विश्वासो को जबर्दस्त धक्का लगा। गुरुमुख निहाल सिह ने इस सम्बन्ध में कहा–"इस क्रान्ति के प्रभाव अंग्रेज और भारतीय मस्तिष्क पर बहुत बुरे प्रभाव पडे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सौ वर्षों का शासन

समाप्त हो गया और उसके स्थान पर ब्रिटिश सम्राट और पार्लियामेण्ट का शासन आरम्भ हो गया। सन् 1858 मे ब्रिटिश संसद ने "सत्ता हस्तान्तरण और भारत के श्रेष्ठतर शासन हेतु कानून पास किया। इसके आधार पर भारत का शासन कम्पनी के हाथों से निकलकर ब्रिटिश क्राउन के अधीन हो गया ।

2. भारतीय सेना पुनर्गठित की गई। विभाजन करके शासन करने की नीति अपनायी गई। भारतीय सेना का सगठन धार्मिक तथा प्रान्तीय आधार पर किया गया, ताकि अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कोई सयुक्त मोर्चा न बन सके। हर तरह से भारतीय सेना को निर्बल बना दिया गया। तोपखाना ब्रिटिश सैनिको के अधीन रखा गया।

3. भारतीय मानसिकता को बदलने के उद्देश्य से पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार किया गया। इसी उद्देश्य से 1858 मे भारत मे विश्वविद्यालय स्थापित किये गए।

4. जिस असन्तोष ने 1857 की क्रान्ति को जन्म दिया था, वह पुन. भारतीयों मे पैदा न हो सका। इसके लिए 1861 के भारतीय परिषद अधिनियम के द्वारा भारतीय प्रशासन मे भारतीयो से सहयोग लेने की नीति को अपनाया गया। परिषदों का निर्माण किया गया। भारत मे वैधानिक विकास का सूत्र-पात हुआ और भारतीयो को धीरे-धीरे देश के शासन में भाग लेने का अधि-कार दिया जाने लगा।

5. पहली नवम्बर 1858 को सम्राज्ञी विक्टोरिया ने घोषणा की कि राजाओं के अधिकार तथा सम्मान की रक्षा की जायेगी और ब्रिटिश शासन द्वारा अपने क्षेत्र के विस्तार का कोई प्रयत्न नही किया जाएगा। इस प्रकार देशी नरेशो के प्रति मित्रतापूर्ण नीति अपनायी गई।

6. भारतीयो के सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप न करने की नीति की घोषणा की गई। लार्ड डलहौजी के सामाजिक सुधार सम्बन्धी नीति को रद्द कर दिया गया। परम्परागत व्यवस्था को बनाये रखने की नीति अपना ली गई।

7. आज संसार की क्रान्तिकारी शक्तियां सौ वर्ष पहले से बहुत अधिक समर्थ और संगठित हैं और साम्राज्यवाद की शक्तियां विश्रृंखलता और पतन की ओर जा रही हैं। विश्व मानवता की पूर्ण स्वाधीनता का दिन दूर नहीं है। इस परिस्थिति को उत्पन्न करने मे 1857 के अमर शहीदों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया था।

इस प्रकार ब्रिटिश शासन द्वारा अनेक सुधारात्मक कार्यक्रमों की घोषणा की गई, परन्तु इनसे शासन के प्रति भारतीयों में असन्तोष और राष्ट्रीयता की वह भावना समाप्त नहीं हो सकी, जिसने क्रान्ति को जन्म दिया था। असफल क्रान्ति ने दूसरा रूप धारण किया। भारतीय धर्म और संस्कृति का पुनर्जागरण आरम्भ हुआ। जातीय संगठन से भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना तीव्रतर हुई। फलत. 1885 मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। आगे भी हिंसात्मक कार्यक्रम चलते रहे।

वहाबी क्रान्ति एवं कूका विद्रोह

सन् 1857 की सशस्त्र क्रान्ति के बाद मुसलमानों के एक धार्मिक सम्प्रदाय ने जिसे वहाबी सम्प्रदाय भी कहते है, और नामधारी सिखों के धार्मिक सम्प्रदाय ने जिसे कूका-सम्प्रदाय भी कहते हैं अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की मशाल जलाये रखी। इस सम्बन्ध मे एक अंग्रेज इतिहासकार हण्टर का कथन है कि अंग्रेजों का इतना बड़ा विरोध 1857 के विद्रोह के बाद कभी न हुआ था। ये दोनों सम्प्रदाय अंग्रेजी राज से अप्रसन्न थे, और इन्होंने अंग्रेजों से असहयोग किया था। शुरू मे दोनों सम्प्रदाय धार्मिक रहे, परन्तु इन्होंने राजनीतिक रूप धारण कर लिया। दोनों का उद्देश्य एक था–अंग्रेजी शासन की जड़ों को उखाड़ फेंकना, किन्तु दोनों अलग–अलग ढंग से लड़े। 1857 मे विद्रोह के बाद वहाबी आन्दोलन बीस वर्षों तक ब्रिटिश सत्ता से मुठभेड़ लेता रहा। पटना वहाबी

गुप्त गतिविधियो का केन्द्र था, जब कि पजाब कूका–सम्प्रदाय का केन्द्र था। दोनो ने असहयोग आन्दोलन चलाया और विदेशी साधनो का बहिष्कार किया।

वहाबी आन्दोलन क्या है? उन्नीसवी शताब्दी के मुस्लिम इतिहास और राजनीति मे दो नेताओ का प्रमुख स्थान है– सय्यद अहमद और सर सय्यद अहमद खाँ। सैयद अहमद वहाबी–आन्दोलन के नेता थे। परन्तु दूसरे नेता सर सैयद खाँ अंग्रेजो के समर्थक थे। वहाबी नेता–रायबरेली के रहनेवाले थे। सैयद अहमद इस्लाम के एक बडे पीर माने जाते थे। मुसलमान उन्हे पूजने लगे। उनके अन्ध भक्त हो गए थे। पंजाब के विरुद्ध जिहाद के लिए सैयद अहमद की यात्रा के समय कन्धार एव अफगानिस्तान मे एक लाख सेना तैयार हो गयी थी।

सन् 1862 में अग्रेजो और वहबियो के बीच भयानक युद्ध हुआ। बालाकोट मे हुए युद्ध मे संय्यद अहमद और शाह मोहम्मद मारे गए। विद्रोही पीछे धकेल दिये गए किन्तु वहाबी आन्दोलम 1877 तक वराबर ब्रिटिश सत्ता से मुठभेड़ लेता रहा। विद्रोह सब मुसलमानो का कर्तव्य है-इस कथन को बहुत सुन्दर और सार्वजनिक ढग से इस्लामी कानून का रूप दे दिया था।

उन्नीसवो सदी के उत्तरार्ध मे बहुत से वहाबी क्रान्तिकारियो पर देशद्रोह और महारानी के विरुद्ध युद्ध करने सम्बन्धी मुकदमे चलाये गए। और उनको आजीवन कारागार की कठोर सजा दी गई। कुछ को काला पानी भेजा गया। सरकारी तन्त्र विद्रोह के विरुद्ध प्रचारक करता रहा और मक्का के मुफ्ती भी सरकारी इशारे पर इनकी निन्दा करने लगे। सन् 1850 से 1863 के बीच 20 ऐसे अभियान हुए जिन मे 60,000 सेना मारी गयी थी।

कूका–सम्प्रदाय के सस्थापक गुरु रामसिंह कूका थे जिनका जन्म लुधियाने के भैंजो नामक स्थान पर हुआ था। रामसिंह एक धार्मिक नेता और राजीतिक नेता थे। पजाब की जनता श्रद्धा–भकित के साथ रामसिंह की पूजा करती थी। महाराष्ट्र के सन्त रामदास की प्रेरणा और मार्ग दर्शन से इस सम्प्रदाय को धीरे–

धीरे राजनीतिक स्वतंत्रता की ओर मोड दिया और लक्ष्य बनाया फिरंगियो के विरुद्ध विद्रोह कर उन्हे निकाल बाहर करना चाहिए, ताकि देश आजाद हो सके। असहयोग आन्दोलन चलाया और रेल–डाक–तार इत्यादि विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार करवाया। समानान्तर व्यवस्था चलाने का प्रयास किया।

1. पाँच वर्षो तक गुप्त रूप से अंग्रेजो से युद्ध की तैयारी की गई। अस्त्र–शस्त्र इकट्ठे किये गए। कूका–सेना गठित की गई। गुरु रामसिंह ने सारे पजाब को 22 हिस्सो में बांटा और प्रत्येक क्षेत्र के लिए अपना एक अधिकारी नियुक्त किया। विद्रोह के लिए एक दिन निश्चित किये जाने वाला था, परन्तु इस बीच :–

2. 13 जनवरी 1872 को एक सौ कूकाओ ने मालेर कोटला राज्य पर आक्रमण कर दिया। कूकाओं की टुकड़ी पराजित हुई और विद्रोह शान्त हो गया किन्तु मालेर कोटला काण्ड यही खत्म नही हुआ। पंजाब भर के नामधारी–सम्प्रदाय को आतंकित करने का सरकारी दमन कार्यक्रम चलाया गया। पजाब भर के नामधारी नेता एक रात मे एकाएक पकड लिये गए और कुछ रंगून और कुछ अण्डमान भेज दिये गए। गुरु रामसिंह को गिरफ्तार करके रंगून भेजा गया। वही इस महान् वीर की मृत्यु हो गई।

3 यह उल्लेखनीय है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन–काल में क्रान्तिकारियो की जिस बर्बरता और निर्ममता के साथ हत्या की गई थी, उसी अमानुषिकता के साथ रानी विक्टोरिया के सभ्य शासन मे कूका–विद्रोहियों की हत्या की गई थी। 49 कूका विद्रोहियो को तोप से बांधकर कोवन ने उड़वा दिया। 50 वाँ कूका पहरे से छूटकर भागा और उसने कोवन की दाढ़ी पकड़कर उस पर हमला करने की कोशिश की, पर मौजूद देशी अफसरों ने उसे वही तलवार से फौरन काट डाला। 16 कैदियों को फाँसी पर लटका दिया गया।

सन् 1857 के विद्रोह मे सिख आमतौर पर अंग्रेजो के साथ थे। जैसा कि सर गोकुलचन्द नारंग ने लिखा है : "दिल्ली में मारे गये नवें गुरु

का नाम लेकर और औरंगजेब के उत्तराधिकारियो का उस मौत का बदला लेने की अपीलें निकाल कर सिखो को उकसाने की चाल चली गई ।"[1]

सिखो का अंग्रेज भक्त-वर्ग अपने भाइयो का कत्ले आम होते और वह भी अंग्रेजो के हाथो होते देखकर अचम्भे मे पड गया। सिखो के शान्तिमय जीवन मे एक लहर आयी– सिर्फ एक लहर ।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्त रामसिंह के सम्बन्ध में लिखते हैं "इसमे सन्देह नही कि रामसिंह धार्मिक रूप से चेलो को संगठित करके अपने देश को स्वतत्र कराना चाहते थे। यह भी सही है कि उनके विचार बिलकुल परिपक्व नही थे और न वह जानते थे कि हमे स्वतंत्र होकर क्या करना है। पर इस सम्बन्ध में उन्होंने जो प्रयास किये, वह कभी भुलाए नही जा सकते और उनकी कहानी हमेशा हमे अनुप्रेरणा देती रहेगी।"[2]

क्रान्ति की छुटपुट घटनाएँ

वहाबी क्रान्ति तथा कूका–विद्रोह की पराजय के बाद भी आजादी की लड़ाई की आग बुझी नही। क्रान्तिकारियो का उद्देश्य था भारतीय स्वतत्रता। शासन पर सशस्त्र अधिकार करना था। 1871–72 में मेवासिंह और हीरासिंह तथा 64 अन्य क्रान्तिकारियो के नेतृत्व मे पजाब मे विद्रोह फूटा। उन क्रान्तिकारियों को तोपो के गोलो से उड़ा दिया गया था।

वासुदेव बलवन्त फड़के

1878–79 में वासुदेव बलवन्त फडके ने क्रान्तिकारी आन्दोलन की शुरुआत कर भारत को गणराज्य घोषित किया। उन्नीसवीं सदी में अंग्रेजो के

---

1. सर गोकुलचन्द नारग : पृष्ठ सं. 35
2. मन्मथनाथ गुप्त : वे अमर क्रान्तिकारी : "

विरुद्ध संघर्ष करनेवाले में वासुदेव बलवन्त फड़के का व्यक्तित्व सर्वाधिक विलक्षण था। उनका जन्म 1845 में बम्बई के निकट कुलाबा जिले के मध्यम वर्ग के परिवार में हुआ था। वे सेना के एकाउट्स विभाग में सरकारी नौकर थे, जहाँ उन्होंने 15 वर्ष तक काम किया।

वासुदेव बलवन्त फड़के

1876–77 मे पश्चिम भारत मे पड़े अकाल में जनता ने बहुत कष्ट झेला। श्री फड़के इस नतीजे पर पहुँचे कि ये कष्ट विदेशियों के कारण हैं। उन्होंने सशस्त्र युद्ध के जरिये अंग्रेजो का शासन समाप्त करने की शपथ ली। उन्होने पिछड़ी जातियो और किसानो को संगठित किया और डकैती द्वारा धन एकत्र करने की योजना बनायी। जनता की हमदर्दी उनके साथ थी ही क्योकि वे जन साधारण के बीच लोकप्रिय थे। अतः पुलिस उन्हें पकड़ नही पाती थी। सरकार ने उन्हे पकड़वाने के लिए नकद इनाम की घोषणा भी की थी, तो भी वे पकडे नही गए। वे अंग्रेजों पर आक्रमण कर पाते, इससे पूर्व 21 जुलाई 1879 को उन्हें सोते समय पकड़ लिया गया।

महारानी विक्टोरिया के विरुद्ध युद्ध करने के आरोप में उन पर मुकदमा चलाया गया और आजीवन देश निकाले की सजा सुना दी गयी। 13 अक्तूबर 1879 को जेल से निकल भागे, किन्तु फिर पकड़े गये। अगस्त 1882 से उन्होंने खाना–पीना लगभग छोड़–सा दिया। उनकी दशा बिगड़ती गयी और 17 फरवरी 1883 को उनकी मृत्यु हो गयी।

1885 में बम्बई में भारतीय कांग्रेस की स्थापना एक भारतीय ईसाई उमेशचन्द्र बेनर्जी की अध्यक्षता में हुई। 1891 मे भारत सुदूर पूर्व मणिपुर में खोमजोग के मैदान में वीर टिकेन्द्रजीत तथा जनरल थागा (नागा) के नेतृत्व में मणिपुर की स्वतंत्रता के लिए घमासान लड़ाई हुई। इन दोनो नेताओं को 13 अगस्त

1891 को फांसी पर लटका दिया गया। हजारो मणिपुरी स्वतंत्रता–सेनानी वीरगति को प्राप्त हुए।

महाराष्ट्र मे उन्नीसवी सदी के अन्तिम दशको मे गुप्त क्रान्तिकारी समितियाँ बनी, जिनमे युवको को राष्ट्रीयता की शिक्षा तथा सशस्त्र प्रशिक्षण दिया जाता था। पूना के निकट एक छोटी रियासत के दीवान बाबा ठाकुर साहब ने 1898 मे एक गुप्त समिति बनाई थी। अरविन्द घोष इस समिति से सम्बद्ध थे।

लोकमान्य तिलक को पहली बार जो राजनैतिक सजा हुई, वह क्रान्तिकारी विचारो के कारण ही हुई थी। अंग्रेज अफसरो को मारकर फांसी पानेवाले महाराष्ट्र के तीन क्रान्तिकारी चाफेकर बन्धुओ के वे प्रेरणा–स्रोत थे। दूसरी बार तिलक को इस लिए सजा मिली कि उन्होंने क्रान्तिकारी शहीद नवयुवक खुदीराम की प्रशंसा अपनी पत्रिका के माध्यम से की थी। 1892 में महाराष्ट्र मे पंजाब केसरी लोकमान्य तिलक ने गणेश–उत्सव तथा शिवाजी जन्मोत्सव की परम्परा डालकर जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाई थी। 1895 मे कुछ क्रान्तिकारियो ने चाफेकर संघ की स्थापना की। अन्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी थे– श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर एव गणेश सावरकर तथा चाफेकर बन्धु। कुछ अंग्रेज अफसरो की हत्या के अपराध मे तीन चाफेकर बन्धुओ की अलग–अलग तिथियो पर तथा महादेव रानडे नामक क्रान्तिकारी को 12 मई 1898 को फांसी दे दी गई।

अखिल भारतीय स्वतन्त्रता सेनानी संगठन के कार्यकारी अध्यक्ष श्री शीलभद्रयाजी, मासद के अनुसार क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव प्रकट रूप से 1897 में हुआ। दामोदर हरि चाफेकर ने पिस्तौल से रैण्ड पर 22 जून 1897 को रात में 11-30 बजे वार किया और 3 जुलाई 1897 को वह चल बसा। उसी समय महादेव विनायक रानडे ने लेफ्टीनेन्ट आयस्टी को अपनी पिस्तौल का निशाना बनाया। इस घटना के समय दामोदर

दामोदर हरि चाफेकर

के भाई बालकृष्ण भी उनके साथ थे। दामोदर 9 अगस्त को पकड़े गए और 18 अप्रैल 1898 को उन्हे यरवदा जेल मे फांसी पर लटका दिया गया। बालकृष्ण हरि चाफेकर 1 दिसम्बर, 1898 को हैदराबाद मे पकडे गए और उन्हे 12 मार्च, 1899 को फांसी की सजा दी गयी।

कहा जाता है कि पूना मे प्लेग कमिश्नर रेण्ड तथा लेफ्टीनेण्ट आयस्टी की हत्या मे श्यामजी कृष्ण का हाथ था। इनका कथन था– "प्राण देने से पूर्व प्राण लो" सावरकर बन्धुओ ने "अभिनव भारत समिति" की स्थापना की थी। गणेश सावरकर की सजा का बदला जेक्सन की हत्या करके लिया गया।

अरविन्द घोष

1903 मे बगाल के क्रान्तिकारियो ने "अनुशीलन समिति" की स्थापना की। इसकी अनेक स्थानो पर शाखाएँ स्थापित की गईं। इस समिति मे सिस्टर निवेदिता और अरविन्द घोष भी थे। अरविन्द की दृष्टि भारतीय सैनिको पर थी। उन्होने 18 अगस्त 1907 को "युगान्तर" मे लिखा था "विदेशी ताकतो को भारतीय जनता मे से अपने अधिकांश सैनिको की भर्ती करनी पडती है। अतएव यदि क्रान्तिकारी गुप्त रूप से इन देशी सैनिको से स्वाधीनता का सन्देश फैलाएं तो बहुत अच्छा कार्य कर लिया जाएगा।" अपने अन्य लेख मे सन्देश दिया– "देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना जीवन अर्पण कर दो, परन्तु इससे पूर्व कम से कम एक अग्रेज का जीवन समाप्त कर दो।" उसी समिति के कुछ सदस्यो ने 1908 मे क्रान्तिकारी सोशलिस्ट पार्टी बनाई थी। इसके बाद

बंगाल में आजादी की लडाई को तेज करने के लिए "युगान्तर पार्टी" की स्थापना हुई।

देश मे क्रान्तिकारी नवयुवको का एक दल पैदा हो गया था जो पूर्ण स्वतंत्रता चाहता था और सरकारी दमन का जवाब बम के गोलो से देने की तैयारी कर रहा था। 1905-1906 का बगाल का स्वदेशी आन्दोलन और 1908 से 1912 तक क्रान्तिकारियो की हिंसात्मक उपायो से साम्राज्यवाद को खत्म करने की अनेक कोशिशें हुईं।

खुदीराम बोस

11 अगस्त 1908 को मुजफ्फरपुर (बिहार) जेल मे खुदीराम बोस को फांसी दे दी गई। बहुत कम उम्र मे फांसी के तख्ते पर चढ़ गए थे और फांसी पर चढते समय उनके गले मे गीता की एक प्रति लटक रही थी। उन दिनो गीता क्रान्तिकारियों के लिए अनुप्रेरक शक्ति के रूप मे काम कर रही थी। इस घटना के बाद बारीन्द्र, कन्हैयालाल, कृष्णगोपाल कर्वे, विनायक देशपाण्डेय, आदि क्रान्तिकारियो को विभिन्न जेलो में फांसी दे दी गई। 1912 में क्रान्तिकारियो को विजय मिली तथा बग-भंग समाप्त कर बंगाल को पुन. एक कर दिया गया।

बिपिनचन्द्र पाल ने मद्रास का दौरा किया किन्तु उनको कैद कर लिया गया। इससे मद्रास के नवयुवको मे हलचल मच गई। उनके स्वागत को भग करने का प्रयत्न, उनकी गिरफ्तारियो के द्वारा किया गया। फलस्वरूप टिनेवली के मजिस्ट्रेट को गोली से उड़ा दिया गया।

18 अगस्त 1909 को मदनलाल ढींगरा को फांसी दी गई। बर्लिन के सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता आगुस्ट बेबेल के पत्र "फोरवार्ड्स" (अग्रगामी) और पेरिस के सुप्रसिद्ध पत्र "ल्युमानिते" (मानवता) मे भारतीय शहीद

मदनलाल ढींगरा के प्रशंसात्मक लेख प्रकाशित हुए। निस्सन्देह मदनलाल की शहादत भारतीय इतिहास की एक उज्ज्वल थाती है।

1912 में राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लायी गई। 23 दिसम्बर को चाँदनी चौक में लार्ड हार्डिन्ज पर बम फेंका गया। इस सिलसिले मे अमीर चन्द, बालमुकुद, अवधबिहारी तथा बसन्त विश्वास को 8 मई 1915 को फाँसी दे दी गई।

सशस्त्र क्रान्ति की ज्वालाएँ यहीं बुझी नहीं, बल्कि विदेशों में भड़क उठी। सशस्त्र क्रान्ति की योजनाएँ अब विदेशो में बनने लगी, जो "ग़दरपार्टी" के नाम से प्रसिद्ध है।

1857-1915 की प्रमुख घटनाएँ

देश के दूसरे भागो मे भी 1857–58 के बीच अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह हुए। अंग्रेजो के विरुद्ध जो जगह–जगह सैनिक विद्रोह हुए, उनमे आपसी ताल-मेल का अभाव था। इस कारण अंग्रेजो ने पुनः हिन्दुस्तान पर कब्जा जमा लिया। प्रमुख घटनाओं का विवरण इस प्रकार है :—

2 फरवरी	1857	:	ब्रह्मपुर मे सेना की 19 वी टुकड़ी द्वारा विद्रोह।
10 मई	1857	:	मेरठ मे सिपाहियों का विद्रोह।
11 से 30 मई	1857	:	दिल्ली, फिरोजपुर, बम्बई, अलीगढ़, इटावा, बुलन्दशहर, नासिराबाद, बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर और उत्तर प्रदेश के दूसरे नगरो मे विद्रोह।
11 मई	1857	:	बहादुर शाह ज़फ़र को भारत का सम्राट घोषित किया गया।
जून	1857	:	ग्वालियर, भरतपुर, झाँसी, इलाहाबाद, फजाबाद, सुल्तानपुर, कानपुर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, बिहार

के समतल मैदान, राजपूताना, मध्यभारत और बंगाल के कुछ भागों में सेना द्वारा विद्रोह।

जुलाई 1857 इन्दौर, महू, सागर तथा पंजाब के झेलम– स्यालकोट में विद्रोह।

अगस्त 1857 : नर्मदा और सागर जिलों में जन–विद्रोह।

20 सितम्बर 1857 : अंग्रेजों द्वारा दिल्ली पर पुन. कब्जा, मध्यभारत में विद्रोह का दूसरा दौर।

अक्तूबर 1857 : कोटा राज्य में विद्रोह।

नवम्बर 1857 : कानपुर के बाहर जनरल विंडहम को देशभक्त सिपाहियों ने परास्त कर दिया।

दिसम्बर 1857 कानपुर में अंग्रेजी फौज कामयाब और तात्या टोपे कानपुर निकल गए।

मार्च 1858 : लखनऊ पर अंग्रेजों का पुन कब्जा।

अप्रैल 1858 : झांसी पर अंग्रेजों का कब्जा। बिहार में कुंवरसिंह के नेतृत्व में पुनः सफल विद्रोह।

मई 1858 : कालपी, बरेली, जगदीशपुर पर अंग्रेजों का कब्जा; रूहेलखंड में विद्रोही सिपाहियों द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध छापामार युद्ध।

जुलाई से दिसम्बर 1858 : भारत पर अंग्रेजों का पुन. अधिकार।

1858–1915 : विविध क्रान्तिकारी घटनाएं।

चतुर्थ अध्याय

प्रवासी भारतीयों द्वारा स्वाधीनता-संग्राम

(सन् 1909 से 1920 तक)

विषय क्रम

1. ग़दरपार्टी की स्थापना

2. क्रान्ति का अग्रदूत : ग़दर अखबार

3. गदर के लिए स्वदेश प्रस्थान

4. सिंगापुर में विजय

5. बर्लिन में क्रान्तिकारियों का केन्द्र

6. काबुल में कार्यकारी सरकार की स्थापना

7. अरब में क्रान्ति की योजना

8. विदेशो मे जिन्होने आजादी का अलख जगाया था :

    (क) गदरपार्टी के नेता डॉ. लाला हरदयाल

    (ख) कर्तार सिंह सराभा

    (ग) श्यामजी कृष्ण वर्मा

    (घ) मदनलाल धींगरा

    (ङ) वीर सावरकर

9. ग़दर-आन्दोलन की विफलता के मुख्य कारण

10. गदर आन्दोलन की विशेषताएँ

11. होमरूल-आन्दोलन

12. क्रान्तिकारियों के प्रेरणा स्रोत : तिलक

13. हृदय-विदारक नर-संहार : जलियाँवालाबाग़

ग़दरपार्टी की स्थापना

भारतीय स्वाधीनता–संग्राम की दृष्टि से दोनो विश्व महायुद्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे हैं। प्रथम विश्वयुद्ध 28 जुलाई 1914 से 11 नवम्बर 1918 तक और द्वितीय विश्व महायुद्ध 1 सितम्बर 1939 से 14 अगस्त 1945 तक चला। इन दोनो महायुद्धों मे ब्रिटेन बुरी तरह उलझा हुआ था। क्रान्तिकारियों ने इन अवसरो का पूरा लाभ उठाकर अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने की योजना बनायी थी। सन् सत्तावन की सशस्त्र क्रान्ति देश के भीतर हुई थी परन्तु इस बार दोनो विश्व युद्धो के समय सशस्त्र आक्रमण की योजना विदेशों में बनायी गई थी। क्रान्तिकारियो की जागरूकता, सक्रियता, दूरदर्शिता, अदम्य साहस, वीरता एव अनुपम देश भक्ति का परिचय मिलता है। प्रथम विश्वयुद्ध के समय लाला हरदयाल के नेतृत्व में "ग़दर पार्टी" की स्थापना और द्वितीय विश्वयुद्ध के समय सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे आजाद हिन्द फौज की स्थापना विदेशों में ही हुई थी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय अफ़गानिस्तान मे और द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जापान में कार्यकारी सरकारो की स्थापना हुई थी। सशस्त्र क्रान्ति की सब से बड़ी उपलब्धि यह थी कि अहिंसावादी महात्मा गांधी जी को भी 1942 में अपने "सशस्त्र क्रान्ति" के मार्ग पर ले आये थे और तब गांधी जी ने देश को "करो या मरो" का आदेश दिया था। फलतः देशव्यापी सशस्त्र क्रान्ति हुई थी।

ब्रिटिश सरकार की दमन नीति, साम्राज्यवादी शोषण वृत्ति और कांग्रेस की ढुलमुल नीति के कारण भारतीयों में असन्तोष व्याप्त हो गया था। राष्ट्रवादी दो वर्गों में बंट गये थे : एक उदारवादी और दूसरा उग्रवादी। उग्रवादी भी दो खेमो में विभक्त हो गए : एक वे जो सक्रिय प्रतिरोध द्वारा मातृभूमि को स्वतंत्र करना चाहते थे, परन्तु उनका मार्ग शान्तिपूर्ण संघर्ष का था। इसके नेता गोपालकृष्ण गोखले थे। दूसरे वे शान्ति पूर्ण उपायों के स्थान

पर सशस्त्र संघर्ष मे विश्वास करते थे । इनके नेता बाल गंगाधर तिलक थे । इन्हे आतंकवादी या क्रान्तिकारी के नाम से पुकारा जाता था ।

क्रान्तिकारियों का मुख्य उद्देश्य था मातृभूमि की स्वतंत्रता, आतंक पैदा करके अंग्रेजो को भारत से भगाना । उनकी गुप्त गतिविधियो मे सरकारी खजानो की लूट, डकैती, बड़े–बडे अफसरो की हत्या, सरकारी भवनो पर बम फेंकना, रेलवे की पटरियो को उखाड फेकना, आदि कार्यक्रम रहे ।

यह अजीब सयोग की बात है कि दोनो विश्व महायुद्धो मे जिन देशो को क्रान्तिकारियो की मदद प्राप्त थी, वे देश पराजित हो गए और क्रान्तिकारियो की सशस्त्र क्रान्ति विफल हो गयी । यदि ब्रिटेन विश्वयुद्ध में पराजित हुआ होता तो स्वतंत्र भारत का इतिहास कुछ और ही हुआ होता । इस बात का कोई महत्व नही कि सफलता मिली है या नही, अपितु महत्व तो इस बात का है कि स्वाधीनता की लड़ाई किस बहादुरी के साथ लड़ी गई और उसी मार्ग पर अपनी शहादत देकर आगे आनेवाले पीढियो के लिए किस प्रकार क्रान्तिकारी प्रेरणा के स्रोत बने ।

इस कालखण्ड की क्रान्ति–चेतना एवं सघर्ष को सुविधा के लिए हम दो भागो मे विभाजित करते है :—

1 प्रवासी भारतीयो द्वारा स्वाधीनता सग्राम : 1913 से 1920 तक

2 देशी क्रान्तिकारियो द्वारा आतक–सग्राम : 1920 से 1939 तक

भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के क्रान्तिकारियो, विशेषतः प्रवासी भारतीय क्रान्तिकारियो ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । प्रसिद्ध बागी भगवानसिंह सन् 1712 के अन्त मे कनाडा और सन् 1913 मे लाला हरदयाल ने अमेरिका के प्रवासियो के दिलो में विद्रोह की चिनगारी फूंक दी थी । अमेरिका में प्रवासी भारतीयो ने "इण्डियन इण्डिपेन्डेन्स लीग" तथा "हिन्दू

ऐसोसियेशन आफ अमरीका" की स्थापना की । उन दिनों प्रायः गुरुद्वारों मे प्रति सप्ताह बैठकें होती थी । उन्हें बताया जाता था कि प्रत्येक भारतीय परस्पर जब कभी मिलें तो आपस मे "वन्देमातरम्" कहें । कनाडा-अमेरिका के भारतीयो के राष्ट्रीय उभार ने "गदर पार्टी" को जन्म दिया था ।

1913 मे सानफ्रान्सिस्को मे लाला हरदयाल के नेतृत्व मे 'गदर पार्टी' की स्थापना की गई । इस नयी पार्टी के अध्यक्ष सोहनसिंह भकना, सचिव लाला हरदयाल और कोषाध्यक्ष प. काशीराम बनाये गए । यह निश्चय हुआ कि सशस्त्र सैनिक भर्ती किये जाएँ तथा ब्रिटिश इण्डियन आर्मी मे बगावत कराकर प्रथम विश्वयुद्ध के समय मे भारत को आज़ाद करने के लिए सशस्त्र संग्राम शुरू कर दिया जाए । इस गदर पार्टी की शाखाएँ जर्मनी, जापान, शंघाई, हांगकांग, सिंगापुर, बर्मा, कनाडा आदि देशो में स्थापित की गई । इस प्रकार गदर पार्टी आन्दोलन सच्चे अर्थो मे राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन था । यह पार्टी पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष थी । कहा जाता है कि गदर पार्टी के सदस्यो की सख्या दस हजार से अधिक थी । गदर पार्टी का आदर्श था– आजादी तथा समानता । प्रत्येक सदस्य का परस्पर जातीय सम्बन्ध होगा, न कि धार्मिक । प्रत्येक भारतीय, भारतीय होता हुआ और प्रत्येक मनुष्य मनुष्य के नाते इस का सदस्य बना रहेगा । "वन्देमातरम्" राष्ट्रीय अभिवादन तथा राष्ट्रीय गीत बन गया । पार्टी का सामान्य लक्ष्य ससार के किसी भी भाग मे, जहाँ कही पराधीनता के विरुद्ध छिड़े, गदरपार्टी के सैनिक का कर्तव्य होगा कि वह आज़ादी तथा समानता के समर्थको को तन, मन, धन से सहायता करे और मुख्य लक्ष्य था– भारत मे से अंग्रेजी राज्य खत्म करके पंचायती राज्य कायम करना । भारत मे जनवादी राज्य स्थापित करने के पीछे अमेरिका का आदर्श था, जिनका प्रभाव ग्रहण करके पचायती राज्य का लक्ष्य निश्चित किया गया था । इस प्रकार गदर पार्टी आन्दोलन सच्चे अर्थों मे राष्ट्रीय क्रान्तिकारी आन्दोलन था । यह पार्टी पूर्णत. धर्मनिरपेक्ष थी ।

ग़दर पार्टी आन्दोलन की पृष्ठभूमि मे मुख्य बात यह थी कि 'अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो से लाभ उठाना । इसके दो मुख्य पहलू थे– एक तो भारत मे राज्य कर रही विदेशी सरकार पर उस समय अन्तिम चोट करना,

जब कि वह किसी बड़ी शक्ति के साथ युद्ध मे उलझी हो । दूसरे, अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेज विरोधी शक्तियों की सहायता प्राप्त करना ।" इस आन्दोलन को जर्मनी को बड़ी सहानुभूति प्राप्त थी, क्योंकि अंग्रेज प्रवासी क्रान्तिकारियो और जर्मनी दोनो के शत्रु थे ।

क्रान्ति का अग्रदूत : ग़दर अखबार

गदर पार्टी की स्थापना के बाद अगला क़दम था, "गदर" अखबार का प्रकाशन । 1 नवम्बर 1913 को गदर का पहला अंक प्रकाशित हुआ । क्रान्ति के आन्दोलन को व्यापक करने में इस अखबार ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । इसके जन्मदाता लाला हरदयाल थे । यह अखबार प्रति सप्ताह उर्दू, हिन्दी, पंजाबी और गुजराती भाषाओ में प्रकाशित होता था । पाठकों की संख्या हज़ारों में थी । अनेक देशो को मुफ्त भेजा जाता था । अखबार अंग्रेज विरोधी और स्वर 'हिंसा' था । उसकी प्रत्येक पंक्ति से विद्रोह की बू आती थी । अखबार का मूलमंत्र था– "अंग्रेजों को भारत से खदेड़ देना । इस प्रकार "गदर" ने प्रवासी भारतीयों मे विद्रोह की आग भड़का दी । फलतः अमेरिका सरकार ने ब्रिटिश सरकार के दबाव में आकर लाला हरदयाल को निर्वासित कर दिया । तदुपरान्त भाई सन्तों सिंह गदर पार्टी के महामंत्री बने और आन्दोलन के कार्यक्रम को आगे बढ़ाया । पार्टी के कार्यों में सोहनसिंह भकना ने अमेरिका आने से पहले जिन्होने भारत में कूका–आन्दोलन में बारह वर्षों तक सक्रिय रूप से कार्य किया था, महत्वपूर्ण योगदान दिया था ।

"ग़दर" की अपील

लाला हरदयाल द्वारा "ग़दर" के 18 अगस्त 1914 के अंक मे प्रकाशित की गई एक अपील द्रष्टव्य है :–

1. क्रान्ति साहित्य को वितरित करो, सशस्त्र और नि.शस्त्र दोनो प्रकार की क्रान्ति एक साथ हो।

2. अंग्रेजी बैंको मे जमाधन तुरन्त निकालो, भारतीय सेना को भड़काओ कि वह अंग्रेजो पर पीछे से हमला करे।

इसी अंक में एक विज्ञापन छपा था :–

आवश्यकता है :–

1. ग़दर पार्टी के लिए वीर सैनिको की

(अ)	वेतन	:	मृत्यु
(आ)	पुरस्कार	:	शहादत
(इ)	पेंशन	:	स्वाधीनता
(ई)	युद्ध–क्षेत्र	:	भारत

इस समाचार से यह भली भान्ति स्पष्ट हो जाता है कि प्रवासी भारतीयो मे किस प्रकार की उग्रता एवं मातृभूमि–प्रेम–भावना व्याप्त थी।

ग़दर के लिए स्वदेश प्रस्थान

प्रथम महायुद्ध का विस्फोट होते ही "ग़दर पार्टी" की गतिविधियाँ तेज हो गयी थी। 4 अगस्त 1914 को ब्रिटेन महायुद्ध में शामिल हो गया। इधर "ग़दर" अखबार के युद्ध विशेषाक निकाले गए। युद्ध का बिगुल बजाया गया। प्रवासी भारतीयो को भारत जाकर अंग्रेजो के विरुद्ध स्वाधीनता-संग्राम मे भाग लेने के लिए प्रेरित किया गया। ग़दर पार्टी के आठ हज़ार सदस्य अमेरिका, कनाडा आदि देशो से "कामागाटा मारू", "निशानमारू" "मशीमामारू", "तोशामारू", एस. एस. कोरिया इत्यादि जहाजो से 1914 और

1915 मे भारत लौटे । गदर पार्टी के क्रान्तिवीर कर्तारसिह सराभा, नेता लाला हरदयाल के फ़रमान के इस गीत को गाते हुए सानफ्रासिस्को से चले थे .

चलो चलिए देश नू युद्ध करना ।
य हो आखिरो बचन फरमान हो गए ॥

30 सितम्बर 1914 को बजबज मे कनाडा से लौटे "कामा माटामारू" जहाज के सिख स्वतन्त्रता सेनानियो ने अग्रेज सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया । उनमे से अनेक वीरगति को प्राप्त हुए ।

"तोशामारू" जहाज रगून होता हुआ 29 अक्तूबर 1914 को कलकत्ता पहुंचा । विद्रोह सम्बन्धी भेद खुल जाने से मुख्य क्रान्तिकारी नेता जहाज से उतरते ही गिरफ्तार कर लिये गये । गदर पार्टी के प्रधान श्री सोहनसिह भकना की गिरफ्तारी से क्रान्तिकारी आन्दोलन को बडा धक्का लगा ।

भारत लौटे अन्य प्रवासी क्रान्तिकारियो ने रास बिहारी बोस और सचीन्द्रनाथ सान्याल से सम्पर्क किया । फिर इन क्रान्तिकारियो ने उत्तर भारत की अनेक छावनियो मे सैनिको से सम्पर्क करके क्रान्ति करवाने की कोशिश की । फिरोजपुर और मियामीर छावनी के सैनिक विद्रोह के लिए तैयार हो गए थे, परन्तु सारे भारत मे 19 फरवरी 1915 को शुरू होने वाला यह विद्रोह भेद खुल जाने के कारण विफल हो गया । अनेक क्रान्तिकारी पकड़े गए और बहुतों को फांसी हो गई ।

लाला हरदयाल के फ़रमान से प्रेरित होकर ग़दरपार्टी ने 1915 मे थाईलैड मे 'पकाह' के पास जगल मे दो दर्जन प्रशिक्षको द्वारा भारतीयो को सैनिक प्रशिक्षण देने की योजना बनाई थी और हथियार भी भेजे थे। प जगतराम और हरनाम सिह, कहरीसहरी ने बर्मा मे मिलिट्री पुलिस को विद्रोह मे शामिल करने का प्रयास किया था ।

सिंगापुर में विजय

"गदरपार्टी" के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता प परमानन्द के जोशीले भाषणो से सिंगापुर मे 14 फरवरी 1715 की सैनिक क्रान्ति हुई थी। इस क्रान्ति मे तीन हजार भारतीय सैनिको ने वहाँ के सब अंग्रेज सैनिकों को मारकर सिंगापुर के किले पर कब्जा कर लिया। दो महीने 21 दिन के लिए शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड कर फेंक दिया और सिंगापुर मे भारतीय झण्डा फहरा दिया। 14 फरवरी 1915 को घटित विद्रोह के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि सिंगापुर की जब रेजिमेण्ट के सैनिक एलेक्जेंड्रा बैरक मे शस्त्र और गोला बारूद ट्रको पर रख रहे थे, तब सिपाही इस्माइल खाँ ने गोली दाग कर विद्रोह का सङ्केत दिया। विद्रोहियो ने ट्रको और उनमे रखे सामान पर कब्जा कर लिया और उसके रक्षको को मार डाला। जमकर मुठभेड हुई। भारतीय विद्रोहियो ने सब से पहले नागरिक बैरक मे नजरबन्द लगभग 300 जर्मन युद्ध बन्दियो को रिहा करा दिया। इसके बाद भारतीय विद्रोहियो ने कर्नल के बंगले पर आक्रमण कर दिया। वहाँ जमकर रातभर मुठभेड हुई। कई अंग्रेज अफसर एवं सैनिक मारे गए। यह विद्रोह लगातार चार दिन तक चलता रहा। विद्रोहियो को काफी सफलता भी मिली, परन्तु बाद मे बाहर से मदद पहुँच गई। जापानी युद्ध पोतो से सैनिक उतारे गए। जमकर लड़ाई हुई और 18 फरवरी की रात मे एलेक्जेण्ड्रा बैरक पर जापानी सैनिको का अधिकार हो गया। सारे विद्रोही पकड़े गए। बाद मे 200 सैनिको का कोर्टमार्शल हुआ। अनेक सैनिको को फाँसी दे दी गई। शेष सैनिको को कालापानी या अन्य कड़ी सजाएँ हुई।

बर्लिन में क्रान्तिकारियों का केन्द्र

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीय राष्ट्रवादी और जर्मन एक दूसरे के निकट आये। 3 सितम्बर 1914 को "द जर्मन यूनियन आव फ्रैण्डली इण्डिया" की स्थापना हुई। 1915 को इसका नाम बदलकर "इण्डियन इण्डिपैण्डेन्स लीग" कर दिया गया। इसका मुख्य कार्य भारत और इसके बाहर के क्रान्तिकारियों को संगठित करना तथा भारत की, धन और जन से सहायता करना था। जर्मनी से प्रशिक्षित कर भारतीयों को पूर्वी एशियाई देशों में भेजा गया। जर्मनों के साथ बर्मा और भारत पर आक्रमण और अण्डमान के कैदियों को मुक्त कराने की योजना बनाई गयी। भारत में सुन्दरवन में शस्त्र उतारने की भी योजना थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार को विद्रोह की योजना की गन्ध लग गई। अतः बंगाल, शंघाई और अमरीका में क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। प्रथम महायुद्ध में जर्मनी की पराजय के साथ बर्लिन भी क्रान्तिकारियों का केन्द्र न रहा। रामचन्द्र, चन्द्रकान्ता चक्रवर्ती तथा अन्य 16 भारतीय सेन फ्रान्सिस्कों "षड्यंत्र" के सिलसिलें में पकड़ लिये गए। रामचन्द्र को गोली मार दी गई तथा अन्य को कठोर सजाएं हुईं।

गदर पार्टी के सोहनलाल पाठक, हसनखाँ और हरनाम सिंह ने कहरी-सहरी बर्मा में विद्रोह का प्रयास किया था और उन्होंने रंगून में 130 वीं बलूची सेना से सम्पर्क स्थापित किया। परन्तु विद्रोह का भेद खुल गया। क्रान्तिकारी पकड़े गए। उन्हें कठोर सजाएँ हुईं। सोहनलाल पाठक, हरनाम सिंह, चालियाराम, बसाना सिंह, नारायण सिंह और पालासिंह को फांसी हुई। यह विद्रोह मांडले (बर्मा) षड्यंत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

काबुल में कार्यकारी सरकार की स्थापना

पश्चिम एशिया मे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि भारतीय क्रान्तिकारियो को काबुल मे प्राप्त हुई । जैसे ही प्रथम विश्व महायुद्ध प्रारम्भ हुआ, तो राजा महेन्द्र प्रताप यूरोप चले गए । वे लाला हरदयाल से जनेवा मे मिले तथा जर्मनी मे कैसर से भेंट की । उन्होंने जर्मन चासलर से सहायता ली तथा वे भारत के 27 राजाओ के नाम पत्र लेकर भारत लौटे । उन्हे तुर्की के सुलतान से भी सहायता मिली ।

अफ़गानिस्तान के शाह ने राजा महेन्द्र प्रताप का हार्दिक स्वागत किया । राजा महेन्द्र प्रताप ने दिसम्बर 1915 को काबुल मे भारत की कार्यकारी सरकार की स्थापना की । राजा महेन्द्र प्रताप कार्यकारी सरकार के अध्यक्ष तथा बरकतुल्ला प्रधानमंत्री बने । अध्यक्ष के नाते राजा ने ज़ार तथा नेपाल नरेश को पत्र लिखे । भारतीय नरेशो को भी क्रान्ति के लिए प्रेरित किया । कार्यकारी सरकार के गृहमंत्री उबैदुल्ला ने "पैन-इस्लामिक आर्मी" तैयार करने के लिए 9 जुलाई 1916 को पीले रेशमी कपडों पर प्रभावशाली व्यक्तियो को पत्र लिखे, किन्तु बाद मे पकड लिये गए । इतिहास में यह घटना "सिल्किन लैटर काण्ड" के नाम से प्रसिद्ध है । रासबिहारी बोस ने सारे भारत में विद्रोह करने के पहले 21 फरवरी और बाद में दो दिन पहले 19 फरवरी 1915 तिथि निश्चित की थी । सारी तैयारी की गयी थी । बम तथा हथियार जमा कर लिये गए थे । गोरे सिपाहियो के कत्ल की योजना बनायी गई थी। आक्रमण के स्थान सुनिश्चित कर लिए गए थे, परन्तु पुलिस के भेदिया कृपालसिंह ने विद्रोह की सारी गतिविधियो को बता दिया । सारे क्रान्तिकारी पकड़ लिये गए और विद्रोह समय से पूर्व ही विफल हो गया ।

प्रवासी भारतीय स्वाधीनता संग्राम में जिन क्रान्तिकारियो ने भाग लिया था, उनमें प्रमुख नेताओं के नाम है : भगवान सिंह, लाला हरदयाल, पं. परमानन्द, शचीन्द्रनाथ सान्याल, सोहनसिंह भकना, कर्तार सिंह सराभा, पण्डित रामचन्द्र, रास बिहारी बोस, विष्णुगणेश पिंगले, राजा महेन्द्र प्रताप,

बरकतुल्ला, सन्तोख सिंह, सुच्चासिंह, लछमनसिंह, हरनाम सिंह, "काहरी-साहरी", पण्डित काशीराम, डॉ. मथुरासिंह, बलवन्त सिंह, सोहनलाल पाठक आदि।

इस संग्राम में जो क्रान्तिकारी "वन्देमातरम्" के साथ फाँसी पर हँसते हुए झूल गये थे, उनमें सर्वश्री कर्तारसिंह सराभा, दफेदार लक्ष्मन सिंह, अब्दुल्ला, विष्णुगणेश पिंगले, पण्डित काशीराम, डॉ. मथुरा सिंह, भाई भागसिंह, भाई वतन सिंह, मेरा सिंह, गन्धा सिंह, बलवन्त सिंह, बन्ता सिंह, रंगासिंह, बाबू-हरनाम सिंह, सोहनलाल पाठक आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

अरब में क्रान्ति की योजना

प्रथम महायुद्ध (1914-18 ई.) प्रारम्भ हो गया तो मौलाना महमूद हसन ने इस अवसर को उचित समझकर अपनी गुप्त क्रान्ति को सक्रिय किया। इसको व्यावहारिक रूप देने के लिए वे अरब गए, जहाँ तुर्की के रक्षा मंत्री स्व. जमाल पाशा से फौजी सहायता लेकर अंग्रेजों को भारत से निकालने की योजना बनाई। इस योजना को सफल बनाने के लिए हज़रत मौलाना महमूद हसन अपने एक शिष्य मौलाना उबैदुल्ला सिंधी को काबुल (अफगानिस्तान) भेजा।

हजरत मौलाना महमूद हसन जब हिन्दुस्तान से अरब गये तो अपने शिष्य हजरत मौलाना हुसैन अहमद मदनी के यहाँ ठहरे थे। मौलाना मदनी ने अरब के अन्दर उनकी क्रान्ति की योजना को सफल बनाने की जी-जान से कोशिश की और भारत को अंग्रेजों के पंजे से छुटकारा दिलाने में जान की बाजी लगा दी। ठीक उसी समय जब ये हजरत अपनी क्रान्ति के कार्य को सफल बनाने में जूझ रहे थे, इस गुप्त सशस्त्र क्रान्ति का भेद खुल गया। क्रान्ति का भेद खुलते ही अंग्रेजों ने मक्के के शरीफ़ हुसैन के हाथों मौलाना महमूद हसन और उनके साथियों को गिरफ्तार कराकर पहले मिस्र, फिर

मालटा द्वीप के जेल मे भेज दिया। जून 1920 ई को हजरत मदनी मालटा द्वीप के कैदखाने से छूटकर भारत आए। 30 नवम्बर 1920 ई. को इनके गुरु हजरत मौलाना महमूद हसन का देहान्त हो जाने पर भारत मे क्रान्ति या आन्दोलन के कार्यों का भार मौलाना मदनी के कन्धो पर आ गया और उन्होंने उसे आगे बढ़ाया। 1932 मे अवज्ञा-आन्दोलन मे भाग लेकर मदनी ने अपनी गिरफ्तारी दी थी।

विदेशों में जिन्होंने आज़ादी का अलख जगाया था

(क) ग़दरपार्टी के क्रान्तिकारी नेता डॉ. लाला हरदयाल

लाला हरदायल

लाला हरदयाल प्रतिभा सम्पन्न विद्वान, महान् भौतिकवादी, मानवतावादी, समाज सुधारक, निर्भीक पत्रकार व लेखक, वैचारिक व बौद्धिक दृष्टि से अत्यधिक विकसित राष्ट्रवादी क्रान्तिकारी नेता थे।

लाला हरदयाल ने अपनी अद्भुत संगठन-शक्ति के बल पर कनाडा और अमेरिका के प्रवासी भारतीय मजदूरो व छात्रो की ग़दरपार्टी बनायी जिसने भारत के स्वतन्त्रता सग्राम, विशेषत. भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन को नई शक्ति और नया आयाम दिया।

लाला हरदयाल का जन्म 14 अक्तूबर 1884 को दिल्ली मे हुआ था। उनके पिता लाला गौरीशकर दयाल माथुर दिल्ली जिला अदालत में रीडर (पेशकार) थे। कुशाग्र बुद्धि के छात्र होने के कारण आपको इग्लैण्ड मे उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए तीन वर्ष की छात्रवृत्ति मिली थी। "बोधि सत्व डाक्ट्रिन" थोसिस पर 1932 मे आपको डाक्ट्रेट की उपाधि मिली। आपने विदेशी मे रहकर अनेक पुस्तके लिखी। 1911 से 1914 तक अमेरिका के एक विश्वविद्यालय मे दर्शन और सस्कृत के प्राध्यापक रहे।

लाला हरदयाल का सब से महत्त्वपूर्ण व प्रभावी कार्य पहली नवम्बर 1913 को सानफ्रान्सिस्को मे "गदरपार्टी" की स्थापना करना था। उन्होने वहाँ युगान्तर आश्रम बनाया। इस महान् क्रान्तिकारी पार्टी के अध्यक्ष सोहनसिंह भकना, सचिव लाला हरदयाल और कोषाध्यक्ष पण्डित काशीराम थे। लाला हरदयाल ने "गदर" अखबार के माध्यम से प्रवासी भारतीयो में भारतीय स्वाधीनता संग्राम की क्रान्ति को भावना जगाई थी।

लाल हरदयाल की क्रान्तिकारी गतिविधियो के कारण अमेरिका सरकार ने ब्रिटिश सरकार के दबाव मे आकर हरदयाल को 23 मार्च 1914 को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया था। तब उन्होने स्वीटजरलैड, जर्मनी, कनाडा, तुर्की आदि देशो मे रहकर प्रवासी भारतीयो मे क्रान्ति की भावना जगाई। बर्लिन मे 1915 मे आपने क्रान्तिकारियो की "बर्लिन समिति" बनायी थी। लाला हरदयाल द्वारा गठित गदर पार्टी के आठ हजार सदस्य प्रथम विश्व युद्ध के समय अनेक जहाजो के द्वारा सशस्त्र क्रान्ति के लिए भेजे गए थे, लाला और उनके साथियो ने 19 फरवरी 1915 को सेना द्वारा समर्थित जन-क्रान्ति की योजना बना ली थी, परन्तु कृरपाल सिंह द्वारा भेद खोल दिये जाने के कारण प्रस्तावित सशस्त्र क्रान्ति विफल हो गई।

डॉ. हरदयाल द्वारा गठित गदर पार्टी ने भारत के स्वतन्त्रता सग्राम मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण व निर्णायक भूमिका निभाई। 4 मार्च 1939 को अमेरिका मे आपका निधन हो गया।

(ख) कर्तारसिंह सराभा

कर्तारसिंह सराभा जन्मत क्रान्तिकारी थे। गदरपार्टी के क्रान्तिकारियो मे कर्तारसिंह सराभा का विशेष स्थान है। उनकी क्रान्तिकारी लगन और उत्साह को देखकर क्रान्तिकारी नेता रासबिहारी बोस भी स्तब्ध रह गए थे। "भारतमाता की जय" के नारे के साथ फांसी के फंदे पर हँसते हुए झूल गए थे। तब उनकी उम्र 19 वर्ष की थी।

श्री सराभा का जन्म सन् 1896 मे लुधियाना जिले के सराभा नामक स्थान मे हुआ था। बचपन से ही आप मे नेतागिरी के गुण विद्यमान थे। सहपाठी आपको "अफलातून" कहा करते थे। कालेज की पढ़ाई के समय सन् 1912 मे अमेरिका गए। वहाँ "गदरपार्टी' से सम्बद्ध हो गए। अखबार के प्रकाशन मे आपने पूर्ण सहयोग दिया। प्रवासी भारतीयो का स्वदेश लौटने का आपने जोरदार प्रचार किया। गदर की तैयारी क लिए स्वदेश लौटकर सराभा ने जी–जान से कोशिश की। विद्रोह असफल हो जाने पर आपको गिरफ्तार कर लिया गया। डेढ़ साल तक राजद्रोह का मुकदमा चला। फांसी से पहले अंग्रेज न्यायाधीश से कर्तार ने कहा था– "मातृभूमि को मुक्त कराने की कोशिश कभी गुनाह नही हो सकती। आप मुझे फांसी की सजा दीजिए। आजन्म कारावास, मैं नही चाहता। फांसी के बाद मैं फिर यही जन्म लूंगा और फिर लड़ूंगा। एक कर्तार मरेगा तो घर-घर मे और कर्तार पैदा होगे। उन सभी की गर्दनो के लिए आपके पास फंदे भी नही होंगे।" आखिर कर्तार की इच्छा पूरी हुई। उसे फांसी की सज़ा-सुनायी गयी। नवम्बर 1915 को कर्तार "भारत माता की जय" का नारा बुलन्द करते हुए प्रसन्नता के साथ फांसी पर चढ़ गया।

(ग) श्यामजी कृष्ण वर्मा

विदेशो मे क्रान्तिकारियो का सगठन कर उन्हे भारत की आजादी के लिए लड़-मरने के लिए उत्प्रेरित करने वालो मे काठियावाड़ी विद्वान एव प्रख्यात् देश–भक्त श्यामजी कृष्ण वर्मा प्रमुख थे। वर्मा बैरिस्टर की डिग्री के

श्यामजी कृष्ण वर्मा

साथ इंग्लैंड गए और वहीं बस गये। देश में चल रहे स्वराज्य–आन्दोलन और क्रान्ति के प्रति उनका भावनात्मक लगाव अन्तहीन था। वे अपनी मातृभूमि की सेवा करना चाहते थे। लेकिन शायद उनकी योजना शेर को उसी की मांद में मात देने की थी। वर्मा ने 1905 में ही लन्दन में खुद को स्थापित कर लिया और भारतीय गृह नियम सोसायटी (इण्डियन होमरूल सोसायटी) गठित की। अपने मकसद् को पूरा करने के लिए उन्होंने प्रचार सभाओं के माध्यम से लोगों को इकट्ठा करना शुरू कर दिया। इन्हीं कार्यक्रमों के रूप में पहली जुलाई को उन्होंने प्रसिद्ध इण्डिया हाउस की स्थापना की।

कृष्ण वर्मा द्वारा निर्मित लन्दन के इण्डिया हाउस (भारत भवन) का अपना ऐतिहासिक महत्त्व है। इसी भवन में तरुण क्रान्तिकारियों की टोली ने 'अभिनव भारत' के नाम से क्रान्तिकारी क्रियाकलापों को आरम्भ किया। विदेशों में भारतीय क्रान्तिकारी गतिविधियों को तेज करने में इन दोनों संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

(घ) मदनलाल धींगरा

मदनलाल धींगरा

इण्डिया हाउस (भारत भवन) के युवा क्रान्तिकारियों में मदनलाल धींगरा का नाम उल्लेखनीय है। मदनलाल धींगरा विदेशी सरजमीं पर शहीद होनेवाला पहला भारतीय था। भारत भवन के युवा भारतीय क्रान्तिकारियों के नेता वीर सावरकर थे। मदनलाल धींगरा वीर सावरकर से अत्यधिक प्रभावित थे। उन्होंने भारत के सेक्रेटरी सर विलियम कर्नल वायली के ए.डी.सी. की अपनी

नौकरी छोड दी । पहली जुलाई 1909 की बात है । उस दिन मदनलाल ने नेशनल इंडियन एसोसिएशन की बैठक मे एक अंग्रेज अफसर को अपने रिवाल्वर से ठण्डा कर दिया । 18 अगस्त 1909 को मदनलाल धींगरा को पेंटोनविले जेल मे मौत की सजा दी गयी । इस प्रकार भारतीय क्रान्तिकारियों के लिए धींगरा प्रेरणा-स्रोत बन गए।

(ङ) विनायक दामोदर सावरकर

वीर सावरकर

विदेशो में जिन क्रान्तिकारियो ने आज़ादी के मशाल को तेज किया था, उनमे अग्रदूत थे– विनायक दामोदर सावरकर। इंडिया हाउस (भारत भवन) के युवा भारतीय क्रान्तिकारियो के नेता वीर सावरकर थे। उन्ही की प्रेरणा से लन्दन के अनेक युवा भारतीय सशस्त्र क्रान्ति मे कूद पड़े थे।

विनायक दामोदर सावरकर का जन्म महाराष्ट्र के नासिक के भगूर ग्राम में 28 मई सन् 1883 में इतिहास प्रसिद्ध चित पावन ब्राह्मण वंश मे हुआ था। अनेक प्रमुख योद्धा जैसे श्री बाजीराव, पानीपत के योद्धा महान् राजनीतिज्ञ नाना फड़नबीस, सन् 1857 के स्वातन्त्र्य संग्राम के नेता नाना साहिब, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी वासुदेव बलवन्त फड़के, चापेकर बन्धु, रानाडे, गोखले और लोकमान्य तिलक आदि देश भक्त इसी चितपावन वंश में पैदा हुए थे। श्री सावरकर, श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा की छात्रवृत्ति द्वारा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए बम्बई से 9 जून सन् 1906 को चलकर 3 जुलाई को इंग्लैंड पहुँचे थे।

उन दिनों इंडिया हाउस में सावरकर की गतिविधियो के कारण लन्दन का माहौल काफ़ी गर्म था। मित्रों की सलाह पर 10 जनवरी 1910 को सावरकर पेरिस चले गये। वहाँ से सीधे मैडम् कामा के फ्लैट पर गये।

वह जहाज जिससे वीर सावरकर समुद्र मे कूदे थे– मुक्ति के लिए

लेकिन वहाँ से वे बहुत जल्दी ही 12 मार्च को लन्दन के रास्ते भारत लौटने के लिए रवाना हो गए। अगली ही सुबह विक्टोरिया स्टेशन पर पहुँचने के साथ ही वे गिरफ्तार कर लिये गये। 12 मई को उन्हे एक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया गया। मेजिस्ट्रेट ने मुकदमे के लिए भारत भेजने का आदेश दिया। अदालत मे यद्यपि सावरकर अत्यन्त शान्त थे लेकिन कामरेड अय्यर ने उन्हे एक गोपनीय वाक्य से सकेत दिया कि "हम लोग मार्साइलस पर पुनः मिलेंगे।" चट्टोपाध्याय तथा अय्यर ने उस मोरेआ पोत के बारे मे सभी जानकारियाँ एकत्र कर ली, जिससे महान् भारतीय राजनेता को स्वदेश वापस ले जाया जाना था। इस बात की पूरी व्यवस्था की गयी कि 'सावरकर' मार्साइल्स के निकट समुद्र मे कूदेंगे। उनके साथी कामरेड समुद्र तट पर एक टैक्सी पर उनकी प्रतीक्षा करेंगे और इसके बाद सभी एक साथ सीधे पेरिस चल जायेंगे। योजनानुसार सावरकर जहाज से समुद्र मे कूद पड़े, लेकिन थोड़ी देर हो गयी। सावरकर फ्रांसीसी पुलिस के हाथो धर लिये गए और ब्रिटिश पुलिस को सौंप दिया गया।

सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने का अभियोग लगाकर सावरकर पर मुकदमा चलाया गया। 23 दिसम्बर सन् 1910 को न्यायाधीशो ने सावरकर को 55 वर्ष का कालेपानी का कठोर दण्ड दिया।

वीर सावरकर का समस्त जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित था। भारत वसुन्धरा वस्तुत. उनको जन्म देकर धन्य हो गई।

ग़दर-आन्दोलन की विफलता के मुख्य कारण

1. प्रवासी भारतीयों द्वारा गदर आन्दोलन के पीछे जो मुख्य कारण था, वह क्रान्तिकारियो का अनूठा जोश था। गदर पार्टी के नेताओं का इस जोश पर काबू पाना तो एक ओर रहा, वे स्वय भी उसी बहाव मे बह गए। भावावेश में विद्रोह संग्राम में कूद पड़े।

2. क्रान्तिकारियो को राजनैतिक दाँव-पेचो का कोई लम्बा-चौड़ा अनुभव नही था। भारत के लिए प्रस्थान-अभियान के समय क्रान्तिकारी नेता लाला हरदयाल भी अमेरिका मे नही थे।

3. मुख्य क्रान्तिकारी नेता जहाज से उतरते ही गिरफ्तार कर लिए गए। गदर पार्टी के प्रधान श्री सोहनलाल भकना की गिरफ्तारी से क्रान्तिकारी आन्दोलन को जबर्दस्त धक्का लगा था।"गिरफ्तार हुए नेताओ के स्थान की पूर्ति नये नेता न कर सके।"

4. ग़दर पार्टी के संगठन में दृढ़ता नही थी। योजनाबद्ध कार्यक्रमो का भी अभाव रहा। क्रान्तिकारी अपनी स्वतत्र सूझ-बूझ से भारत को प्रस्थान किया। पर उनका भावी कार्यक्रम सुनिश्चित नही था।

5. विद्रोह के विफल हो जाने का एक कारण यह भी था कि विश्व-युद्ध के समय विदेशो मे प्रवासी भारतीयो द्वारा जिस तरह की तैयारी और जोश-उत्साह था, उस प्रकार का वातावरण भारत में तैयार नही हुआ था गदर के लिए भारत और अमेरिका के बीच सम्पर्क-सूत्रों का भी अभाव था। देश मे जागृति अभी आई नही थी।

6. एक क्रान्तिकारी नेता पं. परमानन्द का मन्तव्य था कि गदर की योजना बच्चों का खेल था।

ग़दर आन्दोलन की विशेषताएँ

1. अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र कराने की प्रेरणा प्रवासी भारतीयों को सन् सत्तावन के स्वाधीनता-संग्राम से मिली थी। यह आन्दोलन अपूर्व, अनुपम और अनुकरणीय था।

2. प्रवासी भारतीयो के दिलों में अमेरिका स्वतंत्रता एवं समानता के वातावरण ने राजनीतिक चेतना को जगाया था।

3. प्रवासी भारतीयो मे अपनी मातृभूमि के प्रति जिस प्रकार की अनुपम देशभक्ति, अदम्य साहस, बलिदान की भावना, लगन-उत्साह आदि की भावना विद्यमान थी, उस तरह की भावनाएँ भारतवासियो मे विद्यमान नही थीं। उस समय भारतीयो के दिल बुझे-बुझे-से थे।

4. भारत मे गदर के असफल हो जाने के बावजूद ग़दरी क्रान्तिकारियो ने अपना साहस नही छोड़ा। उनकी अदम्य क्रान्तिकारी भावना में कोई अन्तर नही आया। उन्होने भारत के पडोसी देश बर्मा, स्याम, अफगानिस्तान, ईरान इत्यादि देशों की सहायता से ब्रिटिश सरकार पर चोट करने के निरन्तर प्रयास किये। उनमें दृढता, लगन आदि ऐसे गुण थे जिनमें सशस्त्र क्रान्ति मे दृढ विश्वास था। क्रान्तिकारियों के प्रवासो, संघर्षों व बलिदानों से अभूतपूर्व जन-जागृति हुई और भावी स्वाधीनता संग्राम को बहुत बड़ा बल मिला।

5. आर्थिक संकट के शिकार होकर भारतीय विशेषत: पंजाबी किसान, विदेशों को जाने के लिए मजबूर हुए थे। वहाँ उन्हें जो कड़ुवा अनुभव हुआ, उसने उनके दिलों में क्रान्तिकारी भावना को जन्म दिया और उन्होने यह अनुभव किया कि सारी मुसीबतों की जड़ मातृभूमि की पराधीनता है। इस पराधीनता को अपने कन्धों से उतारे फेंकने के लिए प्रवासी भारतीयों ने जुझारू संघर्ष किया।

6. प्रवासी भारतीय ऐसे क्रान्तिकारी थे, जो स्वतंत्रता रूपी शमा के परवाने थे, जिन्हें दूसरो से नही, अपितु अपने बलिदान से मतलब था।

7. इसमें कोई सन्देह नही कि क्रान्तिकारी नेता दूरदर्शी थे। उन्होने विश्व महायुद्ध के दो वर्ष पूर्व ही ब्रिटेन के युद्ध मे शरीक हो जाने का अन्दाज़ा लगा लिया था। राजनीतिक परिस्थितियो से लाभ उठाने के उद्देश्य से "ग़दर पार्टी" की स्थापना की थी।

होमरूल आन्दोलन

1913 से 1940 तक प्रथम विश्व महायुद्ध के संदर्भ मे देश के कुछ ऐसे आन्दोलन हुए जिनका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ था। उनमे "होमरूल–आन्दोलन" भी एक था। होमरूल आन्दोलन इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उग्रवादी इग्लैण्ड को प्रथम विश्व महायुद्ध में फँसा हुआ देखकर लाभ उठाकर आजादी पाना चाहते थे। भारतीय जनता को जागृत एवं सगठित करना आवश्यक था। इस कार्य को होमरूल आन्दोलन द्वारा श्रीमती ऐनीबेसन्ट और तिलक ने किया। "मराठा और केसरी" के माध्यम से तिलक ने उत्तेजनापरक लेखों द्वारा भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन को नई दिशा दी।

28 अप्रैल 1916 को पूना मुख्यालय बनाकर होमरूल लीग की स्थापना कर दी गई। उसका अध्यक्ष जोसेफ बैप्टिस्ट को बनाया गया। तिलक ने एक लाख रुपये की थैली जो उन्हें भेंट स्वरूप दी गई थी, लीग को दे दी। इस संगठन की अनेक शाखाएं विभिन्न नगरों और विदेशो मे खुल गयीं। एक वर्ष मे तिलक की होमरूल लीग के 14,000 सदस्य बन गए। श्रीमती ऐनी बेसेण्ट ने स्पष्ट रूप से यह मांग रखी थी :–

"भारत अब साम्राज्यवाद के शिशुगृह में एक शिशु की भांति नही रहना चाहता और न वह अपने खून तथा आंसुओं के बदले स्वतंत्रता की प्रार्थना

करता है। वह एक राष्ट्र की हैसियत से साम्राज्य से न्याय चाहता है तथा स्वतन्त्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझकर माँगता है।"

विदेशो मे होमरूल लीग ने भारत की माँग का प्रचार किया। दैनिक पत्रो मे लेख प्रकाशित किए गए। सदन मे प्रश्नोत्तर उठाये गए। परिणाम स्वरूप इंग्लैण्ड की संसद मे भारतीय माँगो का समर्थन करने वाला एक दल बन गया। इंग्लैण्ड की लेबर पार्टी ने अपने 1918 के नौटिंघम् अधिवेशन मे भारत को होमरूल प्रदान करने के निर्विरोध प्रस्ताव पारित किया। इसी प्रकार उस समय अमेरिका के अखबारो मे धूम मच गई थी।

श्रीमती एनीबेसेट

श्रीमती एनीबेसेट ने कहा था–"भारत स्वराज्य माँगता है क्योकि स्वतंत्रता प्रत्येक राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है,... ईश्वर को धन्यवाद है कि भारत की आँखें खुल रही हैं .. भारत अब अपने घुटने टेक कर भिक्षा नही माँग रहा है, प्रत्युत अधिकारो की प्राप्ति के लिए अपने पैरो पर खड़ा है।"

क्रान्तिकारियों के प्रेरणा–स्रोत : तिलक (1856-1920)

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक स्वतन्त्रता–संग्राम के सेनापति, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ, उच्चकोटि के विद्वान् एवं क्रान्तिकारियो के प्रेरणा स्रोत थे। वे भारतीय इतिहास में आधुनिक भारत के कृष्ण या कौटिल्य के नाम से विख्यात हैं। "स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूँगा।" यह घोषणा देश में सब से पहले तिलक ने की थी। तिलक ज्ञान और कर्म के एक अद्भुत मिश्रण थे।

भारत मे उग्रवादी राष्ट्रवाद के उदय का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल का नेतृत्व था। ये नेता-त्रय "बाल-लाल-पाल" के नाम से प्रसिद्ध है। तिलक प्रथम श्रेणी के देशभक्त और विदेशी नौकरशाही के कट्टर शत्रु थे। उनका विश्वास था कि राजनैतिक भिक्षावृत्ति के द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त नही की जा सकती। उन्होंने गणेश-उत्सव, शिवाजी-उत्सव, पैसा फण्ड, राष्ट्रीय स्कूल इत्यादि कार्यक्रमो के द्वारा जनता मे जागृति पैदा की थी। इन सब कार्यक्रमो का एक ही उद्देश्य था कि ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंका जाए। उनकी सिंह-गर्जना थी : "भाट की तरह गुनगान करने से स्वतंत्रता नही मिल जायेगी। स्वतन्त्रता के लिए शिवाजी की भांति साहसी कार्य करने पडेगे।"

देश-सेवा की आग उनके हृदय मे विद्यार्थी काल से ही जलने लगी थी। वकालत परीक्षा पास करने के बाद उन्होन अंग्रेजी स्कूलों के विरोध मे "न्यू इंग्लिश स्कूल" की स्थापना की। इसका उद्देश्य था राष्ट्रीय विचारों वाले सच्चे नागरिक पैदा करना। बाद मे उन्होंने मराठी और अंग्रेजी मे क्रमश. "केसरी और मराठा" अखबार निकाले। इनके द्वारा उन्होंने जनता को निर्भय होकर स्वराज्य के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी। सन् 1897 तथा 1908 में क्रान्तिकारी विचारो के अपराध मे तिलक को कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इस सम्बन्ध मे मन्मथनाथ गुप्त का अभिमत है : "लोकमान्य तिलक को पहली बार जो राजनैतिक सज़ा हुई, वह क्रान्तिकारी विचारो के कारण ही हुई थी। उन पर यह अभियोग लगाया गया था कि उन्होने महाराष्ट्र के क्रान्तिकारियों यानी अंग्रेज अफसर को मारकर फांसी पाने वाले तीन चाफेकर बन्धुओ और नाटू बन्धुओं आदि के लिए नैतिक बारूद प्रस्तुत की थी। इसके कई साल बाद जब उन्हे फिर 1908 मे सज़ा हुई, तो इस कारण हुई कि उन्होने बंगाल के प्रसिद्ध नवयुवक शहीद खुदीराम की प्रशंसा करते हुए "केसरी" नामक पत्र मे उसका अभिनन्दन किया था।

यहाँ उल्लेखनीय है कि अमर शहीद खुदीराम बोस महान् क्रान्तिकारी था जिसने अंग्रेज न्यायाधीश से कहा था– "मुझे सौ बार भी फाँसी दी जाती है तो मुझे खुशी होगी कि भारत माँ अपने बेटे को अपनी गोद में सहारा तो देगी।" 19 अगस्त 1908 को फाँसी पर जाने से पहले खुदीराम अपने हाथ मे भगवद् गीता लिये हँसते हुए 'वन्देमातरम्' और 'भारत माँ की जय' कहते हुए फाँसी पर झूल गया था।

(खुदीराम, अपने हाथ माँ गीता को लेकर फाँसी पर लटकने के लिए जाते हुए)

लोकमान्य तिलक ने 1889 ई. मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रवेश करके अपने क्रान्तिकारी विचार कांग्रेस सदस्यो के सम्मुख रखे। गरमदल के नेता के रूप में वे प्रसिद्ध हो गए।

तिलक उच्चकोटि के विद्वान् थे। 1908 से 1914 तक के अपने छः वर्षीय कारावास–काल मे उन्होने "गीता रहस्य" तथा 'दि आर्कटिक होम ऑफ़ दि वेदाज" नामक दो प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रंथ में तिलक की विद्वत्ता, ऐतिहासिक शोधवृत्ति, विस्तृत ज्ञान और उत्कृष्ट विचारो का परिचय मिलता है। उनके द्वारा रचित "गीता रहस्य" शकराचार्य के बाद सब से सुन्दर तथा तर्कपूर्ण गीता का भाष्य है।

लोकमान्य तिलक ने भारतीय जनता को "अवज्ञा का दर्शन" प्रदान किया और इस दृष्टि से वे भारतीय जागृति के अग्रदूत थे। तिलक अपने जीवन की अन्तिम सांस तक भारतीय-स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते रहे। अगस्त 1920 को इस कर्मयोगी ने सदा के लिए अपनी आँखे मीच ली।

हृदय विदारक नरसंहार : जलियांवाला-बाग

जलियावाला-बाग नर-संहार का शाश्वत प्रतीक

13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियावाला-बाग में जो नर-संहार हुआ था, वह अत्यन्त हृदय विदारक और अधिक वीभत्स था। इस घटना से

अंग्रेजों की बर्बरता, क्रूरता और निष्ठुरता जग-जाहिर हुई। उनकी पाशविकता का ऐसा उदाहरण विश्व के इतिहास में अन्यत्र नही मिलता। इस घटना से क्रान्तिकारियो का खून खौल उठा था। उनके हृदय में प्रतिशोध की भावना भड़क उठी और क्रान्तिकारियो ने इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने की कसम खाई।

क्रूर जनरल डायर

वह घटना यों हुई कि लाहौर और अमृतसर में 15 अप्रैल 1919 को फौजी कानून जारी करने की घोषणा की गई थी। उसके बाद ही पंजाब के दो-तीन जिलो मे वह जारी कर दिया गया था, परन्तु इस घोषणा के दो दिन पूर्व 13 अप्रैल (वर्ष-प्रतिपदा) को जो कि हिन्दुओ के संवत्सर का दिवस था। इस संदर्भ में अमृतसर मे एक सार्वजनिक सभा करने की घोषण की गई थी और जलियावाला-बाग मे एक बड़ी भारी सभा आयोजित की गई। यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य मे था। शहर के मकान ही इसकी चहारदीवारी बनाये हुए थे। इसका दरवाजा बहुत ही सकरा था, इतना कि एक गाडी उसमे होकर नही निकल सकती थी। बाग में जब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गए थे, जिनमे पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे भी सम्मिलित थे और सब के सब निहत्थे थे। शान्तिपूर्वक सभा हो रही थी। तब जनरल डायर ने उसमे प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हंसराज नामक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायर ने घुसते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। सैकड़ों लोग गोली से भून दिये गए। देखते ही देखते सारा मैदान शवों से भर गया था। सभा मे भगदड़ मच गई। चीत्कारों और हाहाकारो से आकाश गूंज उठा। उस भगदड़ मे अनेक लोग कुचले जाने से मर गए थे। बहुत से लोग अपने प्राणो की रक्षा हेतु वहाँ के कुंए में कूद पड़े और मर गए। हजारों लोग मौत के घाट उतार दिये गए थे। वहाँ सभा-स्थल श्मशान भूमि बन गई। यह एक भयंकर नर-संहार था।

बाद में हण्टर कमीशन के सम्मुख अपनी गवाही मे जनरल डायर ने बताया था कि उसने लोगों को तितर-बितर होने की आज्ञा दी और फिर बस गोली चलाने का हुक्म दे दिया, लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि तितर-बितर हो जाने के हुक्म देने के तीन मिनट बाद ही उसने गोली चलवा दी थी। यह बात हो स्पष्ट हो है कि बीस हजार आदमी दो-तीन मिनिट में तितर-बितर नही हो सकते थे। और वह भी विशेषकर एक बहुत तग दरवाजे से होकर। उन पर गोली तब तक चलती रही, जब तक सारे कारतूस खत्म नहीं हो गए। कुल सोलह सौ फायर किये गए थे। सरकार की स्वय की रिपोर्ट के अनुसार चार सौ मरे थे और घायलो की सख्या एक-दो हजार के बीच में थी। दुःख की बात तो यह थी कि गोली हिन्दुस्तानी फ़ौजियो से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे अंग्रेज सिपाहियों को लगा दिया गया था। ये सब के सब बाग में एक ऊँचे स्थान पर खड़े हुए थे। वास्तव में सब से बड़ी दु.खद बात तो यह थी कि गोली चलाने के बाद मृतक और वे लोग जो बुरी तरह से सख्त घायल हो गए थे, उन्हे सारी रात वही पड़ा रहने दिया गया। वहाँ उन्हें रात भर न तो पानी ही पीने को मिला और न डॉक्टरी या कोई अन्य सहायता ही।

जनरल डायर कितना क्रूर, पाशविक तथा निर्दयी था, इसका पता उसके बाद के बयान से प्रकट होता है कि चूंकि शहर फौज के कब्जे में दे दिया गया था और इस बात को डोंडी पिटवा दी गई थी कि कोई भी सभा करने की इजाजत नहीं दी जाएगी, तो भी लोगो ने उसकी अवहेलना की, इस लिए मैं ने उन्हें एक सबक देना चाहा, ताकि वे उसकी खिल्ली न उड़ा सकें।

एक अन्य बयान मे जनरल डायर ने बड़े अहंकार से कहा था- "मैं ने और भी गोली चलाई होती, अगर मेरे पास कारतूस होते। सोलह सौ बार ही गोली चलाई, क्यों कि मेरे पास कारतूस खत्म हो गए थे।" उसने आगे कहा- "मैं तो एक फ़ौजी गाड़ी (आर्मर्डकार) ले गया था, लेकिन वहाँ

जाकर देखा कि वह बाग के भीतर घुस ही नही सकती थी, इसलिए उसे वही बाहर छोड दिया था।'[1]

इस हृदय विदारक नरसहार के बाद भी क्या अंग्रेज जाति को सुशिक्षित, सुसभ्य एवं सुसस्कृत कहा जा सकता है ? इस सदर्भ मे कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स की यह टिप्पणी बहुत ही सार्थक है– "यह साफ़ बात है कि अग्रेज चाहे बाहर से जितने सुशिक्षित, सुसभ्य एव सुसंस्कृत रहे हो, परन्तु भीतर से तो वे उतने ही बर्बर, लुटेरे और क्रूर रहे हैं। हमारी आँखो के सामने पूंजीवादी सभ्यता का वह घोर पाखण्ड और स्वभावगत बर्बरता निरवस्त्र होकर आ गई, जो अपने देश मे भद्रता की चादर ओढे रहती है और उपनिवेशों में नंगी घूमती है।"[2]

1. डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या : कांग्रेस का इतिहास भाग–2, पृ. 133,

2. कार्लमार्क्स व फ्रेडरिक एगेल्स : उपनिवेश के बारे में, पृ. 114

पंचम अध्याय

त्रिकोणात्मक स्वाधीनता संग्राम

(सन् 1920 से 1939 तक)

विषय क्रम

1. त्रिवेणी संगम
2. उदारवादी दल
   - (अ) गांधीयुग
   - (आ) नेहरूयुग
   - (इ) नेहरू रिपोर्ट
   - (ई) सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा गोलमेज सम्मेलन
3. स्वराज्य दल की स्थापना
   - स्वराज्य दल की सफलता
4. क्रान्तिकरियो का आतकवादी आन्दोलन
   - (क) आतकवाद का स्वरूप
   - (ख) आतकवादी–आन्दोलन
   - (ग) आन्ध्र में अल्लूरि सीताराम राजु का विद्रोह
   - (घ) काकोरी काण्ड
   - (ङ) क्रान्तिकारियो का दर्शन
   - (च) राष्ट्रीय अपमान का बदला
   - (छ) सशस्त्र क्रान्ति का स्वर्णिम अध्याय
   - (ज) प्रमुख क्रान्तिकारियो की शहादत
   - (झ) वाइसराय की ट्रेन की नीचे बम–विस्फोट
   - (ञ) चिटगाँव मे विद्रोह
   - (ट) फ्लावर्स दरबार
   - (ठ) कीर्ति पार्टी का विद्रोह
   - (ड) किशोर ज्ञानी जैलसिंह का साहसिक कदम
   - (ढ) निष्कर्ष

त्रिवेणी संगम

सन् 1920 से 1939 तक के 20 वर्षीय कालखण्ड मे भारतीय स्वाधीनता सग्राम अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। भारतीय जन–जागरण भी इस कालखण्ड मे अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुका था। अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे भी काफ़ी बदलाव आ चुका था। इसका प्रभाव भारत पर पडना स्वाभाविक था। रूस की क्रान्ति ने ससार की शोषित दलित, पराधीन जनता को आलोड़ित कर दिया और भारतीय जनता को अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष का सदेश दिया।

यह कालखण्ड एक प्रकार से गाधी-नेहरू-युग था। स्वाधीनता–आन्दोलन के तेवर बदल चुके थे। पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग उठायी गयी थी। पं नेहरू ने काग्रेस को एक नयी दिशा दी और उसे समाजवाद से जोड़ा था। इस प्रकार स्वाधीनता सग्राम का मुख्य स्वर स्वतन्त्रता एव समानता बना।

समाजवाद एक ऐसा बिन्दु था, जहाँ पर गाधीवादियो एवं क्रान्तिकारियो का विलक्षण संगम हुआ था। शान्ति व क्रान्ति, अहिसा व हिंसा का विचित्र मेल हो गया था। यद्यपि दोनो के रास्ते अलग–अलग थे, परन्तु मुख्य लक्ष्य एक ही था। क्रान्तिकारिता की दृष्टि से 1920 से 1939 का कालखण्ड भगतसिह–आजाद–नेताजी का युग था। भगतसिह ने "हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ का नाम बदलकर हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक पार्टी" नाम रखा। इस प्रकार क्रान्तिकारियो के मूलभूत सिद्धान्त बने– प्रजातंत्र, धर्म निरपेक्षता तथा समाजवाद। इन क्रान्तिकारी नेताओ ने अपनी दिलेरी और साहसिक कार्यों से भारतीय जनता को अपनी अस्मिता की रक्षा हेतु संघर्ष की प्रेरणा दी। उग्रवाद को अपने लक्ष्य का साधन बनाया अर्थात् आतंकवाद द्वारा आज़ादी प्राप्त करना। अपने साहसिक कार्यों और बलिदानो द्वारा सारे ससार की आँखें खोल दी और अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रमो के प्रति जनता की सहानु-

भूति प्राप्त कर ली। इनके प्रेरणा स्रोत थे- बाल-लाल-पाल उग्रवादी नेता-त्रय।

इस कालखण्ड मे स्वाधीनता-सग्राम की मुख्य रूप से तीन धाराएँ प्रवाहित हुईं- उदारवाद, अडगावाद और उग्रवाद इन धाराओ के प्रमुख नेता थे :- क्रमश गांधीजी, चित्तरजनदास और सरदार भगतसिह। इनके रास्ते जरूर अलग-अलग थे, परन्तु सब का उद्देश्य एक ही था। ये धाराएँ अलग नही, अपितु राष्ट्रीयता का क्रमिक विकास ही है। ये धाराएँ आपस मे इतनी घुली-मिली थी कि इनमे पृथक रेखा खीचना मुश्किल था। एक-दूसरे को बराबर प्रभावित एव परिचालित कर रही थी। उग्रवादी इन धाराओं के साथ-साथ चल रहे थे और जहाँ-कही भी राष्ट्रीय नेताओ का अपमान हुआ, वहाँ क्रान्तिकारियो ने उस राष्ट्रीय अपमान का हिंसा द्वारा बदला लिया। इस प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास मे कांग्रेस के वैधानिक आन्दोलन और क्रान्तिकारी आन्दोलन ने एक-दूसरे के पूरक का कार्य किया। प्रसिद्ध लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त सन् 1919 से पहले क्रान्तिकारियो का ही संग्राम स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं- "यह बात तो सर्वसम्मत है कि 1919 से पहले क्रान्तिकारी आन्दोलन ही भारत का एक मात्र जगजू-आन्दोलन था। बाकी आन्दोलन यानी कांग्रेस और उसके इर्द-गिर्द के आन्दोलन को भिक्षापात्र के आन्दोलन कह सकते हैं। 1919 के बाद कांग्रेस मे गांधीजी का प्रभाव बढ़ गया और उन्होने इसे एक जन-सगठन मे बदल दिया और तब 1921 मे क्रान्तिकारियो ने उनके प्रति सम्मान की दृष्टि से अपना आन्दोलन स्थगित कर दिया।[1]

---

1. श्री मन्मथनाथ गुप्त : वे अमर क्रान्तिकारी : पृ. 11

उदारवादी दल

युग की बदली हुई परिस्थियों के अनुसार कांग्रेस मे भी काफी बदलाव आ चुका था। कांग्रेस ने अपना सिद्धांत भी बदल दिया था। कुछ काम करने लायक एक संस्था बन गयी थी। एक राजभक्त संस्था ने शान्तिपूर्ण विद्रोह के मार्ग का अनुसरण किया था। सर्वसाधारण के लिए उसने सदस्यता का दरवाजा खोल दिया। इधर गांधीजी दक्षिण अफ्रीका से अपने साथ जीवन का एक दर्शन लेकर भारत मे एक विचित्र प्रभामण्डल सहित अवतरित हुए। सन् 1917 मे गाधीजी शान्ति और मित्रता का विचित्र सन्देश लेकर भारतीय राजनीति मे आए। पं. नेहरू लिखते हैं–" उनकी (गाधीजी) की आवाज मीठी और अमोल से भरी हुई थी, फिर भी उसमें कोई दृढ़ और डरावनी चीज थी। उसमे इस्तेमाल किया हुआ हरेक लफ्ज़ अर्थ से भरा हुआ था और उसके पीछे एक जबर्दस्त सचाई मालूम पड़ती थी। शान्ति और मित्रता यानी सुलह और दोस्ती की जबान के पीछे शक्ति और क्रिया की कांपती हुई छाया थी और गलती के आगे न झुकने का निश्चय था।[1]

प्रारम्भ मे कांग्रेस और गाधीजी की नीति अंग्रेजो के प्रति राजभक्ति की थी। कांग्रेस के अधिवेशनो मे ब्रिटिश सम्राट की दीर्घायु के लिए प्रार्थना की जाती थी। उसकी मांगे "अनुनय-विनय" पर आधारित होती थी। प्रथम महायुद्ध के प्रयत्नो मे कांग्रेस और गांधीजी का पूर्ण सहयोग था। कांग्रेसी नेताओ की राजभक्ति और सेवा से उपलक्ष्य में पुरस्कार स्वरूप ब्रिटिश सरकार द्वारा उन्हे राजभक्ति का सर्वोच्च सम्मान "केसर-ए-हिन्द" पदक प्रदान किया जाता था।

---

1. पं जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक भाग–2, पृ. 1016

(अ) गांधीयुग

सन् 1919 तक गाधीजी अंग्रेजो के राजभक्त थे, वे अपने गुरु गोखले के परमशिष्य थे, परन्तु रौलेट एक्ट, जालियाँवाला हत्याकाड, हण्टर कमेटी रिपोर्ट और अन्तिम रूप से खिलाफत समस्या के कारण, 1915 के सहयोगी गाधी 1920 मे असहयोगी गाधी बन गए। इन घटनाओ ने गाधीजी की आस्था को जबर्दस्त धक्का पहुँचा था, क्यो कि युद्ध के समय ब्रिटेन द्वारा स्वतत्रता तथा लोकतन्त्र की रक्षा के लिए युद्ध किया जा रहा था। भारतीय नेताओ ने यह सोचा था कि युद्ध-समाप्ति के बाद भारत मे लोकतन्त्र की स्थापना हो जाएगी, परन्तु बहुत निराशा हुई। इसमे कोई सन्देह नही कि युद्ध से भारतीय राष्ट्रवाद को अपूर्व प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। सितम्बर 1920 मे लाला लाजपतराय की अध्यक्षता मे कलकत्ता के विशेष अधिवेशन में गाधीजी ने पहली बार असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया। प्रमुख नेताओ द्वारा इस प्रस्ताव का विरोध किया गया। वाद-विवाद के बाद मतदान हुआ। प्रस्ताव 1855 मत के मुकाबिले 27 28 बहुमत के आधार पर स्वीकृत हो गया। इस प्रस्ताव की स्वीकृति के साथ ही भारतीय राजनीति मे "गाधी युग" प्रारम्भ हो गया। गाधीजी के इस प्रस्ताव ने कांग्रेस को एक नयी दिशा प्रदान की। इसके साथ ही असहयोग और सत्याग्रह की नींव पड़ गई।

दिसम्बर-1920 की नागपुर मे श्री विजयराघवाचार्य की अध्यक्षता मे अधिवेशन सम्पन्न हुआ। यह एक ऐतिहासिक अधिवेशन था। इस अधिवेशन मे कलकत्ता के विशेष अधिवेशन मे स्वीकृत गांधीजी के असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव पुनः विचारार्थ प्रस्तुत किया गया तथा भारी बहुमत से स्वीकृत हो गया। नागपुर अधिवेशन ने कांग्रेस मे एक नया दृष्टिकोण, उत्साह, स्फूर्ति और साहस प्रदान किया। एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। कांग्रेस ने अब वैध-वैधानिक आन्दोलन की सीमा का परित्याग कर सरकार का सक्रिय विरोध करने का निश्चय किता। कहा जाता है कि इस अधिवेशन में पहली बार अनुमानतः 20 हजार प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने उच्च मध्यम वर्ग की सस्था के स्थान पर सच्चे और पूर्ण अर्थों में किसी सर्व-साधारण संस्था का रूप ले लिया था।

सन् 1921 में गांधीजी भारतीय जनता के बीच मे असहयोग का सन्देश लेकर अवतरित हुए। जनता का देशव्यापी समर्थन मिला। जनता के उत्साह को देखकर अंग्रेज चकित हो गए। असहयोग का उद्देश्य था– ब्रिटिश की भारत मे जो भी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सस्थाएँ थी, उन सबका बहिष्कार कर दिया जाए और इस प्रकार सरकारी मशीनरी को बिल्कुल ठप्प कर दिया जाए[1] स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार आन्दोलन का कार्यक्रम निम्न प्रकार था –

1. सरकारी वैतनिक तथा अवैतिनिक पदों और उपाधियो का परित्याग।
2. सरकारी और अर्ध सरकारी स्कूल और कॉलेजो का बहिष्कार।
3. 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत होने वाले चुनाओ का बहिष्कार।
4. सरकारी अदालतो का बहिष्कार
5. विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार।
6. सरकारी और अर्घ सरकारी उत्सवो एंव समारोहो का बहिष्कार।
7 भारतीय तथा मैसोपोटेमिया में सैनिक, क्लर्क या मजदूर के रूप मे कार्य करने से इन्कार करना।

आन्दोलन का प्रारम्भ गांधीजी ने अपने "केसर-ए-हिन्द" की पदवी को वापस देकर किया। लाखो लोगो ने असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया। इन निषेधात्मक कार्यक्रम के अतिरिक्त सकारात्म पक्ष भी था। इसके अन्तर्गत निम्न कार्यक्रम सम्मिलित थे :—

1. राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओ की स्थापना।
2 विवादो को निपटाने के लिए निजी पंचायतों को स्थापना।
3. दस्तकारिता का पुनरुद्धार।
4. स्वदेशी वस्तुओं का व्यापक प्रचार।
5. छुआ-छूत का उन्मूलन।

17 नवम्बर 1921 को प्रिन्स ऑफ वेल्स बम्बई उतरे और कांग्रेस के निश्चयानुसार बम्बई मे हड़ताल द्वारा उनका स्वागत किया गया। उस दिन हड़तालियों और स्वागत करने वालों के बीच संघर्ष भी हुआ, जिसमे पुलिस की गोली से 52 व्यक्ति मारे गए और सैकडो घायल हुए। इस घटना पर गांधीजी ने प्रायश्चित्त के रूप मे पाँच दिन का उपवास किया। फलतः बहिष्कार का कार्यक्रम शान्तिपूर्वक ही गया।

लेकिन अंग्रेज शासन का अपना दमन-चक्र जारी रहा। दिसम्बर 1921 तक कांग्रेस के अनेक चोटी के नेताओ को गिरफ्तार कर लिया गया। जिनमे गांधीजी, चित्तरंजनदास, मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, मौलाना-आजाद, इत्यादि थे। उस समय गिरफ्तार हुए व्यक्तियो की संख्या लग-भग 60 हजार थी। लेकिन जनता का उत्साह कम नही हुआ। इस सम्बन्ध में पं. नेहरू लिखते हैं:– किशोर और नवयुवक पुलिस की गाडियो मे जा बैठते और उतरने से इंकार कर देते। पुलिस और जेल-अधिकारी इन असाधारण घटनाओ से चकित और किंकर्तव्य विमूढ़ हो रहे थे।"

दिसम्बर 1921 को अहमदाबाद अधिवेशन मे व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करने का निश्चय किया गया और एक प्रस्ताव द्वारा गांधीजी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सर्वाधिकारी नियुक्त किया गया।

5 फरवरी 1922 को एक ऐसी घटना घटित हुई जिसने सम्पूर्ण राजनैतिक स्थिति को ही बदल दिया था। फरवरी 1922 को गांधीजी ने वायसराय को सरकारी नीति मे परिवर्तन करने के लिए सात दिन का अन्तिम चेतावनी-पत्र लिखा था। सात दिन का समय अभी पूरा ही नही हुआ था कि गोरख-पुर जिले के चौरा–चौरी किसानो की एक भीड और पुलिस के बीच भिडन्त हो गई। उत्तेजित किसानो ने एक थानेदार और 21 सिपाहियों को थाने मे खदेड दिया और थाने को आग लगा दी। वे सब आग मे जलकर मर गए। गांधीजी को इसी और दूसरी अन्य घटनाओ के कारण बहुत दुःख हुआ। इन घटनाओं से यह मालूम पड़ रहा था कि आन्दोलन हिंसात्मक होता जा रहा

था। गांधीजी की राय से कांग्रेस–कार्यसमिति ने कानून तोड़ने वाले अपने असहयोग कार्यक्रम को स्थगित कर दिया। रचनात्मक कार्यक्रम पर बल दिया गया —

(क) कांग्रेस के लिए एक करोड़ सदस्य बनाना।

(ख) चर्खे का प्रचार।

(ग) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना।

(घ) मादक द्रव्य–निषेध।

(ङ) पंचायतें संगठित करना।

(च) अस्पृश्यता निवारण इत्यादि।

आन्दोलन स्थगित किये जाने के दूसरे ही दिन 12 फरवरी को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गए और उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। उन्हे 6 वर्ष की सजा दी गई। इस प्रकार असहयोग–आन्दोलन की पहली अवस्था खत्म हो गई।

गांधीजी द्वारा आकस्मिक रूप से असहयोग-आन्दोलन स्थगित करने का जो निर्णय लिया गया, उसका देश के अन्य नेताओं द्वारा व्यापक विरोध हुआ। सुभाषचन्द्र बोस ने कहा– "ठीक उस समय, जब कि जनता का उत्साह चरमोत्कर्ष पर था, वापस लौटने का आदेश दे देना राष्ट्रीय दुर्भाग्य से कम न था।" चित्तरंजनदास ने कहा "महात्माजी किसी भी अभियान का आरम्भ बड़े शानदार ढंग से करते हैं, वे उसे निपुणतापूर्वक आगे बढाते हैं, उन्हें एक के बाद एक सफलता मिलती जाती है, यहाँ तक कि वे अपने अभियान के चरम शिखर पर पहुँच जाते हैं, लेकिन तब उनकी हिम्मत छूट जाती है और वे लड़खड़ाने लगते हैं।" इस प्रकार बड़ी संख्या में कांग्रेसियों ने आन्दोलन – स्थगित के निर्णय को राष्ट्रीय अपमान अनुभव किया। फलत 24 फरवरी को दिल्ली में आयोजित विषय समिति की बैठक मे गांधीजी के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया गया।

1922 मे जिस आकस्मिक ढग से असहयोग–आन्दोलन स्थगित किया गया, उससे इस आन्दोलन की दुर्बलताएँ स्पष्ट हो गईं। सब से बडी दुर्बलता राजनीति मे धर्म का प्रवेश था, जिसके दूरगामी परिणाम अच्छे नही निकले। गाधीजी ने हिन्दू–मुस्लिम सहयोग की स्थापना के लिए ऐसा किया था, लेकिन इसका दूरगामी परिणाम हिन्दू–मुस्लिम तनाव के रूप मे प्रकट हुआ।

इन दुर्बलताओ के बावजूद असहयोग आन्दोलन ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक जन–आन्दोलन का रूप प्रदान कर दिया था। यह भारतीय स्वतन्त्रता की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कदम था। असहयोग आन्दोलन की महत्ता के सम्बन्ध मे सुभाषचन्द्रबोस ने लिखा है– "1921 के वर्ष ने निस्सन्देह एक सुव्यवस्थित दलीय सगठन प्रदान किया। इसके पूर्व काग्रेस एक वैधानिक दल और मुख्यतया बात करने वाली सस्था थी। महात्मा गांधी ने इसे नया विधान दिया और देशव्यापी बनाया। उन्होने इसे एक क्रान्तिकारी सगठन के रूप मे भी परिवर्तित कर दिया। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक एक जैसे नारे लगाये जाने लगे, एक जैसी नीति और विचारधारा हर जगह दिखाई देने लगी। अग्रेजी भाषा का महत्त्व जाता रहा और काग्रेस ने हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के रूप मे स्वीकर कर लिया। खादी अब काग्रेसियो की नियमित पोशाक बन गई।

(आ) नेहरू–युग

पं. जवाहरलाल नेहरू सन् 1928 मे काग्रस के अध्यक्ष बने। काग्रेस में बिल्कुल यह प्रथम अवसर था, जब पिता के बाद पुत्र सभापति बना हो। पं. नेहरू के अध्यक्ष बनने के साथ ही कांग्रेस के इतिहास मे एक नये नेहरू-युग का आरम्भ हुआ। "पूर्ण स्वतन्त्रता" और 'समाजवाद' की माँगें कांग्रेस–मच से उठायी गयी। 31 दिसम्बर 1929 को लाहौर अधिवेशन मे नेहरू जी ने पहली बार "इन्कलाब–जिन्दाबाद" के नारे के साथ "पूर्ण स्वतंत्रता" का प्रस्ताव पास कराया। अधिवेशन में निश्चय किया गया प्रतिवर्ष 26 जनवरी को स्वाधीनता-दिवस मनाया जाए और उस दिन देश के एक–एक व्यक्ति से आजादी का

वचन लिया जाए। इससे देश की युवा-पीढी का उत्साह बढा और उनमें आशाएँ बलवती बन गयीं। वामपंथीगुट ने श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा श्रीनिवास अय्यगार के नेतृत्व मे "कांग्रेस जनतन्त्रवादी दल" की स्थापना की। वे कांग्रेस के साथ जुडे रहे। पं. नेहरू की यह मान्यता रही है कि आम जनता की समस्याएँ समाजवादी व्यवस्था के बिना हल नही हो सकती। कांग्रेस की विचारधारा पूँजीपति वर्ग से प्रभावित थी। कांग्रेस का स्वप्न था विदेशी पूँजीपतियो की जगह देशी पूँजीपतियो का प्रभुत्व हो। इसलिए सन् 1934 मे युवापीढी के सक्रिय प्रयास से पटना मे आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता मे कांग्रेस के अन्तर्गत "कांग्रेस समाजवादी पार्टी" की स्थापना हुई। इस पार्टी का लक्ष्य था शोषित साधनहीन जनशक्ति के द्वारा देश मे "पूर्ण स्वराज्य" और जनतंत्र के लक्ष्य के लिए संघर्ष करना।

साइमन कमीशन और नेहरू-रिपोर्ट

स्वाधीनता-आन्दोलन दिन-प्रति-दिन तीव्र होने के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने भारतीय प्रान्तो मे शासन और प्रतिनिधि संस्थाओ की कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए 8 नवम्बर 1927 को उदारदल के सदस्य सर जॉन साइमन की अध्यक्षता मे 7 सदस्यीय राजकीय कमीशन की नियुक्ति कर दी। यह कमीशन अपने अध्यक्ष के नाम पर "साइमन कमीशन" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस घोषणा से राष्ट्रीय आन्दोलन को नवजीवन और गति मिली। फलस्वरूप अपूर्व राजनैतिक आन्दोलन का जन्म हुआ।

साइमन कमीशन भारत आनेवाला था। कमीशन के गठन तथा उसके सीमित उद्देश्यो के कारण कांग्रेस ने दिसम्बर 1927 के अपने मद्रास वाले अधिवेशन मे शाही-कमीशन के बहिष्कार का प्रस्ताव पारित किया और अपने आन्दोलन को तीव्र कर दिया। साइमन कमीशन 3 फरवरी 1928 को भारत आया। सारे भारत मे हड़ताल हुई और कमीशन बहिष्कार का आन्दोलन उस दिन से आरंभ हुआ। स्थान-स्थान पर काले झण्डो व "साइमन वापस जाओ" के नारो से कमीशन का विरोध किया गया। अनेक स्थानो पर पुलिस तथा जनता के बीच संघर्ष हुआ। उत्तर भारत मे पं. नेहरू, गोविन्दबल्लभपन्त,

पंजाब में लाला लाजपतराय, आन्ध्र में टी. प्रकाशम पन्तुलु इत्यादि नेताओं ने बहिष्कार आन्दोलन का नेतृत्व किया।

भारतीय-जनता के विरोध–प्रदर्शनों के बावजूद कमीशन ने अपना जाँच कार्य जारी रखा। साइमन–कमीशन दो बार भारत आया और इसने दो वर्ष तक कठिन परिश्रम करके अपनी रिपोर्ट मई 1930 को प्रकाशित कर दी। द्वैध शासन की समाप्ति, प्रान्तीय स्वशासन और संघ शासन की स्थापना, मताधिकार और धारा–सभाओं का विस्तार, साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को पूर्ववत् जारी रखना इत्यादि सिफारिशें रिपोर्ट में दी गई थी। रिपोर्ट की सिफारिशों के सम्बन्ध में भारतीय नेताओं की तीव्र प्रतिक्रिया हुई– "यह रिपोर्ट रद्दी कागजों की ढेरी में रखने योग्य है।'

(इ) नेहरू–रिपोर्ट

साइमन–कमीशन, सारे देश में व्यापक विरोधी की प्रतिक्रिया स्वरूप अनुदार भारत मंत्री लार्ड बर्किन हैड ने भारतीय नेताओं को एक ऐसे संविधान का निर्माण करने जिसे भारत के सभी राजनैतिक पक्ष स्वीकार करते हो, ब्रिटिश संसद के सम्मुख प्रस्तुत करने की चुनौती दी। भारत मंत्री की यह विश्वास था सर्वदल सम्मत संविधान का निर्माण नहीं किया जा सकता, परन्तु राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा भारत मंत्री की चुनौती स्वीकार कर ली गई। 28 फरवरी 1928 को दिल्ली में डॉ. एम. ए. अंसारी की अध्यक्षता में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में उपस्थित सभी संस्थाओं की यह सम्मति थी कि "पूर्ण उत्तरदायित्व" शासन को आधार मानकर ही भारत की वैधानिक समस्या पर विचार किया जाए। दो महीनों में कुल मिलाकर 25 बैठकें हुईं और अधिकांश प्रश्नों पर सहमति हो गई। 19 मई 1928 को बम्बई में डॉ अन्सारी की अध्यक्षता में सम्पन्न सम्मेलन में भारतीय विधान के सिद्धान्तों का प्रारूप तैयार करने के लिए पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति गठित हुई और श्री जवाहरलाल नेहरू सचिव नियुक्त हुए। सर तेज-बहादुरसप्रू, सर अली इमाम, श्री एम. एस. अणे, सरदार मंगल सिंह, श्री शुएब कुरैशी, श्री जी. आर. प्रधान तथा श्री सुभाषचन्द्रबोस सदस्य मनो-

नीत हुए। इस समिति ने तीन मास के अनवरत परिश्रम के बाद एक रिपोर्ट तैयार की, जो "नेहरू रिपोर्ट" के नाम से विख्यात् है। इस रिपोर्ट में औपनिवेशिक स्वराज्य, प्रान्तों मे उत्तरदायी शासन, केन्द्र मे पूर्ण उत्तरदायित्व शासन, द्वि-सदनात्मक केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा की स्थापना, साम्प्रदायिक निर्वाचन का अन्त, मौलिक अधिकार-प्रदान करना सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना, सिन्ध और बलूचिस्तान अलग प्रान्तों का निर्माण इत्यादि सिफारिशें की गई थी। अगस्त 1928 मे लखनऊ मे सम्पन्न सर्वदलीय सम्मेलन में नेहरू-रिपोर्ट को मामूली सशोधनो सहित स्वीकार कर लिया गया। "राजनैतिक विकास की दिशा मे एक महान् कदम" के रूप में कांग्रेस कार्यसमिति ने रिपोर्ट का अनुमोदन किया। पृथकतावादी राष्ट्वादी मुसलमानो ने नेहरू-रिपोर्ट का समर्थन किया, किन्तु साम्प्रदायिक तत्वो ने विरोध किया। 31 दिसम्बर 1928 को दिल्ली मे सम्पन्न पृथकतावादी सर्वदल मुस्लिम सम्मेलन में एक स्वर मे रिपोर्ट का विरोध किया गया।

नेहरू-रिपोर्ट का महत्त्व इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि स्वतंत्र भारत का सविधान भी अधिक सीमा तक नेहरू-रिपोर्ट के अनुरूप है। इसमे कोई सन्देह नही कि नेहरू-रिपोर्ट अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनात्मक प्रयास था। इसने देश के सम्मुख एक आदर्श उपस्थित किया।

(ई) सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा गोलमेज-सम्मेलन

ब्रिटिश सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट स्वीकार न करने पर कांग्रेस ने लाहौर के 1929 के अधिवेशन मे सविनय अवज्ञा आन्दोलनल का निश्चय किया तथा कांग्रेस कमेटी को अधिकार दिया कि जब कभी उचित समझे वह निश्चित क्षेत्र या सम्पूर्ण देश मे कर-रहित सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ कर सकती है। बाद में 14 से 16 फरवरी 1930 तक साबरमती में हुई कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक मे गांधीजी को पूर्ण अधिकार दे दिए गए।

वायसराय से सन्तोषजनक उत्तर न मिलने पर गांधीजी ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। 12 मार्च 1930 को नमक कानून तोडने

के लिए अपने प्रशिक्षित अनुयायियों के साथ डंडी-यात्रा पर चल पड़े । 24 दिन में 200 मील-यात्रा कर गांधीजी 5 अप्रैल 1930 को समुद्रतट डाडी पहुँचे और छः अप्रैल को नमक कानून का उल्लघन कर सत्याग्रह का श्रीगणेश किया। इस आन्दोलन को गाँव-गाँव तक पहुँचाया गया। बहुत शीघ्र ही आन्दोलन व्यापक हो गया। 4 मई 1930 को गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। महानगरों में हड़तालें हुईं, आन्दोलन जोर पकड़ता गया। अनेक लोगो ने अपनी सरकारी नौकरियों को त्याग दिया। पटेल-पटवारियों ने भी त्याग-पत्र दे दिये। इस आन्दोलन की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि हजारों महिलाओ ने स्वाधीनता सेनानियों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर आन्दोलन मे भाग लिया। पुलिस ने दमनकार्य तेज कर दिया। अनेक स्थानो पर निर्ममता पूर्वक लाठी प्रहार किया गया। लाठी प्रहार में अनेक पुरुषो और स्त्रियो की हत्या हो गई। इसी बीच गांधी-इरविन समझौता हो गया। अत आन्दोलन स्थगित कर दिया गया किन्तु इरविन चला गया और विलिंगडन वायसराय बनकर भारत आया। नये वायसराय ने ईमानदारी से समझौता का पालन नहीं किया। गांधीजी द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे गए किन्तु वे खाली हाथ लौट आए। कोई लाभ न हुआ।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुन. 3 जनवरी 1932 को शुरू किया गया। सरकार की ओर से बड़ी कठोरता के साथ दमन नीति चलायी गई। गांधीजी ने 17 मई 1933 को आन्दोलन स्थगित कर दिया और व्यक्तिगत सविनय-अवज्ञा आन्दोलन चलाया। सात मास के बाद इस आन्दोलन को भी समाप्त कर दिया गया। इस पर गांधीजी के नेतृत्व की कटु आलोचना हुई। आलोचकों मे विट्ठलभाई पटेल, सुभाषचन्द्र बोस और जवाहरलाल नेहरू प्रमुख थे। गांधीजी 28 नवम्बर 1934 को कांग्रेस से अलग हो गए। अपना सारा समय उन्होंने हरिजनोद्धार आदि रचनात्मक कार्यों में लगा दिया।

प्रथम गोलमेज-सम्मेलन कांग्रेस के अभाव मे असफल हो चुका था। भारत का वायसराय ने अनुभव किया कि बिना कांग्रेस-सहयोग के भारत को शान्त नही किया जा सकता और न कोई समस्या ही हल हो सकती है। इसलिए वायसराय ने गांधीजी से वार्ता की और फलस्वरूप दोनो के बीच

दिनांक 5 मई 1931 को एक समझौता हुआ जिसे 'गांधी-इर्विन समझौता' कहते हैं। युवा पीढी के द्वारा इस समझौता की कटु आलोचना हुई। भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू को फांसी से बचा न सकने के कारण गांधीजी के विरुद्ध प्रदर्शन हुए। देश की सारी जनता निराश हुई। फिर भी गांधी–इर्विन समझौते की सब से बडी उपलब्धि यह थी कि भारतीय कांग्रेस को ब्रिटिश सरकार के द्वारा भारतीय जनता के प्रतिनिधि संस्था के रूप में मान्यता मिलना है।

पहला गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर 1930 से 19 जनवरी 1931 तक, दूसरा गोलमेज सम्मेलन 17 सितम्बर से 1 दिसम्बर 1931 तक और तीसरा गोलमेज सम्मेलन 17 नवम्बर 1932 लन्दन मे सम्पन्न हुआ, किन्तु कांग्रेस ने पहला और तीसरे सम्मेलन मे भाग नही लिया। बिना कांग्रेस के प्रथम गोलमेज सम्मेलन के आयोजन पर प्रतिक्रिया स्वरूप डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने "दूलहे बिना सम्पन्न होनेवाला विवाह" कहा था।

प्रथम और द्वितीय गोलमेज सम्मेलन मे साम्प्रदायिकता की समस्या को हल नही किया जा सका था। इसलिए द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के अन्त मे प्रधान मंत्री रैम्जे मैकडानल्ड ने एक काम चलाऊ योजना की घोषणा की, जो साम्प्रदायिक अवार्ड के नाम से प्रसिद्ध है। अवार्ड ब्रिटिश शासन को फूट डालो और शासन करो वाली नीति का एक भाग था। अवार्ड के द्वारा प्रयत्न किया गया था कि जाति और धर्म का भेदभाव और अधिक उग्र हो जाये। इस घोषणा का तीव्र विरोध किया गया। गांधीजी ने इस घोषणा के विरुद्ध 18 अगस्त 1932 को आमरण अनशन करने की घोषणा की और 20 सितम्बर को यर्वदा जेल मे अपना अनशन शुरू कर दिया। देश मे हलचल मच गई। देश के नेताओ के प्रयासों के फलस्वरूप 24 सितम्बर को एक समाधान निकल आया। इसे सभी दलों और गांधीजी ने स्वीकार कर लिया। 26 सितम्बर को साय गांधीजी ने अनशन तोड दिया। यह समाधान "पूना–पैक्ट" के नाम से जाना जाता है।

31 मार्च 1933 को दिल्ली मे कांग्रेस कार्यकर्ताओ की एक बैठक डॉक्टर अंसारी के सभापतित्व मे हुई। इस बैठक मे आगामी चुनावों मे भाग

लेने की अनुमति दी गई। गांधीजी ने भी अपनी सहमति दे दी। भारतीय शासन अधिनियम 1935 के आधार पर सम्पन्न चुनावों में कांग्रेस ने भाग लिया। 1937 में जो चुनाव-परिणाम सामने आये, वे अधिक उत्साहवर्धक थे। 11 में से 6 प्रान्तो मे कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ था और शेष तीन प्रान्तो मे कांग्रेस सब से बड़ा दल था। 1937 में 11 मे से 8 प्रान्तो में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलो का निर्माण हुआ और अनेक जनहित कार्य किये गए। तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड-लिनलिथगों ने कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के कार्यों की बहुत प्रशंसा की थी। सितम्बर 1939 ई. को द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ तो इंग्लैण्ड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। भारत के वाय-सराय ने भारतीय नेताओ, कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलो या केन्द्रीय विधान सभा से बिना परामर्श के यह युद्ध की घोषणा कर दी थी तो अपना अपमान समझकर कांग्रेस मंत्रिमण्डलो ने तुरन्त त्याग-पत्र दे दिया।

स्वराज्य दल की स्थापना

विधान-सभाओं में स्वराज्यदल का जूझारू संग्राम

फरवरी 1922 में असहयोग-आन्दोलन के स्थगन के निर्णय से कांग्रेस-जनो में असन्तोष व्याप्त हो गया था। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद राज-नीतिक क्षेत्र में ऐसा कोई एक व्यक्ति नही था, जिसकी ओर भारतीय जनता नेतृत्व के लिए देखती। निराशा एवं अशान्ति सर्वत्र व्याप्त थी। दूसरी ओर असहयोग-आन्दोलन-काल की हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्थान साम्प्रदायिक तनाव और दगो ने ले लिया। इस सम्बन्ध मे पं. नेहरू का अभिमत है "सर-कारी अधिकारियो और खुफ़िया विभाग का दूसरा तरीका यह था कि वे साधुओ और फ़कीरों के वेश में अपने खुफिये एजेण्टों को साम्प्रदायिक झगड़े और दंगे खड़े करने को भेजते थे।"

परिवर्तित स्थिति के मूल्याकन और भविष्य के मार्ग-निर्धारण के लिए काग्रेस ने "सविनय अवज्ञा जाँच समिति" नियुक्त की। इस समिति ने देश भर का दौरा किया। समिति ने जो सिफारिशे पेश की हैं, उनमें 1919 के अधिनियम के आधार पर निर्मित परिषदो मे प्रवेश के सम्बन्ध मे सदस्यो का तीव्र मतभेद सामने आया। काग्रेस दो वर्गो मे बँट गया– एक अपरिवर्तनवादी वर्ग जिसमे चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, डॉ अन्सारी तथा कस्तूरी रगा अय्यर थे। यह वर्ग गाधीजी की नीतियो का समर्थक व कौंसिल प्रवेश का विरोधी था। इस वर्ग का यह दृढ़ मत था कि वर्तमान स्थिति मे कांग्रेस के द्वारा गाधीजी द्वारा सुझाये गये रचनात्मक कार्य किये जाने चाहिए।

दूसरी ओर देशबन्धु चित्तरजनदास, मोतीलाल नेहरू, हकीम अजमल खाँ और विट्ठल भाई पटेल थे, जिनका विचार था कि परिषदो मे प्रवेश कर स्वराज्य प्राप्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। काग्रेस का यह वर्ग "परिवर्तनवादी" के नाम से विख्यात है। इस वर्ग का तर्क था– 'शेर को उसकी माँद मे जाकर पराजित करना।" इस वर्ग का मत था कि असहयोग–आन्दोलन विफल हो गया है और इस परिवर्तित स्थिति मे सत्याग्रह पजाब तथा खिलाफत सम्बन्धी सरकार की भूलों को सुधारने हेतु तुरन्त स्वराज्य की माँग के आधार पर निर्वाचनों मे भाग ले।

नवम्बर 1922 मे कलकत्ते में आयोजित काग्रेस कार्यकारिणी की बैठक मे "कौंसिल प्रवेश" के प्रश्न पर दोनो वर्गों मे बडा सघर्ष छिड गया। अन्त में जब "कौंसिल प्रवेश" के प्रस्ताव पर मतदान हुआ तो 890 मतों के मुकाबिले 1748 मतो से प्रस्ताव तो गिर गया और अपरिवर्तनवादियो की विजय हो गई– तत्काल उसी बैठक मे अध्यक्ष चित्तरजनदास तथा महामत्री श्री मोतीलाल नेहरू ने त्याग–पत्र दे दिये।

1 जनवरी सन् 1923 को देशबन्धु तथा मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल की स्थापना की और इस दल के सिद्धान्तो का प्रचार करने के लिए देश-व्यापी दौरा किया। सर्वत्र इनका भव्य स्वागत किया गया और स्वराज्यदल की दिन–प्रति–दिन लोकप्रियता बढ़ती गयी।

स्वराज्यदल का उद्देश्य 1923 मे स्वराज्यदल का चुनाव घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमे उस दल का प्रथम लक्ष्य यह बताया गया था कि भारतीय शासनतत्र पर भारतीय जनता का अधिकार स्वीकार किया जाए। यदि सरकार हमारे इस अधिकार को स्वीकार न करे तो शासन कार्य का चलाना असम्भव कर दें। स्वराज्यदल की स्थापना का मुख्य उद्देश्य :

भारत को स्वराज्य दिलाना और उस परिपाटी का अन्त करना जो ब्रिटिश सत्ता के आधीन भारत मे विद्यमान थी। स्वराज्यदल की मुख्य-नीति अडगेबाजी नीति के द्वारा सरकारी कार्यो मे असहयोग करना था।

बाद मे मौलाना आजाद के प्रयत्नो से काग्रेस और स्वराज्यदल मे समझौता हो गया। सितम्बर 1923 को दिल्ली मे मौलाना आजाद की अध्यक्षता में सम्पन्न काग्रेस के विशेष अधिवेशन मे "कौसिल प्रवेश" सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया कि काग्रेस के सदस्य आगामी नवम्बर मास मे होनेवाले निर्वाचनो मे भाग ले सकते हैं।

स्वराज्य दल की सफलता

काग्रेस का समर्थन प्राप्त कर स्वराज्यदल ने नवम्बर 1923 के निर्वाचन मे भाग लिया। चुनाव मे सफलता प्राप्त करने के लिए स्वराज्यवादी नेताओ विशेषकर देशबन्धु चित्तरंजनदास ने बहुत अधिक प्रयास किया और उन्हें अपने प्रयास का वाछित परिणाम भी प्राप्त हुआ। उन्होने केन्द्रीय व्यवस्थापिका के 145 स्थानो मे से 45 पर अधिकार प्राप्त कर लिया और बगाल तथा मध्यप्रान्त की व्यवस्थापिकाओ मे तो उन्हे पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। स्वराज्य दल की स्थापना हुए अभी नौ मास ही हुए थे, दल की यह सफलता विशेष उपलब्धि थी।

निर्वाचन के बाद केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा तथा प्रान्तीय विधान परिषदो में प्रारम्भ में स्वराज्यदल की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। 1924-25 के बजट को अस्वीकार करने के अतिरिक्त स्वराज्यदल ने अनेक

सरकारी प्रस्तावों को गिराया और अनेक निजी प्रस्तावों को पास कराया। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा मे स्वराज्यदल के नेता श्री मोतीलाल नेहरू ने 8 फरवरी 1924 के अधिनियम के सशोधन करने के अभिप्राय से एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जो विरोध करने पर भी स्वीकृत हो गया। फलस्वरूप भारत सरकार के गृह सदस्य सर मुडीमैन की अध्यक्षता मे 1919 के अधिनियम की क्रियान्विति की जाँच-समिति गठित हुई। श्री सी. डी. अय्यगारने केन्द्रीय विधान-सभा मे एक प्रस्ताव द्वारा बगाल के दमनकारी अध्यादेशो का अन्त करने का प्रयत्न किया, जो स्वीकृत हुआ। उसी प्रकार फरवरी 1925 मे श्री विट्ठलभाई पटेल ने अपने दमनकारी कानूनो का समाप्त करने का प्रस्ताव प्रस्तावित किया, केवल एक को छोडकर अन्य कानूनो के सम्बन्ध मे स्वीकृत हो गया। इस प्रकार स्वराज्यदल की भूमिका शुरू-शुरू मे जूझारू रही है।

सन् 1925 मे स्वराज्यदल के जन्मदाता देशबन्धु चित्तरजनदास की मृत्यु हो जाने के कारण स्वराज्यदल को बहुत बडी क्षति हुई। उनकी मृत्यु के बाद स्वराज्यदल मे फूट पड़ गयी थी। दल दो पक्षों- सहयोगी और असहयोगी मे बँट गया था। दल की नीति मे, जो प्रारम्भ मे सरकार के साथ असहयोग की नीति और दल के कार्यों मे अडगे लगाना था, बाद मे स्वराज्यदल स्पष्टतया सहयोग की नीति की ओर झुकाव-परिवर्तन से दल को बहुत बडा धक्का लगा।

स्वराज्यदल अपनी अडगा-नीति मे अधिक सफल न हो सका और न स्वय स्वराज्य के लक्ष्य को ही प्राप्त कर सका, फिर भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास मे स्वराज्यदल का अमूल्य योगदान रहा है। जनता मे इस दल ने आशा और उत्साह का सचार किया। शिक्षित जनता को काग्रेस के समीप लाया और बडी भारी राष्ट्रीय चेतना जगाई। साइमन-कमीशन ने भी स्वराज्यदल को एक सुसगठित तथा अनुशासन-प्रिय राजनैतिक दल कहा था, जिसके पास अपना एक सुनिश्चित कार्यक्रम था। अडगा-नीति के औचित्य को स्वीकार करते हुए ब्रेलसफोर्ड ने लिखा- "मेरे विचार से अडगा लगाने की नीति उचित ही थी, क्योंकि उसने ब्रिटिश अनुदार दल को इस बात का कायल कर दिया कि द्वैध शासन प्रणाली अव्यवहारिक थी। गोलमेज परिषद की

आयोजना, मुडीमैन–कमेटी तथा समय से पूर्व साइमन–कमीशन की नियुक्ति इत्यादि स्वराज्यदल की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं।

अन्त मे श्री एच डी गुप्ता के अभिमत को यहाँ उद्धृत किया जाता है, वे लिखते है– 'स्वराज्यदल ने केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा मे भी प. मोतीलाल नेहरू के नेतृत्व मे महान् सफलता प्राप्त की। इसकी एक प्रमुख विजय श्री विट्ठल भाई पटेल को केन्द्रीय व्यवस्थापिका का अध्यक्ष निर्वाचित करना था। उसके अतिरिक्त दूसरी सफलताएँ भी प्राप्त हुई हैं। अलोकप्रिय कार्यों को रोक दिया गया और राष्ट्र निर्माणकारी कार्यों से सम्बन्धित प्रस्तावो का बहुमत से समर्थन किया गया।"

खान अब्दुल गफ्फ़ार खाँ

खान अब्दुल गफ्फार खाँ

पेशावर के पठानो ने खान अब्दुल गफ्फार खाँ के नेतृत्व मे बहुत बहादुरी दिखलाई। वे 'सरहद-गाधी' के नाम से प्रसिद्ध थे। जब जलियावाला–हत्याकाण्ड हुआ और देश भर मे आन्दोलन चला, उस समय उन्होने अपने गाँव उस्मानजई मे एक सभा की। इसी पर उन्हे जेल भेज दिया गया। वे 1931 तथा 1932 मे पुनः गिरफ्तार हुए और उन्हे तीन वर्ष की सजा हुई। जेल में उन पर दबाव पड़ता रहा, पर उन्होने माफी माँगने से इन्कार किया। ब्रिटिश सरकार यह नही चाहती थी कि पठानों में जरा भी जागृति हो। अब्दुल गफ्फार खाँ ने 1921 में 'खुदाई खिदमतगार' संस्था की स्थापन की।

अमानवीय यातनाएँ भी 'सीमान्त गांधी' को कभी भी झुका नही सकी। स्वतंत्रता के बाद यदि वे चाहते तो भारत में रह सकते थे, किन्तु उन्होने घोषणा की कि वे अपने पठान भाइयो को वहाँ अकेला नही छोड़ेंगे। वे

स्वेच्छा से अपनी जन्मभूमि में रहे और पाकिस्तान सरकार के अत्याचारों को उन्होने खुली चुनौती दी। परिणामत. पूरे पन्द्रह वर्षों तक उन्हें पाकिस्तान की विभिन्न जेलों मे बन्द कर अमानवीय यातनाएँ दी जाती रही।

स्वतन्त्रता–आन्दोलन के अग्रणी नेता और महात्मा गाधी के परम अनुयायी 'सीमान्त गाधी' खान अब्दुल गफ्फार खाँ को उनके जीते जी सन् 1987 मे सर्वोच्च 'भारत रत्न' अलकरण से सम्मानित कर भारत सरकार ने सही क़दम उठाया। यह सम्मान एक युग–पुरुष का सम्मान था। बादशाह खान की भारत के स्वतंत्रता–आन्दोलन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। स्वतंत्रता, शान्ति और अहिंसा के लिए जीवन भर संघर्षरत 'सरहद गाधी' ने भारत के विभाजन को दिल से स्वीकार नही किया था। अपने को खुदाई खिदमतगार माननेवाले इस महान् नेता ने अपनी कुर्बानियो और जन–सेवा से करोडो लोगो के दिलो को जीत लिया था।

क्रान्तिकारियों का उग्रवादी आन्दोलन

(1920–1989)

उग्रवाद का स्वरूप

"सर फ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजूए क़ातिल मे है।।"

क्रान्तिकारियों की सशस्त्र–क्रान्ति–आन्दोलन का इतिहास अत्यन्त शौर्यपूर्ण एव देश–भक्ति पूर्ण था, परन्तु दुर्भाग्य से भारतीय नेताओ द्वारा उन्हे समर्थन नही मिल सका, अपितु इस दल की गतिविधियो की खुलकर निन्दा की गई। अंग्रेजो ने तो इन क्रान्तिकारियो को हत्यारे, डाकू और आतकवादी कहा करते थे, जो उचित नही था। किन्तु इन्हे हत्यारे या डाकू के स्थान पर क्रान्तिकारी

ही कहा जाना चाहिए, क्योंकि उनका मूल उद्देश्य हत्या या लूटमार करना नही, अपितु एक वास्तविक क्रान्ति को जन्म देना था। उनका उद्देश्य भारत में विदेशी शासन का अन्त कर सच्चा समाजवादी लोकतंत्र स्थापित करना था जिसमे शोषित एवं उत्पीडित वर्ग का हित-साधन हो। उन्हे आतंकवादी कहना इसलिए भी अनुचित था कि उनका लक्ष्य समाज मे आंतक का राज्य स्थापित करना नही था, वरन् अत्याचारी शासको के मन मे अत्याचारो के विरुद्ध आतंक या भय उत्पन्न करना था।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह भी स्पष्ट हो जानी चाहिए कि क्रान्तिकारी, व्यक्तिगत रूप से अंग्रेजो के शत्रु नही, वरन् भारत मे अंग्रेजी शासन के विरोधी थे। क्रान्तिकारियो द्वारा केवल उन्ही अंग्रेज अधिकारियो या राज-भक्तो की हत्या की गई– जिनके द्वारा निर्ममता पूर्वक भारतीयो के ऊपर अत्याचार या उनकी हत्याएँ की गई थी, जैसे अमृतसर के जलियाँवाला बाग के हत्याकाण्ड के लिए जिम्मेदार गवर्नर ओडवायर, साइमान–कमीशन के बहिष्कार आन्दोलन के समय पंजाब के नेता लाला लाजपतराय की मृत्यु के लिए जिम्मेदार पुलिस कप्तान साण्डर्स तथा काकोरी षडयन्त्र केस मे अंग्रेज सरकार के मुख्य मददगार डी पाई एस. पी रायबहादुर जितेन्द्रनाथ बनर्जी इत्यादि क्रान्तिकारियो की गोली के शिकार हुए। हत्या की ये घटनाएँ व्यक्तिगत प्रतिशोध के रूप मे नही, वरन् राष्ट्रीय प्रतिशोध के रूप मे की गई थी।

उपर्युक्त घटनाओ द्वारा राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया गया, राष्ट्रीय आत्म–सम्मान को जीवित रखा गया और अंग्रेज शासको को यह चेतावनी दी गई कि भारतीय रक्त ठण्डा नही, वरन् अत्यन्त गर्म व जीवित है। यदि उनके द्वारा भारतीयो के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया, तो उन्हे अपने प्राणो से हाथ धोना पड़ेगा, किसी भी कीमत पर उन्हे बख्शा नहीं जाएगा।

क्रान्तिकारियो के लिए– गीता-रामायण की तरह उनका समवेत गीत था :—

"सर फरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल मे है।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल मे है॥"

बाल–पाल–लाल

क्रान्तिकारियों के प्रेरणा–स्रोत थे : नेतात्रय बाल–पाल–लाल (बाल-गंगाधर, विपनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय)। स्वाधीनता–संग्राम में गरमदल के इस नेतात्रय ने युवापीढ़ी को जितनी गहराई तक प्रभावित किया था, उतना नरमदल ने नहीं।

(ख) उग्रवादी–आन्दोलन

प्रथम विश्व महायुद्ध काल में भारतीय क्रान्तिकारियों की गतिविधियाँ बहुत तेज हो चुकी थी। युद्धकाल में भारतीय आन्दोलन का दमन करने के लिए "भारतीय सुरक्षा अधिनियम (OORA) पारित किया गया था। यह अधिनियम केवल युद्ध–काल के लिए था। किन्तु इसे स्थायी रूप देने और क्रान्तिकारी आन्दोलनों से सम्बन्धित अपराधपूर्ण षड्यन्त्रों पर अंकुश लगाने के निमित जस्टिस रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गयी जो रौलट-कमेटी के नाम से प्रसिद्ध है। अप्रैल 1918 में इस कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। अतः सरकार ने इस कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर दो विधेयकों का प्रारूप तैयार किया। इसमें से एक को सरकार ने फरवरी 1919 में अधिनियम का रूप दिया, जो "आतंकवादी और अपराध अधिनियम" कहलाया। इसके अनुसार मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार मिल गया था कि वे संदिग्ध क्रान्ति-कारियों की गिरफ्तारी के लिए, नजरबन्दी का आदेश जारी कर सकते थे।

फिर इसके बाद दूसरा, 18 मार्च 1919 को रौलट एक्ट पास हुआ, जिसके द्वारा मोतीलाल नेहरू के शब्दो मे– "अपील, वकील और दलील की व्यवस्था का अन्त कर दिया गया।" देश के अनेक नेताओं ने इन अधिनियमो का विरोध किया। गाधीजी ने रौलट एक्ट के विरोध मे सम्पूर्ण देश में 6 अप्रैल 1919 को सार्वजनिक हड़ताल का आह्वान किया, जो सारे देश मे नगरो-गाँवो में सभी जगह शान्तिपूर्ण हड़ताल सफल हुई। इस प्रकार गाधीजी के "सत्याग्रह" का जन्म सार्वजनिक हड़ताल के रूप मे हुआ था। फिर असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन चल पड़े। भारतीय राजनीति मे "गाधीयुग" प्रारम्भ हुआ। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय क्रान्तिकारियो के आन्दोलनो ने गाधीजी को सक्रिय रूप से राजनीति में परिचालित किया था। फलत: राजभक्त गाधी, अहिंसावादी विद्रोही बन गए। देश मे क्रान्तिकारियो के आन्दोलनो के संदर्भ मे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त ने लिखा है– "1921 का असहयोग-आन्दोलन भी रौलट विधेयक से ही निकला था और रौलट विधेयक रौलट कमेटी के गर्भ से निकला था। रौलट-कमेटी केवल क्रान्तिकारियो के आन्दोलन को समाप्त करने के लिए बैठाई गई थी।"

सन् 1922 में गाधीजी द्वारा असहयोग–आन्दोलन आकस्मिक ढग से स्थगित किया गया तो क्रान्तिकारियो को बहुत निराशा हुई। तब उन्होने अनुभव किया कि गाधीजी ने अपना प्रयोग बन्द कर दिया और क्रान्तिकारियो की पहली लपट देखते ही वे पीछे हट गए, तो उन लोगो ने भी फिर से अपना आन्दोलन चालू किया। इस प्रकार अहिंसात्मक आन्दोलन और हिंसात्मक आन्दोलन दोनो अलग-अलग हो गए और गाधीजी के नेतृत्व मे कांग्रेस का अहिंसात्मक आन्दोलन चलता रहा। हर दस साल बाद एक नया आन्दोलन चलाया गया। साथ ही समानान्तर रूप से क्रान्तिकारी आन्दोलन भी चलता रहा। कई बार ये दोनों आन्दोलन एक–दूसरे से प्रभावित भी होते थे और कभी-कभी एक दूसरे के पूरक भी बनते जाते थे।

(ग) आन्ध्रश्री अल्लूरि सीतारामराजु का विद्रोह

आन्ध्रश्री अल्लूरि सीतारामराजु

जिन देशभक्त वीरो ने अपनी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के यज्ञ मे अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया था, उनमे स्वाधीनता सेनानी "आन्ध्रश्री" सीतारामराजु भी एक थे। सीतारामराजु मे असाधारण वीरता, विलक्षण सगठन-शक्ति, अपूर्व साहस विद्यमान था। आन्ध्र की जनता मे उन्होने देशप्रेम की भावना जगाई थी और अग्रेजो के साथ छापामार-लडाई लडी थी। अपनी वीरता से अग्रेज शासको को आतकित कर दिया था।

अल्लूरि का जन्म 4 जुलाई 1897 को विशाखपट्टणम के पाड्रंकि गाँव मे एक साधारण परिवार मे हुआ। बाल्यकाल से ही रामराजु के मन मे देश प्रेम की भावना जागी थी। उनके क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के निर्माण मे उनके पिता वेकटरामराजु का प्रभाव रहा। रामराजु ने महाराष्ट्र, पजाब, बगाल इत्यादि प्रदेशो मे घूमकर क्रान्तिकारियो की रण-नीति का अध्ययन किया। उस समय देशभर मे असहयोग-आन्दोलन जोरो पर था। सुभाषचन्द्र बोस जगह-जगह घूमकर जनता मे देशप्रेम और आत्म-बलिदान की भावना जगा रहे थे। उसी सिलसिले में वे विशाखपट्टणम आये थे। उनकी एक जन-सभा में लाखो लोग जमा हुए थे। उसी सभा मे सीतारामराजु ने स्वाधीनता सग्राम का बीडा उठाया था। नेताजी की प्रेरणा से स्वाधीनता संग्राम मे वे कूद पड़े थे। अविवाहित रहकर देश को स्वतत्र कराने की प्रतिज्ञा की थी।

सीतारामराजु ने विशाखपट्टणम के मन्यम पर्वतप्रदेश को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। वहाँ के गिरिजनो और आदिवासियो का संगठन किया। उन्हे प्रशिक्षित कर एक सेना बनाई और उस क्षेत्र के पुलिस थानो पर आक्रमण कर हथियार और धन जमा किया। सत्ताईस वर्षीय युवानेता ने ढाई-तीन वर्ष

तक अंग्रेजो के साथ लगातार छापामार लड़ाई लडी और अंग्रेजो के छक्के छुडाये । सीतारामराजु के नाम से अंग्रेज भय खाने लगे । सीतारामराजु और उनके साथियो को कुचलने के लिए अंग्रेज सरकार ने सेना और बड़े-बड़े सेनापतियों को मन्यम प्रदेश भेजा । उन सेनापतियो मे प्रथम विश्वयुद्ध के विजयी सेनापति भी थे । रामराजु और अंग्रेज सेना के बीच जबर्दस्त मुठभेड हुई और अन्त मे 24 सितम्बर 1922 को सीतारामराजु की विजय हुई । मन्यम प्रदेश पर उनका अधिकार हो गया ।

सीतारामराजु महान् स्वाधीनता सेनानी थे, परन्तु साथ ही वे एक धार्मिक योद्धा और कर्मयोगी भी थे। उनके अपने सिद्धान्त और आदर्श थे । आगे चलकर ये ही आदर्श उनकी कमजोरी सिद्ध हुए । अन्त मे रामराजु निहत्थे गिरफ्तार कर लिये गए । क्रूर अंग्रेजो ने उन्हे एक पेड से बाँधकर गोलियो से भून डाला । परन्तु सीतारामराजु ने उनके सामने अपना सिर नही झुकाया । "वन्देमातरम्" के नारे के साथ रामराजु 6 मई 1924 को शहीद हो गए । परन्तु आन्ध्र के करोडो नर-नारियो के वे हृदय-सम्राट बन गए ।

श्री सुभाषचन्द्र बोस ने राजु की अन्यायपूर्ण हत्या की तीव्र भर्त्सना की और उनके आत्मोत्सर्ग की सराहना करते हुए कहा– "राष्ट्रीय आन्दोलन में श्री राजु ने जो योगदान दिया, उसकी प्रशंसा करते हुए मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है । ......उनका धैर्य, साहस, देशभक्ति, अखण्ड निष्ठा और पौरुष सदा अविस्मरणीय रहेंगे । मुझे विश्वास है कि भारतीय युवक ऐसे भारतीय वीरो की आराधना करना नही भूलेंगे ।"

इस सम्बन्ध मे डा. एन. पी. कुट्टनपिल्लै के अनुसार "परिस्थितियो, आदर्शों और विचारो की दृष्टि से केरल राज्य के स्वाधीनता सेनानी वेलुत्तम्पी और सीतारामराजु के संघर्षों में पर्याप्त समानता दिखाई देती है । यह दूसरी बात है कि दोनो अमर सेनानी भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास मे उपेक्षित रह गए । बात यह थी, इन दोनो के कार्यक्षेत्र भारत देश के दो छोटे भागों तक सीमित रहे और विशाल अंग्रेज साम्राज्य के सामने दोनो लघु जीव थे ।

पर अपने सीमित क्षेत्र मे ही सही, अपने सीमित साधनों के सहारे इन दो वीरों ने जो स्वतन्त्रता-यज्ञ चलाया था, इतिहास मे उसका सानी नहीं मिलता ।"[1]

सीतारामराजु और क्रान्तिकारी नेता सुभाषचन्द्र बोस के विचारों मे समानता थी । सीतारामराजु को यह विश्वास था अंग्रेजों के सामने याचना के स्वर मे गिडगिडाने से भारत को स्वतन्त्रता कभी नही मिलेगी । अत: भारत के प्रत्येक नौजवान को अपने अधिकार की रक्षा के लिए अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्रता के लिए पूर्ण पौरुष के साथ समर-भूमि मे कूद पडना होगा । इस महायज्ञ मे भारतीयो की विजय सुनिश्चित है ।"

(घ) काकोरी-काण्ड

बंगाल के क्रान्तिकारी
पुलिन विहारी दास

फरवरी 1920 मे जेल से रिहा होने के बाद शचीन्द्र सान्याल के द्वारा भारत वर्ष के सारे क्रान्तिकारी दलो को सगठित करके "हिन्दुस्तान प्रजातांत्रिक सघ" की स्थापना की गई । इस सघ का लक्ष्य रखा गया-सगठित क्रान्ति द्वारा भारत मे गणतात्रिक सघ की स्थापना । रूसी क्रान्ति का प्रभाव सगठन की कल्पना पर था । इसके बाद क्रान्तिकारी आन्दोलन मे तेजी आई । इस क्रान्तिकारी दल के द्वारा देश मे सशस्त्र क्रान्ति-योजना बनाई गई । भारी मात्रा मे खरीदे गए शस्त्रो की कीमत चुकाने के लिए सरकारी खजाने लूटने का कार्यक्रम बनाया गया । यह योजना बनाई गई कि जब रेलगाडी लखनऊ के निकट काकोरी पहुँचे, तो सरकारी खजाने को लूट लिया जाए । तदनुसार 9 अगस्त 1925 को काकोरी के निकट गाडी को रोककर क्रान्तिकारियों द्वारा

---

1. डॉ. एन. पी. कुट्टनपिल्लै : स्वतन्त्रता-सेनानी अल्लूरिसीतारामराजु : पृ. 105

सरकारी खजाना लूट लिया गया। बाद मे पुलिस और गुप्तचर विभाग ने 40 व्यक्तियो को गिरफ्तार कर लिया। इन पर मुकदमा चलाया गया, जो "काकोरी षड्यन्त्र केस" के नाम से जाना जाता है।

अशफाक उल्लाह हुसैन

इस केस मे पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी, रोशनसिंह और अशफाक उल्लाह हुसैन को फाँसी, शचीन्द्रनाथ सान्याल व शचीन्द्र बख्शी को आजन्म कारावास, मन्मथनाथ गुप्त को 14 वर्ष की कैद और अन्य को कई वर्ष की सजाएँ दी गई। परन्तु इससे क्रान्तिकारियो की हिम्मत पस्त नही हुई, अपितु उनका उत्साह और आत्म-बलिदान की भावना और बढती गई। "वन्देमातरम् और भारत-माता की जय" के नारो के साथ क्रान्तिकारी हँसते हुए फाँसी के फँदे मे झूल गए। काकोरी-काण्ड मे रामप्रसाद बिस्मिल की प्रमुख भूमिका थी।

पं. रामप्रसाद बिस्मिल

प रामप्रसाद "बिस्मिल" को गोरखपुर जेल मे 19 दिसम्बर 1927 को फाँसी हुई। फाँसी के कुछ दिन पहले उन्होने अपने मित्र के पास एक पत्र भेजा था। उसमे उन्होने लिखा था. "19 तारीख को जो कुछ होनेवाला है, उसके लिए मैं अच्छी तरह तैयार हूँ। यह है ही क्या ? केवल शरीर का बदलना मात्र है। मुझे विश्वास है कि मेरी आत्मा मातृभूमि तथा उसकी दीन-सन्तति के लिए नये उत्साह और ओज के साथ काम करने के लिए शीघ्र ही फिर लौट आएगी।" "काकोरी षड्यन्त्र केस" मे जिन क्रान्तिकारियो को फाँसी दी गई थी, उसका बदला लेने के लिए पार्टी ने निश्चय किया कि काकोरी केस मे सरकार के मुख्य मददगार डी. वाई. एस. पी. रायबहादुर जितेन्द्रनाथ बेनर्जी को मौत के घाट उतार दिया जाए। यह काम क्रान्तिकारी जुझारू नेता मणीन्द्रनाथ बनर्जी को सौंपा गया। मणीन्द्र ने 13 जनवरी 1928 को गुदौलिया मे मार-

वाडी अस्पताल के सामने जितेन्द्रनाथ को गोली मारी । जितेन्द्र वहीं प्राणशायी हो गया । मणीन्द्र ने उसके पास जाकर कहा "रायबहादुर क्या काकोरी का इनाम अब तुम्हे मिल गया ?" मणीन्द्र को वहीं गिरफ्तार कर लिया गया, परन्तु उनकी पिस्तौल नही मिली । कहा जाता है कि उनके दूसरे साथी प्रभासचन्द्र मणीन्द्र से पिस्तौल लेकर वहां से चम्पत हो गए थे । मणीन्द्र की इस शौर्यपूर्ण कार्रवाई से राष्ट्र-प्रेमियो का सर ऊँचा हो गया और अंग्रेज सरकार दहल गई । बाद मे जेल मे, वहां की यातनाओ के विरुद्ध अनशन करके दिनाक 20 जून 1934 को क्रान्तिकारी मणीन्द्र शहीद हो गए । इस प्रकार हिन्दुस्तान गणतान्त्रिक-संघ, क्रान्तिकारियो को उत्प्रेरित करने की भूमिका निभाकर, मणीन्द्र इतिहास के प्रवाह मे विलीन हो गए ।

(ङ) क्रान्तिकारियों का दर्शन

काकोरी–काण्ड के क्रान्तिकारियो को फाँसी दिये जाने पर देश भर मे तीखी प्रतिक्रिया हुई । लेकिन परिणाम कुछ न निकला । 1928 मे भगतसिंह, "आजाद", बटुकेश्वरदत्त, जतीनदास, सुखदेव, राजगुरु, यशपाल आदि क्रान्तिकारी स्वतंत्रता सेनानियो ने यह अनुभव किया कि बगैर समाजवाद की स्थापना के भारत की गरीबी तथा बेकारी दूर नही की जा सकती । इसलिए दिल्ली के फिरोजशाह कोटला मे बैठक कर "हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन" के स्थान पर "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक पार्टी" बनाई गई तथा इसका एक सैनिक पक्ष "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना" बनाया गया था जिसके प्रधान सेनापति, अमर शहीद चन्द्रशेखर "आजाद" बनाये गए । इस संस्था की शाखाएँ सब जगह स्थापित की गईं तथा इस सेना मे हजारो लोग भर्ती हुए । "सेना" शब्द ही यह बता देता है कि क्रान्तिकारी किस प्रकार और क्या करना चाहते थे ।

इसके बाद क्रान्तिकारी दल का एक स्पष्ट रूप सामने आया । दल का घोषणा-पत्र घोषित हुआ जिसमे दल के उद्देश्य, कार्यक्रम तथा "बम-दर्शन" इत्यादि विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया था । क्रान्तिकारी दलने जो अब

तक एक गुप्त संगठन था, अपनी स्पष्ट स्थिति जनता के सामने रखकर जन-समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। धीरे-धीरे दल को जनता की सहानुभूति और समर्थन प्राप्त होने लगा। क्रान्तिकारी दल ने विशेषकर देश की युवा-पीढ़ी को बहुत गहराई तक प्रभावित किया था। क्रान्तिकारी दल ने "बम-दर्शन" के घोषणा-पत्र मे अपना उद्देश्य बताया :-

"क्रान्तिकारियो का विश्वास है कि देश की जनता की मुक्ति केवल क्रान्ति द्वारा ही सम्भव है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय जनता और विदेश सरकार मे सशस्त्र संघर्ष ही नही है, हमारी क्रान्ति का लक्ष्य एक नवीन न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था है। इस क्रान्ति का उद्देश्य पूंजीवाद को समाप्त कर श्रेणीहीन समाज की स्थापना करना। विदेशी और देशी शोषण से जनता को मुक्तकर आत्म-निर्णय द्वारा जीवन का अवसर देना है।"[1]

(च) राष्ट्रीय अपमान का बदला

20 अक्तूबर 1928 को लाहौर मे साइमनकमीशन का विरोध वयोवृद्ध नेता लाला लाजपतराय के द्वारा किया जा रहा था। अंग्रेज पुलिस कप्तान साण्डर्स के द्वारा लालाजी पर ऐसी भीषण लाठी-वर्षा की गई कि उसके परिणाम स्वरूप 17 नवम्बर 1928 को लालाजी की मृत्यु हो गई। घायल अवस्था मे लाला-लाजपतराय ने सिंह-गर्जना की थी :- "मेरे ऊपर किया गया लाठी का प्रत्येक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के 'कफन' की कील सिद्ध होगा।" इस खबर से सारे देश मे बहुत खलबली मच गई। क्रान्तिकारियो ने यह सोचा कि यदि इस राष्ट्रीय अपमान का बदला न लिया गया, तो जनता को बहुत धक्का लगेगा और साइमन कमीशन के बायकाट से जो जोश उत्पन्न हुआ था, वह समाप्त हो जाएगा। तदनुसार यह निश्चय हुआ कि लाला लाजपतराय की हत्या के लिए जिम्मेदार पुलिस अफसर को मारा जाए। इस कार्य के लिए चार व्यक्ति नियुक्त हुए- 1. चन्द्रशेखर आजाद, 2 भगतसिंह, 3. शिवराम राजगुरू और 4. जयगोपाल। 17 दिसम्बर 1928 को सॅण्डर्स नामक पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट

---

1. यशपाल : सिंहावलोकन-भाग-2 पृष्ठ : 144

अपनी मोटर साइकल पर पुलिस के दफ्तर से निकल रहा था, तो उस पर हमला हुआ। सैण्डर्स वहीं पर गिर पड़ा और क्रान्तिकारी चम्पत हो गए। सैण्डर्स की हत्या से सारे भारत मे खुशी की लहर दौड़ गई, क्योंकि जनता के सामने यह स्पष्ट हो गया कि एक ऐसा भी दल है, जो भारतीयो के लिए भी न्याय दिला सकता है। इस प्रकार क्रान्तिकारियो द्वारा राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया गया।

स्मरण रहे, इसी प्रकार 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जलियांवाला-बाग में घटित निरपराध भारतीयो के हत्याकाण्ड के लिए जिम्मेदार पंजाब के गवर्नर ओडवायर पर क्रान्तिकारी नवयुवक ऊधमसिंह ने इंग्लैण्ड में जाकर गोली मारकर उसकी हत्या कर दी और राष्ट्रीय अपमान का बदला लिया। इस घटना से अंग्रेज सरकार आतंकित हो गई थी। देश में खुशी की लहर दौड़ गई।

वीर ऊधमसिंह

(छ) सशस्त्र क्रान्ति का स्वर्णिम अध्याय

सन् 1929 को क्रान्तिकारी दल द्वारा एक ऐसा साहसिक कार्य हुआ, जिसने न केवल भारत का, अपितु सारे विश्व का ध्यान भारत में चलनेवाले स्वाधीनता–संग्राम की ओर आकर्षित कर लिया था। यह घटना, वास्तव मे स्वाधीनता–संग्राम का एक स्वर्णिम अध्याय है जिसके कारण क्रान्तिकारी दल, सभी आन्दोलनों को पीछे धकेलकर अग्रगामी बन गया था। क्रान्तिकारियो की सूझबूझ–दूरदर्शिता, शौर्य–पराक्रम, त्याग–बलिदान के लिए सारा राष्ट्र गर्व के साथ अपना सर ऊँचा कर सकता है।

अप्रैल 1929 में केन्द्रीय असेम्बली मे "सार्वजनिक सुरक्षा कानून" पर बहस चल रही थी। जनता इस विधेयक के विरुद्ध थी, किन्तु सरकार इसे बलपूर्वक पास करवाना चाहती थी। इसके पहले सरकार द्वारा जनता की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक उद्योग विवाद कानून पास करा दिया था। "हिन्दु-

स्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना" की केन्द्रीय समिति ने निर्णय किया कि इस बिल को रुकवाने और सरकार को जनता की आवाज का मूल्य समझाने के लिए असेम्बली मे बम फेका जाय। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए सरदार भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त को चुनाव गया। यह भी निश्चय किया गया कि य व्यक्ति बम फेंकने के बाद भागे नही, वरन् अपने आपको गिरफ्तार करवा दें, तथा अदालत मे बयान देकर "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना" के उद्देश्य और कार्यक्रम पर प्रकाश डाले।

बटुकेश्वरदत्त

8 अप्रैल 1929 को जब "सार्वजनिक सुरक्षा का बिल" पर मतादान होने वाला था, तो सरदार भगतसिंह ने बडी कुशलता के साथ योजनाबद्ध ढग से केन्द्रीय असेम्बली में बम फेका। असेम्बली मे फेक गये पर्चे मे लिखा हुआ था– "बहरो को सुनाने के लिए बमो की आवश्यकता है।" बम फेंकने का उद्देश्य किसी की हत्या करना नही, वरन् देश मे जागृति पैदा करना ही था। भगतसिंह और बटु-केश्वर दत्त के द्वारा अपने आपको गिरफ्तार करवा दिया गया। पुलिस ने इन पर मुकदमा चलाया। अदालत में सरदार भगतसिंह ने एक लम्बा भाषण देकर "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक दल" के उद्देश्यो और कार्यक्रम पर प्रकाश डाला, जो एक ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण भाषण था :– "क्रान्ति का अभिप्राय बम और पिस्तौल मात्र ही नही है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय यह है कि आज की वस्तुस्थिति और समाज–व्यवस्था जो स्पष्ट रूप से अन्याय पर टिकी हुई है– को बदला जाय। क्रान्ति व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को समाप्त करने और हमारे राष्ट्र के लिए पूर्ण आत्म-निर्णय का अधिकार प्राप्त करने हेतु है। क्रान्ति के हमारे विचार का अन्तिम लक्ष्य यही है। स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इस उच्च आदर्श की प्राप्ति हेतु सभी प्रकार के त्याग करने और कष्ट सहन करने हेतु तत्पर हैं। क्रान्ति जिन्दाबाद!"

4 जून 1929 को अदालत मे सेशन जज के सम्मुख भगतसिंह एव बटु-केश्वरदत्त द्वारा दिया गया सयुक्त बयान था। अन्त मे इस केस से सम्बन्धित तीनो क्रान्तिकारियो को फांसी 23 मार्च, 1931 को दी गई।

लाहौर–सेण्टल जेल की काल–कोठरी से फांसी के फंदे तक जाते समय भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव यह गीत गाते रहे;

"दिल से न निकलेगी मरकर भी वतन की उल्फ़त
मेरी मिट्टी से भी खुशबू–ए–वतन आया करेगी।"

क्रान्तिकारियों को फांसी पर लटकाते हुए

(ज) प्रमुख क्रान्तिकारियों की शहादत

पुलिस ने सरदार भगतसिंह के अतिरिक्त उनके कई साथियों को भी फंसा लिया। 23 मार्च 1931 को सरदार भगतसिंह, शिवराम, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा दे दी गई और उनकी लाशों को चुपके से रात्रि के समय फिरोजपुर मे जला दिया गया। इस सम्बन्ध में डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या ने लिखा है :– "1931 में करांची कांग्रेस अधिवेशन के समय सरदार भगत-सिंह का नाम भारत में उतना ही सर्वप्रिय हो चुका था, जितना कि गांधीजी

शहीद सरदार भगतसिंह

शहीद सुखदेव

शहीद राजगुरु

का।" इन शहीदो के बलिदान पर सारे देश मे गहरा शोक मनाया गया। देशभर मे हड़ताल हुई। इस सम्बन्ध मे पं. नेहरू ने लिखा–" 1929 ई. मे लाहौर में जो षडयंत्र केस चलाया गया था, उसमे एक कैदी यतीन्द्रनाथदास ने जेल के बर्ताव के खिलाफ विरोध–स्वरूप भूखहड़ताल कर दी। यह लड़का आखिर तक अपनी बात पर डटा रहा और इकसठवे दिन मर गया। यतीन्द्रनाथदास के आत्म–बलिदान का हिन्दुस्तान पर गहरा असर हुआ। दूसरी घटना, जिसने देश के दिल पर चोट की और उसे व्यथित किया, 1931 के शुरू मे भगतसिंह को दी जाने वाली फाँसी थी।"[1] इस सम्बन्ध मे गांधीजी का विरोध हुआ "गांधीजी ने वायसराय के सामने समझौता सम्बन्धी जो ग्यारह शर्तें पेश की थी, उनमें एक शर्त देश भर मे शराब निषेध की भी थी, पर भगतसिंह आदि को फाँसी न दिये जाने की कोई शर्त नही थी।" गांधीजी शराब-निषेध के लिए सरकारी शक्ति से जनता पर प्रभाव डालना नैतिक समझते थे, परन्तु भगतसिंह आदि की फाँसी रद्द करने के लिए विदेशी सरकार पर जनमत का दबाव डालना अनैतिक समझते थे।"[2]

---

1. श्री पं. जवाहरलाल नेहरू : विश्वइतिहास की झलक, भाग . 2 पृ. 1040
2. यशपाल : सिंहावलोकन, भाग–3 : पृ. 81

भारत के राष्ट्रपति श्री ज्ञानीजैल सिंह के अनुसार शहीद-ए-आजाम का सारा परिवार देश भक्तिमय था। उनका पूरा परिवार न केवल देश भक्ति के रंग में रगा था, बल्कि देश के स्वाधीनता आन्दोलन मे इस परिवार की तीन पीढियाँ आजादी के लिए लड़ती रहीं और सघर्ष के लम्बे दौर मे बड़ी यातनाएँ सही थी।

(झ) वाइसराय की ट्रेन के नीचे बम-विस्फोट

23, दिसम्बर 1929 की दिल्ली में गाधीजी वाइसराय से भेंट करने वाले थे। वाइसराय दिसम्बर के तीसरे सप्ताह मे कोल्हापुर जाकर 23 दिसम्बर को दिल्ली लौटने वाले थे। क्रान्तिकारी दल ने लार्ड इरविन वाइसराय की स्पेशल ट्रेन को शक्तिशाली बम द्वारा उड़ा देने की योजना बनायी थी। यह महत्त्वपूर्ण कार्य श्री यशपाल और भागराम को सौंपा गया था। क्योंकि राजनैतिक दृष्टि से वाइसराय पर इसी समय आक्रमण करने का विशेष महत्त्व था और इस अवसर से क्रान्तिकारी दल चूकना नही चाहता था।

योजना के अनुसार यशपाल "हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आरमी" के "मेजर" की वर्दी मे और भागराम सूट पहने नियत स्थल पर पहुँच गए और योजना के अनुसार नयी दिल्ली स्टेशन से चार-पाँच मील पहले वाइसराय की रेलगाड़ी के नीचे बम का भयकर विस्फोट किया गया, किन्तु रेल की गति बहुत तेज होने के कारण वाइसराय का कम्पार्टमेंट, विस्फोट की जगह से आगे निकल गया था और वाइसराय बालबाल बच गए। वाइसराय गाड़ी से उतरते ही अपने महल मे जाने से पहले, अपनी प्राण-रक्षा के लिए भगवान को धन्यवाद देने गिरजाघर पहुँचे थे। पुलिस इस बमकाण्ड की सिरतोड़ खोज करने के बावजूद न किसी को गिरफ्तार कर सकी और न योजना का रहस्य ही जान सकी। वाइसराय की गाड़ी पर आक्रमण के समाचार से सारे देश में प्रसन्नता और उत्साह की लहर दौड़ गई किन्तु इस दुर्घटना के दूसरे दिन 24 दिसम्बर को लाहौर के काग्रेसवाले अधिवेशन के प्रारम्भ मे एक प्रस्ताव वाइसराय पर आक्रमण करनेवाले लोगो की निन्दा और वाइसराय के प्रति सहानुभूति और उनकी प्राण-रक्षा के लिए भगवान को धन्यवाद देने सम्बन्धी, दूसरा

प्रस्ताव स्वय गाधीजी ने उपस्थित किया। गाधीजी के पहले निन्दावाले प्रस्ताव मे वाइसराय पर आक्रमण करने वाले लोगो को कायर और उनके काम को जघन्य कहा गया था। इस प्रस्ताव से देश की जनता को जबर्दस्त धक्का लगा। बाद में, क्रान्तिकारियो की इस निन्दा का जवाब, दल द्वारा "बम का दर्शन' सम्बन्धी परिपत्र छापकर जनता मे वितरित किया गया था।

(ञ) चिटगांव में विद्रोह

"हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' की चिटगांव शाखा ने मास्टर दा सूर्यसेन के नेतृत्व मे "भारतीय गणतंत्र वाहिनी" का गठन किया था। इस शाखा ने 28 अप्रैल 1930 को चिटगांव का पुलिस शस्त्रागार को लूटा था। क्रान्तिकारियो ने अपने मुख्यालय पर तिरगा झण्डा फहरा कर स्वतत्र भारत के राष्ट्रध्वज को सैनिक सलामी दी थी। सूर्यसेन ने चिटगांव की मुक्ति और अस्थायी सरकार की स्थापना की घोषणा की थी।

मास्टर दा सूर्यसेन

इन क्रान्तिकारियो ने जलालाबाद की पहाड़ी पर 22 अप्रैल 1930 को जो मुक्ति युद्ध किया था, उसमे 12 क्रान्तिकारी और सरकारी पक्ष के 160 व्यक्ति मारे गए थे। चिटगांव के क्रान्तिकारियो की छापामार लड़ाई चार वर्ष तक चली थी। बाद मे, मास्टर दा सूर्यसेन तथा तारकेश्वरी दस्तीदार को गिरफ्तार कर 12 जनवरी 1934 को फांसी दी गई थी।

सरदार-भगतसिंह की गिरफ्तारी के बाद क्रान्तिकारी दल का नेतृत्व चन्द्रशेखर आजाद, यशपाल और भगवतीचरण बोहरा के हाथ मे आ गया। लेकिन 27 फरवरी 1931 को चन्द्रशेखर और एक अन्य क्रान्तिकारी सुखदेवराज इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क मे मंत्रणा कर रहे थे कि वहाँ पुलिस ने घेरा डाला। पुलिस और आजाद के बीच

चन्द्रशेखर आजाद

स्वतंत्रता की दुर्गा

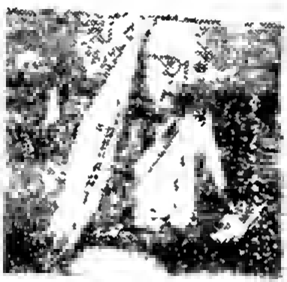

दुर्गा भाभी

मुठभेड हुई और आज़ाद वीरगति को प्राप्त हुए। आजाद की मृत्यु से क्रान्तिकारी दल को बहुत बडी क्षति हुई। जनवरी 1932 मे यशपाल भी गिरफ्तार कर लिये गए और अब क्रान्तिकारी दल प्रभावहीन हो गया।

(ट) फ्लावर्स दरबार

30 अप्रैल 1930 को ऊटी में "फ्लावर्स दरबार" होनेवाला था जिसमें गवर्नर शरीक होने वाले थे। क्रान्तिकारी दादा शम्भुनाथ आजाद के नेतृत्व में गवर्नर–वध की योजना बनायी गयी थी। क्रान्तिकारियों को इसके लिए धन की आवश्यकता थी। छ क्रान्तिकारियो ने दिन–दहाडे 27 अप्रैल 1933 को उदकमडल नेशनल बैंक पर धावा बोलकर एक लाख रुपये लूट लिये। ऊटी बैंक डकैती से सरकार इतनी आकंकित हो गयी कि उसने "फ्लावर्स दरबार" को ही स्थगित कर दिया।

4 मई 1933 को 300 ब्रितानी सिपाहियो ने चेट्टीस्ट्रीट स्थित क्रान्ति-कारियो के मकान को घेर लिया। क्रान्तिकारियो ने छत पर मोर्चा लगा लिया। दिन भर दोनो ओर से गोलियाँ चलती रही। सभी लोग पकड़े गए। 9 जुलाई 1933 को दादा आजाद, कामरेड हजारासिह, नित्यानन्द वात्स्यायन, बच्चूलाल, खुशीराम मेहता को ऊटी बैंक डकैती केस मे लम्बी सजाएँ हुई।

(ठ) कीर्तिपार्टी का विद्रोह

क्रान्तिकारियो की सेना द्वारा समर्थित जन–क्रान्ति के रण–नीति की, बीसवी सदी के चौथे और पाँचवे दशक मे भी अभिव्यक्ति हुई। गदर पार्टी रूसी समाजवादी क्रान्ति के बाद सोवियत रूस की ओर उन्मुख हुई। तेजासिह

स्वतंत्र आदि ने गदर पार्टी के लगभग पचास सदस्यों को पूर्वी विश्वविद्यालय में प्रशिक्षण के लिए मास्को भेजा। प्रशिक्षण के बाद ये क्रान्तिकारी गुप्त रूप से भारत आये और उन्होने कीर्तिपार्टी के रूप में किसानों के साथ तथा सेना में काम किया। कीर्तिपार्टी के नेता हरमिन्दर सिंह सोढी और अछरसिंह चीमा जब 1938–39 में मेरठ से 'कीर्तिलहर" अखबार निकालते रहे, उस समय उन्होने मेरठ छावनी के सैनिको में अपनी पार्टी की शाखा बनायी थी। गुरबख्शसिंह इसके इंचार्ज थे। गुरबख्शसिंह ने सेना में एक राष्ट्रीय पार्टी भी बनायी थी। इस पार्टी पर कम्युनिस्ट व कांग्रेस दोनों ही विचारधाराओ का प्रभाव था। यह मेरठ स्थित पंजाब रेजिमेंट के सैनिकों में काम करती थी। इसी की एक टुकड़ी ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जनवरी 1940 में बम्बई से मिस्र में विद्रोह किया। इसके 303 सैनिकों का कोर्ट मार्शल हुआ जिसमें से दस को कालापानी की सजा हुई। इसी रेजिमेंट के सेंट्रल इण्डिया हार्स ने जून 1940 में बम्बई से मिस्र जाने से इन्कार कर दिया था। इन पर कांग्रेस के आन्दोलन तथा उसके इस प्रस्ताव का भी असर था कि भारतीय सैनिकों को देश से बाहर साम्राज्य की रक्षा के लिए नही भेजा जाना चाहिए। सेण्ट्रल इण्डिया हार्स के चार सैनिको को सिकन्दराबाद जेल मे फांसी हुई थी।

(ड) किशोर ज्ञानीजैलसिंह का साहसिक कार्य

हमारे पूर्व राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह अपने बाल्यकाल से ही क्रान्तिकारी थे। सन् 1927 मे पंजाब में गठित "युग-पलटो" दल के किशोर ज्ञानीजैलसिंह सक्रिय सदस्य रहे। इस दल का उद्देश्य किसी भी तरीके से देश को अंग्रेजों के शासन से मुक्त कराना था। सन् 1932 की घटना है। 16 वर्षीय किशोर ज्ञानी जैलसिंह के जीवन में यह घटना खतरो से खेलने और उनसे मुकाबिला करने की शुरुआत थी।

"युग-पलटो" दल के प्रमुख क्रान्तिकारी सन्त जसवन्त सिंह अपने एक साथी की असावधानी के कारण गोली चल जाने से घायल हो गये थे। उन्हें तत्काल अस्पताल पहुँचाना जरूरी था, किन्तु समस्या यह थी कि इसके लिए कोई डॉक्टर तैयार नही था, क्योंकि सन्त जसवन्तसिंह आखिर क्रान्तिकारी थे। कई मामलों में पुलिस को उनकी तलाश थी।

किशोर जैलसिह तब तक क्रान्तिकारी बन चुके थे। उन्होने भाई ईशरासिह के साथ मिलकर उस बरसात की अन्धेरी रात मे घायल क्रान्तिकारी को पंजाब के बडा डकारा गाँव से 32 मील दूर मुक्तसर मे क्रान्तिकारियो के समर्थक डॉ. केहरसिह सन्धु के नर्सिग होम तक बैलगाडी खींचकर पहुँचाया था। सवारी का और कोई साधन नही था और बैलगाडी का बैल भी बीमार था। इस प्रकार किशोर जैलसिह ने अनुपम साहसिक कार्य किया था।

(ढ) निष्कर्ष

इस काल–खण्ड की सशस्त्र क्रान्ति ने भारतीयो मे अपूर्व राष्ट्रीय चेतना पैदा कर दी थी और भावी 1942 की विशाल जन–क्रान्ति के लिए आधार भूमि निर्माण की थी। हमे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि क्रान्ति मात्र बदलाव नही, अपितु एक दर्शन भी है और एक रचनात्मक कार्यक्रम भी। क्रान्ति का मार्ग "शार्टकट" नही, अपितु एक सुदीर्घ राजमार्ग है। क्रान्ति वैयक्तिक प्रश्न भी नही है, सामूहिक चेतना जागृत करने का एक साधन है। जितने भी क्रान्तिकारी नेता हुए, वे सब के सब ईमानदार, प्रतिबद्ध, निर्भीक और साधारण मनुष्य ही थे। न तो वे दिव्य मानव या मसीहा थे, और न अभिजात–वंश के चतुर्धारि नेता ही थे। उनकी क्रान्तिकारिता का मूलमंत्र था: 'नो-काम्प्रोमाइज' यानी कोई 'समझौता' नही। वे ऐसे सामान्य मनुष्य थे जिन्होंने अपने चारों ओर घिरी हुई यान्त्रिक पूँजीवादी एव साम्राज्यवादी व्यवस्था की गुलामी से विद्रोह किया और अन्त में क्रान्ति के मार्ग पर ही अपनी शहादत दी और अपनी लहू की बूंद से हजारो क्रान्तिकारियो को जन्म दिया। क्रान्तिकारी नायक अपनी देह–नाश मात्र करता है, परन्तु नायक की गति से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नायक के माध्यम से आलोड़ित गति है। भारत के सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन मे पं. रामप्रसाद "बिस्मिल", भगतसिह, चन्द्रशेखर "आजाद", राजगुरु, अशफाक उल्ला खाँ आदि ने जो बलिदान किये, वे क्रान्ति की मशाल को तेज करने के लिए और राष्ट्र के संयुज उद्धार के लिए थे। इस प्रकार की देश–भक्ति एवं शौर्य के उदाहरण संसार के इतिहास मे बहुत कम मिलते हैं। अतएव भारतीय स्वाधीनता संग्राम को आगे बढाने और उसे तीव्र बनाने में

सशस्त्र क्रान्तिकारी आन्दोलन का अपना विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

बन्देमातरम् के प्रणेता

बंकिमचन्द्र चटोपाध्याय

सशस्त्र क्रान्ति के आन्दोलन में "वन्देमातरम्" गीत की अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह गीत क्रान्तिकारियों के लिए प्रेरणा-स्रोत और उनका समवेत गान भी था। 'वन्देमातरम्' उस समय राष्ट्रीय अभिव्यक्ति का जीवन्त नारा था। इस गीत को राष्ट्रीय मर्यादा, बंग-भंग आन्दोलन के समय में प्राप्त हुई थी जिसकी कल्पना बंकिमबाबू आजीवन करते रहे। यह उल्लेखनीय है कि क्रान्तिकारी 'वन्देमातरम्' गीत गाते हुए सहर्ष फाँसी के फँदे में लटक गए थे।

षष्टम अध्याय

आज़ाद हिन्द फौज का स्वाधीनता-संग्राम

(सन् 1940 से 1947 तक)

विषय क्रम

1. सुभाष-युग
2. कांग्रेस-अध्यक्ष के रूप में सुभाषचन्द्र बोस
3. सविनय अवज्ञा आन्दोलन : व्यक्तिगत सत्याग्रह
4. सुभाषचन्द्र बोस
5. सन् '42 की जन-क्रान्ति
6. विदेशों में आजाद हिन्द फ़ौज की स्थापना
7. रानी झाँसी रेजीमेंट की स्थापना
8. आजाद हिन्द सरकार की घोषणा
9. नेताजी के रेडियो-प्रसारकों का प्रभाव
10. गांधीजी का जेल में उपवास
11. आजाद हिन्द सेना के अधिकारियों पर मुकदमें
12. सन् 1945-46 का नौसैनिक-विद्रोह
13. भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति
14. निष्कर्ष

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस

आज़ाद हिन्द फौज के सर्वोच्च सेनापति तथा
स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार के राष्ट्रपति

सुभाष-युग

सन् 1939 से 1947 तक के कालखण्ड का स्वतन्त्रता-सग्राम द्वितीय विश्वयुद्ध के सदर्भ मे अत्यत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। पहली सितम्बर 1939 को द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हुआ था, जो 14 अगस्त 1945 को समाप्त हुआ। इस कालखण्ड मे सुभाषचन्द्र बोस ने स्वाधीनता-सग्राम की कमान सम्हाल ली। नेताजी मे जन-नेता, क्रान्तिकारी नेता तथा सैनिक नेता तीनों नेताओ के गुण विद्यमान थे। उनमे विलक्षण सगठन-शक्ति और गजब की दूरदर्शिता थी।

आजाद हिन्द फौजवाला-आन्दोलन जिसके नेता पहले रासबिसरी बोस और बाद मे सुभाषचन्द्र बोस हुए, सम्पूर्ण रूप से एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था और उसको किसी भी प्रकार की जादूगरी से और कुछ साबित नही किया जा सकता। यह फौज पराजित हुई और उसके नेताओ पर लालकिले पर मुकदमा चला। श्री मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार "गिरते हुए साम्राज्यवाद को अन्तिम लात आजाद हिन्द फौज ने ही मारी थी।" इस प्रकार इस कालखण्ड को "सुभाष-युग" ही कहा जा सकता है। कुछ इतिहासकार 42 अगस्त की तुलना फ्रास के इतिहास मे वेस्टील के पतन और सोवियत रूस की अक्तूबर क्रान्ति से करते हैं।

इस कालखण्ड के आन्दोलन की विशेषता यह थी कि गाधीवादी-दल और क्रान्तिकारी-दल दोनो ने मिलकर आन्दोलन को ज्वालामुखी का रूप दिया था। स्वयं गांधीजी ने कहा था कि वे एक नई किस्म का आन्दोलन चलाना चाहते हैं। इसलिए हुआ यह कि ये दोनो आन्दोलन इकट्ठे मिल गए थे। यद्यपि गाधीजी कांग्रेस और उसके आन्दोलनो को सदा हिंसा के मार्ग से बचाते रहे और युवा-पीढी द्वारा संचालित "सशस्त्र विद्रोह" को वे कुचलते रहे, परन्तु वे ही पहली बार कांग्रेस के मच से अग्रेजो को भारत छोड जाने की सिह-गर्जना करते हैं। और देश की जनता को "करो या मरो" का आदेश देते हैं। यही

गांधीजी अपने "अहिंसा का मार्ग" को छोडकर हिंसा के मार्ग का अनुसरण करते है। इसी घोषणा के बाद उसी रात गांधीजी और कांग्रेस के अन्य चोटी के नेताओ की गिरफ्तारी के बाद क्रान्तिकारियो के द्वारा मोर्चा सम्हाल लिया गया था। और देश भर मे भयकर एवं व्यापक रूप से जन-क्रान्ति मचायी गई थी। दूसरी विशेषता यह थी कि स्वाधीनता सेनानियो द्वारा पहली बार ब्रिटेन के शत्रु-राष्ट्रो की मदद लेकर बाहर से बाकायदा अंग्रेजो से युद्ध लडा गया था।

इस काल-खण्ड मे युवा-पीढ़ी नयी राजनैतिक चेतना के साथ कांग्रेस के मच पर संगठित हो गई थी। यह पीढ़ी "पूर्ण स्वतन्त्रता" के संघर्ष के लिए, बैचेन थी। गांधीजी और उनके समान सोचनेवाले नेता युवा-पीढ़ी के मार्ग मे बाधक थे। उनकी अहिंसात्मक नीति मे युवा-पीढ़ी की कोई आस्था नही थी। यह पीढ़ी कांग्रेस के मंच से "सशस्त्र विद्रोह" की सिंह-गर्जना करवाना चाहती थी। नेताजी सुभाषबाबू युवा-पीढ़ी की आशा-आकांक्षाओ के प्रतीक थे। उनकी पूर्ण आस्था नेताजी के उग्रवादी नेतृत्व मे थी। नेताजी के विचार उग्र थे- "ब्रिटिशराज में सीमित अधिकार स्वीकार करके, कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल बनाकर शासन चलाना समझौते की प्रतिक्रियावादी नीति थी। उनका विश्वास था कि ब्रिटेन और जर्मनी मे म्युनिख-सन्धि निभ नही सकती, दोनों में स्वतन्त्रता के लिए तुरन्त संघर्ष प्रारम्भ कर देना चाहिए। इस अवसर से चूकना बहुत ही बडी राजनीतिक मूर्खता होगी।"

कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाषचन्द्र बोस

सन् 1939 में कांग्रेस को संघर्ष के मार्ग पर लाने के प्रश्न पर नेताजी और गांधीजी मे सीधी टक्कर हो गयी थी। नेताजी को युवा-पीढ़ी का प्रबल समर्थन प्राप्त था। नेताजी को कांग्रेस-अध्यक्ष बनाने के लिए युवा-पीढ़ी ने जी-जान से कोशिश की। दौड-दौडकर कांग्रेस के अधिक मेम्बर बनाये और उग्र

पन्थियो को प्रतिनिधि निर्वाचित करवाया। इस अभियान में वामपथी कांग्रेसी, काग्रेस समाजवादी तथा कम्युनिस्टो का एक संयुक्त मोर्चा बन गया। सुभाष ने युवा-पीढ़ी के सम्मुख अपनी उग्रवादी नीति पेश कर सकने की गरज से कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव लडने की घोषणा कर दी। गाधीवादो खेमे मे हलचल मच गयी।

कांग्रेस के इतिहास में पहली बार अध्यक्ष के चुनाव के प्रश्न ने उग्ररूप धारण कर लिया। विगत बीस-पच्चीस वर्षों से काग्रेस-अध्यक्ष का चुनाव औपचारिक अनुष्ठान मात्र रहा था। गांधीजी जिस व्यक्ति का निर्देश कर देते, उसे सर्व सम्मति से अध्यक्ष चुन लिया जाता। उस वर्ष गाधीजी ने अपने परम शिष्य पट्टाभि सीतारामय्या का नाम अध्यक्ष-पद के लिए सुझाया था। कांग्रेस के नेताओ को गांधीजी का निर्णय स्वीकार्य था। नेताजी को परामर्श दिया गया था कि गाधीजी की प्रतिष्ठा और काग्रेस की एकता के लिए गांधीजी का निर्णय मानकर अध्यक्ष-पद के लिए चुनाव लडने का विचार छोड दें। पं नेहरू भी काग्रेस की समझौतावादी नीति से असन्तुष्ट थे, परन्तु गाधीजी के नेतृत्व की उपेक्षा नही कर सकते थे। नेहरूजी ने भी सुभाषबाबू को गाधीजी का निर्णय मान लेने की राय दी। परन्तु सुभाष बाबू अपने निर्णय पर दृढ़ रहे और चुनाव में दो सौ अधिक मतो से विजयी हुए।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के कांग्रेस अध्यक्ष निर्वाचित होने पर युवा-पीढी में विजयोल्लास फूट पडा। त्रिपुरा मे होनेवाले अधिवेशन मे कांग्रेस को संघर्ष के मार्ग पर ले चलने की खुशी मे उत्साहित थे, परन्तु गांधीवादी दल पर वज्रपात हो गया। वे विस्मयाहत हो गए। गांधीजी ने चुनाव प्रतिक्रिया स्वरूप यह घोषणा कर दी- "पट्टाभि की पराजय स्वयं मेरी पराजय है। मैं त्रिपुरा अधिवेशन मे सम्मिलित न हूँगा।"

गाधीजी की इस घोषणा से काग्रेस के चोटी के नेता चिन्तित हो गए। नेताजी और गाधीजी के नेतृत्व की आवश्यकता थी। आचार्य नरेन्द्र देव, जय-प्रकाश बाबू, लोहिया इत्यादि चोटी के नेताओ ने दोनो दलों में समन्वय कराने की कोशिश की, परन्तु उन्हें सफलता नही मिली। काग्रेस ने अडगेबाजी की

नीति अपनाई। फलतः त्रिपुरा कांग्रेस अधिवेशन मे नेताजी–विरोधी प्रस्ताव 28 मतो से पारित हो गया। स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार नवनिर्वाचित काग्रेस अध्यक्ष को आदेश था कि सम्पूर्ण काग्रेस-कार्यकारिणी समिति के सभी सदस्यो की नियुक्ति गांधीजी के निर्देश या स्वीकृति से की जाए। फलतः नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने विवश होकर काग्रेस से अपना त्याग–पत्र दे दिया। बाद मे कांग्रेस की नीतियों से असन्तुष्ट होकर अनेक समाजवादी नेता काग्रेस से अलग हो गए।

20 मार्च 1940 को नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में रामगढ (बिहार) में अखिल भारतीय समझौता विरोधी सम्मेलन हुआ जिसमें देश भर में राष्ट्रीय संग्राम शुरू कर देने के लिए बिगुल बजाया गया। हजारो स्वतत्रता–सेनानी युद्ध विरोधी आन्दोलन में गिरफ्तार हो गए और नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी हालवेक मौनूमेंट हटाने के आन्दोलन मे गिरफ्तार कर लिये गए।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन : व्यक्तिगत सत्याग्रह

कांग्रेस ने रामगढ प्रस्ताव के आधार पर सविनय अवज्ञा अन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में चलाने का निश्चय किया। आश्चर्य की बात यह थी कि सत्याग्रह का उद्देश्य भारत की स्वतंत्रता न होकर युद्ध के विरुद्ध विचार–अभिव्यक्ति का अधिकार था। कांग्रेस ने 5 जनवरी 1941 को युद्ध विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह विनोबा भावे के नेतृत्व में शुरू किया जिसमे लाखो लोग जेल गए।

इधर ब्रिटिश सरकार ने विश्व महायुद्ध के दौरान अपने मित्र राष्ट्रों के दबाव के कारण भारत में सवैधानिक गतिरोध को दूर करने और भारतीय

नेताओ से वार्ता के लिए नये सुझावो सहित सरस्टैफर्ड क्रिप्स की अध्यक्षता में एक शिष्टमण्डल 23 मार्च 1942 को दिल्ली भेजा जो क्रिप्स–मिशन के नाम से प्रसिद्ध है। इस मिशन ने अपनी योजना प्रकाशित कर दी। योजना सम्बन्धी सुझाव दो भागो में विभाजित थे– एक युद्ध काल मे और दूसरे युद्ध के बाद लागू होने वाले थे। प्रस्ताव मे प्रत्येक दल को खुश करने का प्रयास था, परन्तु कोई भी दल इससे सहमत न हो सका। अनेक खामियाँ थी। फलतः देश को बहुत निराशा हुई। क्रिप्स को यह कहना पडा– मुझे दुःख है कि हमारे प्रयत्न विफल हो गए हैं। फलस्वरूप 11 अगस्त 1942 को प्रस्तावित प्रस्ताव वापिस ले लिये गए। इस प्रकार– "दिवालिये बैंक का भविष्य की तिथि मे भुने जाने वाला चैक अस्वीकार हो गया।"

सुभाषचन्द्र बोस

भारतीय स्वाधीनता सग्राम के इतिहास मे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की महती भूमिका रही है। नेताजी का व्यक्तित्व विलक्षण था। उन्होने अपने जीवन में अनेक कष्ट झेले, फिर भी उन्होने कभी हार नही मानी। नेताजी भारतीय अदम्य जीजीविषा के प्रतीक बन गए थे। ज्ञान और कर्म, सूझबूझ और साहस के जो अद्भुत उदाहरण उन्होने प्रस्तुत किये, उनसे लोक-मानस में सहज ही उन्हे भारतीय इतिहास के दो शिखर–पुरुषो की कोटि मे रखा जा सकता है– वे शिखर–पुरुष हैं महाराज शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह। शस्त्र और क्षात्र का जो अद्भुत सामंजस्य उनके व्यक्तित्व में हुआ था, वह अन्यत्र दुलर्भ है। जिस प्रकार शिवाजी औरंगजेब की आँखो मे धूल झोककर आगरा किले से निकल आये थे, उसी प्रकार अग्रेजी हुकूमत को चमका देकर नेताजी सुभाष-चन्द्र बोस कलकत्ता के एल्गिनरोड स्थित अपने मकान से निकल कर बर्लिन पहुँच गए थे।

नेताजी के महा–निष्क्रमण के मुख्य तीन भाग हैं : पहला अपने घर से निकलना, दूसरा गोमोह से पेशावर और फिर कबाइली वेश मे काबुल पहुँचना और तीसरा काबुल से सोवियत संघ होते हुए बर्लिन पहुँचना। उनका महा-निष्क्रमण निरुद्देश्य नही था। देश को सशस्त्र युद्ध के द्वारा वे आजाद करना चाहते थे।

बात दूसरे महायुद्ध से शुरु होती है। अंग्रेजो की कुटिल चालो से नेताजी भली–भान्ति परिचित थे और यह अनुभव करते थे कि यही मौका है, जब अंग्रेजो को शिकस्त दी जा सकती है : वे किसी तरह सोवियत रूस पहुँच-कर दूसरे महायुद्ध की शक्तियो को अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध मोड़ना चाहते थे। वे इस यात्रा के पीछे चार कारण मानते थे :

(1) कांग्रेस के भीतर सक्रिय दक्षिणपंथी शक्तियाँ उन्हें अध्यक्ष–पद से हटाने मे कामयाब हो गयी थी।

(2) वामपंथी शक्तियो को न गांधीवादियो के खिलाफ मोड़ा जा सकता था और न अंग्रेजो के खिलाफ।

(3) अंग्रेजो को तब तक नही हटाया जा सकता, जब तक कि उसके समानान्तर सशस्त्र–शक्ति न खड़ी कर दी जाए।

(4) द्वितीय महायुद्ध ने एक ऐसा अवसर दिया है जिसमे भारत एक सैन्यशक्ति के रूप मे अंग्रेजों के खिलाफ खड़ा हो सकता है।

नेताजी ने सोवियत संघ जैसे साम्राज्यवादी अंग्रेज विरोधी देश से हथियार लेने की योजना बनायी। उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त मे सक्रिय क्रान्तिकारियो की मदद से वे रूस मे प्रवेश करना चाहते थे; तय हुआ कि वे जुलाई 1940 मे भारत छोड़ देंगे। इस सम्बन्ध मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जय प्रकाश नारायण, लाला शंकरलाल, शार्दूलसिंह, कबीसर आदि नेताओं से भी उन्होने सलाह–मश्विरा किया। सब ने उनकी इस योजना का समर्थन किया। उत्तर-पश्चिम मे उन्हें रूस ले जाने की तैयारियाँ भी हो गयी थी। लेकिन इसी बीच उन्होने कलकत्ता मे होवल के स्मारक को हटाने की मांग पर आन्दोलन

की घोषणा कर दी। शायद वे अंग्रेजो का ध्यान अपनी ओर से हटाना चाहते थे, लेकिन उनकी यह योजना सफल नही हो पायी, क्योंकि वे गिरफ्तार कर लिये गए थे।

नेताजी की हवालात से फ़रारी

अपने भतीजे डॉ. शशिर बोस की मदद से 16--17 जनवरी 1941 को नेताजी घर के हवालात से फरार हो गए। क्रान्तिपार्टी के सदस्य व क्रान्तिकारी भगतराम तलवार और मियाँ अकबर शाह की मदद से नेताजी अनेक कष्टों को झेलते हुए पहले काबुल पहुँचे। 27 जनवरी से 18 मार्च 1941 तक उन्होंने काबुल मे रहकर आगे बढने का कार्यक्रम बनाया। जर्मनी के सैन्य महत्त्व को देखते हुए उन्होंने पहले बर्लिन पहुँचने का फैसला किया। ओरलांदो मोजेतो गुप्त नाम से नेताजी 2 अप्रैल 1941 को बर्लिन पहुँच गए।

नेताजी की इस फरारी-घटना ने देश की युवा-पीढ़ी को उत्साहित कर दिया था। अब दिखाने का आन्दोलन नहीं, असली लड़ाई शुरू होगी। नेताजी का यूरोप से क्रान्ति का कार्यक्रम घोषित हुआ। सशस्त्र क्रान्ति के लिए विदेशो में बसे प्रवासी भारतीयो का आह्वान् किया गया और भारतीयो को स्वतंत्रता-प्राप्ति के अवसर को हाथ से न जाने देने को ललकार दी गयी। ब्रिटेन को चोट पहुँचाने और घूंसा मारने का यही असली समय है। नेताजी ने सिंह-गर्जना की– "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"

सन् '42 की जन-क्रान्ति

इधर पं. नेहरू जनता के रुख और उग्रता को देख सहम गए थे। उन्होंने अपनी नीति बदल दी। चमत्कार यह हुआ कि सभी नेता उग्र, युद्ध-विरोधी हो गए। 1942 के 8 अगस्त को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस

कमेटी ने "भारत छोडो" प्रस्ताव पारित किया। गांधीजी ने देश को "करो या मरो" का नारा दिया। उसी रात सोते हुए गांधीजी और अन्य नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। युवा पीढी ने अपने आत्मबल से जन-क्रान्ति का मोर्चा सम्भाल लिया था। युवा-पीढी अब तक नेताओ की मुखापेक्षी रहा करती थी, किन्तु सन् 1942 के समय ने उनके लिए वांछित अवसर प्रदान कर दिया था। देश के नेताओ की गिरफ्तारी के साथ ही युवा-पीढी ने इन्कलाब का बिगुल बजा दिया था।

नेताओ के कैद कर लिये जाने पर जनता क्रुद्ध हो गई। 9 अगस्त 42 को बम्बई, पूना, अहमदाबाद इत्यादि नगरो मे जुलूस निकाले गए और सभाएँ हुई। 10 अगस्त को दिल्ली और उत्तर प्रदेश के नगरो मे स्थिति बिगडती गई। अहिंसा का स्थान हिंसा ने ले लिया। देश भर मे विद्रोह भडक उठे। व्यापक रूप से तोड-फोड हुई। सरकारी इमारतें पुलिस-चौकियाँ, स्टेशन, खजाने गोदाम आदि फूंक दिये गए। जेलो के फाटक तोडे गए और सभी बन्दियों को आजाद कर दिया गया। सरकारी इमारतो पर राष्ट्रीय झण्डे फहराये गए। रेल-पटरियाँ उखाडी गयी। रेजीनाल्ड मैक्सवैल के अनुसार "200 के लगभग रेलवे स्टेशन नष्ट कर दिये गए, 550 के लगभग डाकखानो पर हमला हुआ, जिनमें 50 के करीब बिल्कुल जला दिये गये।" 3500 स्थानो पर तार और टेलीफोन लाइनो को काट दिया गया। 85 सरकारी भवन और 70 थाने जला दिये गये। "अनेक स्थानो पर सडके खोदी गई। नगरो मे मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। क्रान्तिकारियो ने अपनी रणनीति बदल ली—सशस्त्र पुलिस से टक्कर लेने के बजाये देहातो मे इन्कलाब की आग को फैला दिया गया। फलतः बलिया, बस्ती, सतारा, मिदनापुर आदि मे विद्रोह भडक उठे। बलिया (उत्तर प्रदेश) में तो अधिकारियों को कैद कर अपना राज्य स्थापित कर लिया गया। बलिया की स्वतन्त्रता पर युवा-पीढी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। बलिया में कई दिनों तक स्थानीय क्रान्तिकारी नेताओ के नेतृत्व में प्रजातंत्र कायम रहा।

सरकार ने अत्यधिक शक्ति के साथ आन्दोलनकारियों का दमन किया। कांग्रेस गैर-कानूनी सस्था घोषित कर दी गई। सभाओ, जुलूसो पर पाबन्दी

लगा दी गई। कुछ नगरो मे मार्शल ला लागू कर दिया गया। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार पुलिस और सेना द्वारा 538 चक्र गोलियाँ चलाई गयी और 950 व्यक्ति मारे गये तथा 1360 घायल हुए। 60,229 बन्दी बनाये गए। किन्तु ये आंकडे सच्चाई से परे थे। आन्दोलन को भूमिगत कर दिया गया और नेतृत्व राममनोहर लोहिया, जयप्रकाश नारायण आदि समाजवादी नेताओ के हाथो मे चला गया। इस आन्दोलन मे साम्यवादियो को छोडकर सभी दलो ने सक्रिय रूप से भाग लिया।

विदेशों में आज़ाद हिन्द फौज की स्थापना

रास बिहारी बोस

इधर जब भारत मे "भारत छोडो" आन्दोलन चल रहा था, 1942 में जनरल मोहनसिंह ने सिंगापुर मे आजाद हिन्द फ़ौज की स्थापना की और जापान सरकार को यह पत्र लिखा कि जल्द से जल्द नेताजी सुभाषचन्द्र बोस को जर्मनी से सिंगापुर ले आए और नेताजी ही आजाद हिन्द फौज का नेतृत्व करे। नेताजी बर्लिन में खामोश नही बैठे। वहां उन्होंने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की थी। नेताजी को जापानी सरकार 1942 मे सिंगापुर में नही लायी इस पर जनरल मोहनसिंह ने आजाद हिन्द फौज को तोड दिया तो जापानी सरकार ने जनरल मोहनसिंह को नजर बन्द कर दिया। प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री रास बिहारी बोस ने जो उन दिनो सिंगापुर में ही भारतीय सैनिको को लेकर एक सेना बनाई और नेताजी को यह सन्देश भेजा कि वे आकर सेना का नेतृत्व करें। सुभाष बाबू भी यही चाहते थे। उन्होंने जर्मन सरकार पर यह दबाव डाला कि उन्हे फौरन सिंगापुर पहुँचाने की

व्यवस्था की जाए। हिटलर ने नेताजी को पनडुब्बी द्वारा सिंगापुर पहुँचाने की व्यवस्था कर दी। हजारों मील समुद्री-यात्रा करके पनडुब्बी के द्वारा सुभाष बाबू सकुशल जुलाई 1943 में सिंगापुर पहुँचते ही भारतीयों में एक सनसनी-सी फैल गयी। सुभाष बाबू ने टोकियो जाकर जापानी सरकार से सलाह-मशविरा किया और फिर युद्ध में बन्दी बनाकर लाये गए भारतीय सैनिकों तथा प्रवासी भारतीयों की एक संगठित सेना आजाद हिन्द फौज के नाम से गठित की। ब्रिटिश इण्डिया आर्मी के चालीस हजार नौजवान आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो गए। लड़कियों की एक अलग सेना "झाँसी रानी वाहिनी" के नाम से गठित की गई। दक्षिण पूर्वी एशिया के सभी देशों से जो 20 लाख प्रवासी भारतीय थे, सुभाष बाबू की अपील पर उनके प्रत्येक परिवार में आजाद हिन्द फौज के लिए एक-एक नौजवान आजाद हिन्दी फौज में और एक-एक लड़की रानी झाँसी रेजीमेंट में शामिल हुए। प्रवासी भारतीयों ने अपनी थैलियों का मुँह खोल दी। देखते ही देखते अरबों रुपये जमा हो गए। इस प्रकार प्रवासी भारतीयों ने आजाद हिन्द फ़ौज को अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। जापानी सरकार सुभाष बाबू को हर तरह से सहायता दे रही थी, परन्तु नेताजी ने अपने को उनके हाथों बेचा नहीं था, अपितु अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाये रखा था। ऐसा भी हुआ कि अनेक बार जापानी अधिकारियों से उनका मतभेद हुआ, परन्तु अन्त में नेताजी की ही बात मानी गई और जापानी अधिकारियों को अपना सिर झुकाना पड़ा।

रानी झाँसी रेजीमेंट

सुभाषचन्द्र बोस की सशस्त्र क्रान्ति की प्रेरणा सन 1857 की क्रान्ति से मिली थी। वे चाहते थे कि सशस्त्र क्रान्ति में महिलाओं का भी सक्रिय सहयोग लिया जाए। 1857 में रानी लक्ष्मीबाई आदि वीरांगणाओं ने जिस साहस-वीरता से अंग्रेजों के विरुद्ध लड़ी थी, उसी प्रकार वीरांगणाओं

रानी झांसी रेजीमेट सेनापति सुभाषचन्द्र बोस को सलामी देती हुई

की एक प्रशिक्षित सेना 'रानी लक्ष्मीबाई' के नाम पर तैयार की जाए। इन्हीं विचारो से प्रेरित होकर उन्होंने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की जन्मतिथि 22 अक्तूबर (1943) को सिंगापुर में कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल के नेतृत्व में 'रानी झांसी रेजीमेट' बनायी थी। उस समय इस रेजीमेट में तीन सौ से अधिक प्रशिक्षित युवतियां थी, बाद मे उनकी संख्या बढ़ गयी। इस रेजीमेंट के उद्घाटन के ठीक एक दिन पहले 21 अक्तूबर को सुभाषचन्द्र बोस ने स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार की विधिवत् घोषणा कर दी थी। कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल उस मन्त्रिमण्डल मे महिला प्रतिनिधि-मंत्री थी।

'रानी झाँसी रेजीमेंट' आजाद हिन्द फौज की एक शाखा थी । नेताजी ने आजाद हिन्द फौज को राष्ट्रगीत– "सब सुख चैन की वर्षा बरसे भारत भाग्य है जागा" और 'जय हिन्द' और 'चलो दिल्ली' 'मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा' आदि नये नारे दिये थे । कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल ने नेताजी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर राष्ट्रीय मुक्ति संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । लाहौर षडयंत्र केस और चटगाँव शस्त्रागार केस आदि में अन्य क्रान्तिकारियों के साथ डॉ लक्ष्मी सहगल ने सक्रिय रूप से कार्य किया था । रानी झाँसी रेजीमेंट ने न केवल आजाद हिन्द फौज के साथ भाग लिया, अपितु युद्ध मे घायल सिपाहियों की सेवा–सुश्रुषा मे भी महत्त्वपूर्ण सेवा की थी । इस रेजीमेंट ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों के द्वारा 'नेताजी फण्ड' के लिए भी धन इकट्ठा किया था । 'रानी झाँसी रेजीमेंट' की अनुशासनबद्धता एवं अपूर्व देश-प्रेम को देखकर अनेक विदेशी युवतियाँ सेना मे भर्ती हो गयी थीं जैसे 'पेनांग', 'इपोह' और क्वालालुम्पुर आदि की युवतियाँ । बाद मे ये युवतियाँ रेजीमेंट की अफसर भी बन गयी । रंगून, मलाया आदि देशों मे भी 'रानी झाँसी रेजीमेंट' की शाखाएँ स्थापित की गयी थी ।

आजाद हिन्द सरकार की घोषणा

सुभाषचन्द्र बोस सिंगापुर मे केवल आजाद हिन्द फौज और रानी झाँसी रेजीमेंट बनाकर ही शान्त नहीं बैठे, अपितु उन्होंने 21 अक्तूबर 1943 को स्वतन्त्र भारत की अस्थायी सरकार की विधिवत् घोषणा कर दी थी । जिस समारोह से अस्थायी सरकार की घोषणा हुई थी, उसमे दक्षिण पूर्वएशिया के 30 लाख भारतीयों के प्रतिनिधि उपस्थित थे । अपनी आँखों में आँसु भरे नेताजी ने ईश्वर और 40 करोड़ देशवासियों को साक्षी रखकर अपने पद की शपथ ली थी । उन्होंने भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए अनवरत प्रयास करते रहने की प्रतिज्ञा की थी ।

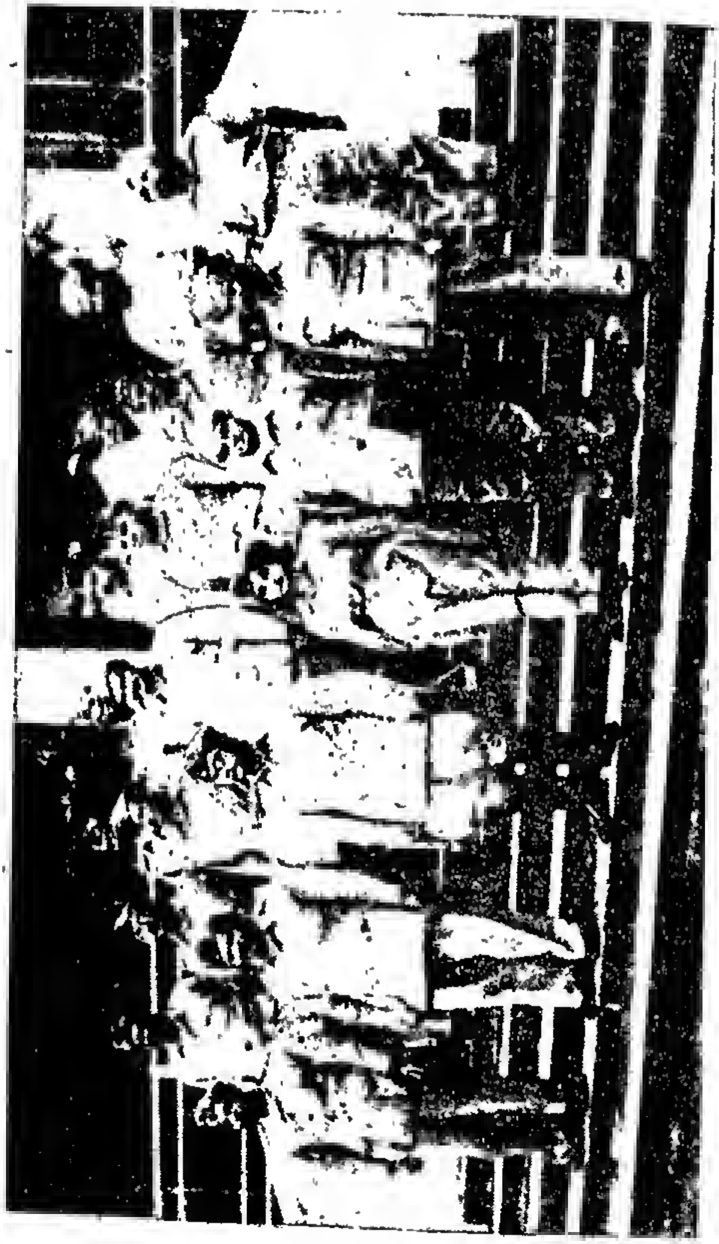

अस्थायी सरकार के मंत्रिमण्डल के साथ सुभाषचंद्र बोस

इस मन्त्रिमण्डल मे सैनिक अफसर नौ और आठ नागरिक प्रतिनिधि इस प्रकार कुल 17 मन्त्री थे। महिला प्रतिनिधि कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल थी। मंत्रिमण्डल मे सैनिक सदस्य थ– कर्नल भोंसले, कर्नल चटर्जी, कर्नल लोक-नाथन्, कर्नल एहसान कादिर, कर्नल भगत, कर्नल जमान कियानी, कर्नल अजीज अहमद, कर्नल शाह नवाज खान और ले. कर्नल गुलजारा सिंह और नागरिक प्रतिनिधि थे– सर्वश्री एस. ए. ऐयर (प्रचार मंत्री) आनन्द मोहन सहाय (मन्त्रिमण्डल सचिव और बिना विभाग के मन्त्री) करीमगनी, सरकार, दोस्त मोहम्मद खान, देवव्रतदास, ईश्वरसिंह (सभी सलाहकार) और महिला प्रतिनिधि कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल।

सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द सरकार के राष्ट्रपति और सर्वोच्च सेना-पति बने। जर्मन, जापान, इटली, आयरलैण्ड और जर्मन पक्ष की ओर से लड़नेवाली सभी सरकारो ने आजाद हिन्द सरकार को नियमित रूप से मान्यता प्रदान कर दी और समक्षता के बराबर दर्जा दिया। आजाद हिन्द सरकार के राष्ट्रपति के नाते सुभाषचन्द्र बोस ने ब्रिटिश सरकार और अमेरिकन सर-कार के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। यदि रूस से नेताजी को सकारात्मक मदद मिली होती तो वे पश्चिमी सीमान्त से अंग्रेजी फौज पर हमला करने में काफी हद तक सफल हो गए होते। खैर, जो विधि को मान्य था वही हुआ। उन्हे जापान जाकर पूर्वी क्षेत्र मे अपनी लड़ाई लड़नी पड़ी।

आजाद हिन्द फौज ने बर्मा के जंगलों के मार्ग से भारत पर आक्रमण किया। सिंगापुर के इम्फाल (मणिपुर) तथा (कोहिमा) नागा हिल्स जिला असम का मोर्चा 2,775 मील लम्बा था। इतने लम्बे मोर्चे पर जमकर युद्ध हुआ और इम्फाल और कोहिमा के मोर्चे पर 26 हजार आजाद हिन्द फौज के स्वाधीनता सेनानी शहीद हो गए और उनके सहयोगी 40 हजार जापानी सैनिक इन मोर्चों पर मर गये, 60 हजार ब्रिटिश–अमेरिकन तथा ब्रिटिश इण्डियन आर्मी के लोग इन मोर्चों पर मर गये। इस युद्ध में रानी झाँसी रेजीमेंट सेना भी शामिल रही है। इस घमासान आजाद हिन्द फौज की लड़ाई से भारत के मणिपुर राज्य के दो तिहाई भाग और समूचा नागालैंड आजाद हो गया। मोयरोंग (मणिपुर) मे सर्वप्रथम तिरंगा झण्डा लहराया गया।

इस लड़ाई की विशेषता यह थी कि हजारो प्रवासी भारतीय लड़कियाँ 'रानी झाँसी रेजीमेट' मे शामिल होकर कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल के नेतृत्व मे आजाद हिन्द फौज के स्वाधीनता सेनानियो के साथ कन्धा से कन्धा मिलाकर भारत को आजाद कराने के लिए लड़ी थी, किन्तु रसद और विमानों की कमी के कारण तीन महीनो के बाद ही आजाद हिन्द फौज को भारत की भूमि मणिपुर तथा नागालैण्ड छोड़ना पडा था।

नेताजी के रेडियो प्रसारणों का प्रभाव

आजाद हिन्द फौज की वीरतापूर्ण लडाई का प्रभाव भारतीय स्वाधीनता सेनानियो और विशेषकर ब्रिटिश इण्डियन आर्मी के लोगो पर पडा। सुभाषचन्द्र बोस बर्लिन, सिंगापुर, टोकियो आदि से अपने रेडियो प्रसारणों मे आम जनता के साथ-साथ सैनिकों को भी विद्रोह करने तथा आई. एन. ए. का स्थान देने का आह्वान् करते थे। उस समय देश मे 1942 का "भारत छोड़ो" आन्दोलन जोरों पर था और दमन-चक्र भी खूब चल रहा था। देश-विदेशो में तैनात भारत सैनिको पर नेताजी के रेडियो प्रसारणों तथा राष्ट्रीय आन्दोलन और आइ. एन. ए. के मुक्ति-अभियानो का प्रभाव पडा।

सच्चाई यह है कि यूनिटो के सैनिक गुप्त रूप से नेताजी का रेडियो-प्रसारण सुनते थे। नेताजी बार-बार कहते थे ब्रिटिश सेना के कार्यों को विफल करो। उससे असहयोग करो। स्वेज नहर पर तैनात सैनिको (सिंगापुर तोपखाना) ने नारायणसिंह के नेतृत्व में 1943 में स्वेज नहर पर विद्रोह किया था।

सुभाष के आह्वानों ने चौथी इण्डियन कोस्टल आर्टिलरी, जिसे मद्रास कोस्टल आर्टिलरी भी कहते थे, पर असर पडा और इसी बैटरी के सैनिकों ने 1943 में कोचीन सैनिक-विद्रोह की दिशा में प्रयास किये। सेना के दक्षिणी मुख्यालय को प्राप्त एक गुप्त रिपोर्ट के अनुसार "चौथी मद्रास कोस्टल डिफेंस

बैटरी के कुछ सैनिको ने 1942–43 मे कोचीन मे तोड–फोड करने, ब्रिटिश शासको के प्रति निष्ठा को खत्म करने सैनिको को सेना छोडकर चले जाने के लिए प्रोत्साहित करने तथा विभिन्न यूनिटो में तनाव और असन्तोष पैदा करने की कोशिश की। "इनके विरुद्ध कदम उठाये गए और 18 अप्रैल 1943 को एक दर्जन विद्रोही सैनिको को गिरफ्तार कर लिया गया। इन सैनिको के विरुद्ध 6 जुलाई और 5 अगस्त को गुप्त रूप से कोर्ट मार्शल हुआ। कोर्ट मार्शल ने बारह अभियुक्तो मे से नौ को फांसी व तीन को कैद की सजा दी। यनकुमार, बसु ठाकुर, नन्द कुमार दे, दुर्गादासराय चौधरी, निरजन बरुआ, चित्तरजन मुखर्जी, फानीभूषण चक्रवर्ती, सुनील कुमार मुखर्जी, कालिपद एवच और नरेन्द्र मोहन मुखर्जी को फांसी तथा रवीन्द्रनाथ घोष और मुजीबुर रहमान को आजीवन कारावास और अमल चन्द दे को सात वर्ष कैद की सजा सुनायी गई। मद्रास के सुधारानगर (जेल) मे 27 सितम्बर 1943 को इन्हें फांसी दे दी गई। फांसी पर ये लोग मुस्कुराते हुए चढे और "वन्देमातरम्", "भारत माता की जय" और "नेताजी जिन्दाबाद" के नारे लगाये। निस्सन्देह इन सैनिक क्रान्तिवीरो के संघर्षों और उनकी शहादतों ने भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति सघर्ष को आगे बढाया और उसमे जुझारू प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कर दी। फलतः 1946 के फरवरी महीने ये बम्बई ये नाविक सेना ने बगावत का बिगुल बजाय दिया था। आजाद हिन्द फौज का भाग्य जापान के साथ बन्धा हुआ था। अमेरिका के युद्ध मे कूदने से ब्रिटिश पक्ष का पलडा भारी पड गया था। लडाई मे जर्मनो और जापान दुर्बल पड गये थे। आजाद हिन्द फौज सफल न हो सकी। उसे मोर्चा छोड कर पीछे हटना पडा था। ज्यो–ज्यो ब्रिटिश सेना विजयी होती गयी, त्यो–त्यो आजाद हिन्द फौज के नेतागण ब्रिटिश कारागार मे पहुँचते गये। उनसे शाहनवाज, ढिल्लन और सहगल प्रमुख थे। अन्त मे जापान ने आत्म–समर्पण कर दिया और ब्रिटेन और अमेरिका की विजय हो गई।

द्वितीय विश्व युद्ध में जापान के पराजय स्वीकार करते समय नेताजी सिंगापुर मे ही थे और 16 अगस्त 1945 को उन्होने वहाँ से बैंकाक के लिए प्रस्थान किया था। नेताजी की यह अन्तिम यात्रा–समझी जाती है।

सिंगापुर से बैंकाक होते हुए नेताजी ने एक जापानी विमान मे यात्रा की थी। कहा जाता है कि यह विमान 18 अगस्त को ताइवान के तेकोहू हवाई अड्डे पर दुर्घटना ग्रस्त हो गया था, जिसके परिणाम स्वरूप उसी रात लगभग नौ बजे नेताजी का निधन हो गया। यह उल्लेखनीय है कि सिंगापुर मे आजाद हिन्द फौज के कर्णधार सुभाष ने तो ब्रिटिश राज्य सत्ता के विरुद्ध क्रान्ति का शंखनाद किया ही था, उसके पूर्व भी प्रथम महायुद्ध के दौरान ग़दर पार्टी के क्रान्तिकारियो ने सिंगापुर को आजादी–संघर्ष का एक प्रमुख केन्द्र बनाया था और 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समान वहाँ सिपाही–विद्रोह कराया था।

गांधीजी का जेल में उपवास

ब्रिटिश सरकार ने उपद्रवो और हिंसा के लिए कांग्रेस को उत्तरदायी ठहराया। चर्चिल ने हाउस आफ कामन्स में कहा– "कांग्रेस ने अहिंसा को त्याग कर दिया है। और क्रान्तिकारी पद्धति अपना ली है।" गांधीजी ने 15 जुलाई 1943 को अतिरिक्त सचिव गृह विभाग को पत्र लिखकर इन आरोपो को निराधार सिद्ध किया और निष्पक्ष जाँच की माँग की। जब शासन ने हिंसात्मक कार्यवाहियों की जाँच करवाने से इन्कार कर दिया तो गांधीजी ने जेल में उपवास का निश्चय किया। इस उपवास का उद्देश्य सरकारी हिंसा का विरोध तथा आत्म–शुद्धि था। उपवास के दौरान गांधीजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड गया, फिर भी उन्होने 21 दिन बाद ही अपना उपवास तोडा। महायुद्ध की समाप्ति और मित्रराष्ट्रो की विजय के बाद गांधीजी को 6 मई 1944 को जेल से रिहा कर दिया गया। इधर मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग जोर पकड़ती जा रही थी। राजगोपालाचारी ने कांग्रेस और लीग में समझौता के लिए एक फार्मूला, गांधीजी की स्वीकृति से दिसम्बर 1944 मे जिन्ना के सामने रखा। इस फार्मूले की योजना के साथ स्वयं गांधीजी जिन्ना से मिले, किन्तु यह वार्ता विफल हो गयी। नये नियुक्त वाइसराय लार्ड वैवेल

ने 14 जन 1945 को एक नयी योजना पेश की जिसे 'वैवेल योजना' के नाम से जाना जाता है। इस योजना पर विचार करने के लिए 25 जून 1945 को शिमला मे सम्मेलन हुआ, परन्तु जिन्ना की हठधर्मिता के कारण 14 जुलाई 1945 को सम्मेलन असफल हो गया। विफलता के कारणो मे कौंसिल मे हिन्दू और मुसलमानो की सख्या समान रखना भी एक कारण था।

आजाद हिन्द सेना के अधिकारियों पर मुकदमें

जापान के आत्म-समर्पण के उपरान्त नेताओ द्वारा स्थापित आजाद हिन्द सेना के सिपाही भी कैद कर लिये गए और उस सेना के प्रमुख अधिकारियों पर सैनिक कानून के अनुसार दिल्ली के लालकिले में राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। आजाद हिन्द सेना के जिन अधिकारियों पर मुकदमा चलाया गया था, उनमे सब से प्रमुख थे केप्टन शाह नवाज; केप्टन जी. के. सहगल तथा लेफ्टिनेट गुरुबख्शसिह ढिल्लन। देशवासियो के हृदय में इन व्यक्तियो के साहसिक तथा देशभक्ति पूर्ण कार्यों के प्रति अतीव श्रद्धा और सम्मान की भावना थी। अत. जनता के द्वारा इन नेताओं की मुक्ति की माँग की गई। इन नेताओ पर नवम्बर 1945 में अभियोग प्रारम्भ हुआ और इन नेताओं को बचाने का कार्य कांग्रेस के द्वारा अपने हाथ मे लिया गया। केन्द्रीय व्यवस्थापिका मे कांग्रेस दल के नेता भूलाभाई देसाई बचाव पक्ष के प्रमुख वकील थे और उनके पीछे विधान-शास्त्रियो की एक लम्बी पंक्ति थी जिसमें सरतेज बहादुर सप्रू, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डॉ. कैलाशनाथ काटजू, दीवान बद्रीदास, आसफली और बख्शीटेकचन्द आदि थे।

स्वातंत्र्य सैनिकों पर चलाये जा रहे इस अभियोग ने सम्पूर्ण देश के वातावरण को उत्तेजनापूर्ण कर दिया। हिन्दू, मुसलमान और भारत के सभी

वर्गों द्वारा शासन के इस कार्य का विरोध करते हुए प्रदर्शनो का आयोजन किया गया। सरकार ने प्रदर्शनकर्त्ताओ के साथ कठोर व्यवहार किया। कई स्थानो पर लाठी और गोली चलाई गई जिसके कारण कलकत्ते मे 40 व्यक्ति मारे गये और 300 से अधिक घायल हुए। बम्बई मे 3 व्यक्ति मारे गये और घायलो की संख्या 400 से अधिक थी। सैनिक अदालत ने इन तीन वीरो को आजन्म कारावास का दण्ड दिया, किन्तु ब्रिटिश सरकार इस निर्णय को लागू करने का साहस नही कर सकी। गवर्नर जनरल ने अपने विशेष अधिकारो के अन्तर्गत इन वीरो को मुक्त कर दिया। वास्तव मे वे 'राष्ट्रीय वीर' बन गये थे। दूसरे मुकदमे मे श्री कैप्टन रशीद को आजन्म कारावास का दण्ड दिया गया जिसे बाद मे गवर्नर जनरल ने सात वर्ष का कर दिया। इस निर्णय के विरुद्ध सम्पूर्ण देश मे हड़ताल और प्रदर्शन हुए। माइकेल ब्रेचर लिखते हैं : "आज़ाद हिन्द सेना की इन घटनाओ से ब्रिटिश शासको की प्रतिष्ठा गिरी और सेना के साहस में कमी हुई।"

श्री शीलभद्र याजी

अन्त मे नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के साथी जन्मना क्रान्तिकारी एव अखिल भारतीय स्वतंत्रता सेनानी संगठन के अध्यक्ष शीलभद्र याजी के व्यक्तित्व एव कृतित्व के सम्बन्ध मे यहाँ उल्लेख करना समीचीन होगा। उन्होने स्वतत्रता संग्राम मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी और अनेक बार जेल की यातनाएँ सही। श्री याजी जी के ही सद् प्रयत्नो से आज़ाद हिन्द फौज-शहीद स्मारक का निर्माण मोइरग (मणिपुर) मे हुआ। यह शहीद स्मारक उन छब्बीस हजार आजाद हिन्द फौज के शहीद बहादुर जवानो, जिन्होने देश की आजादी के लिए अपने प्राणो की आहुति देते हुए भारतीय वसुन्धरा पर तिरगा झण्डा फ़हराया था, की पुण्य-स्मृति को जीवित रखने के लिए श्री याजी की यह एक बहुत बडी देन है। इस शहीद स्मारक के लिए अनेक राज्यो का दौरा करके और असहनीय कष्ट उठाकर उन्होने धन-संग्रह

किया था। वास्तव मे यह स्मारक उनकी व्यक्तिगत स्मरणीय कृति है। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम एव समाजवाद के श्री शीलभद्रयाजी जीते-जागते प्रतीक हैं।

सन् 1945-46 का नौ सैनिक विद्रोह

आजाद हिन्द फौज की मातृभूमि के लिए वीरता पूर्ण लडाई से उत्प्रेरित होकर सन् 1945–46 मे भारत मे जगह-जगह सैनिक विद्रोह हुए। पहला विद्रोह कलकत्ता के दमदम हवाई अड्डे पर वायुसेना ने किया। इसका प्रभाव सेना के दूसरे अगो और भागो तक पहुँचा। 18 फरवरी 1846 को बम्बई मे नौ सैनिको ने देश व्यापी विद्रोह किया और अग्रेज सैनिको पर धावा बोल दिया। यूनियन जैक के स्थान पर कांग्रेस और लीग के झण्डे लगा दिये गए। ब्रिटिश साम्राज्य के इतिहास में यह प्रथम अनहोनी घटना थी। विद्रोह की पृष्ठभूमि मे विशुद्ध राष्ट्रीय भावना थी। सैनिक विद्रोह के समर्थन मे 19 फरवरी 46 में देशव्यापी हडताले हुई। इस सम्बन्ध में एक शासकीय रिपोर्ट के अनुसार सन् 1946 मे 18 बार तीन लाख मजदूरो ने हडताल की, जिनमें 27,17,000 घण्टो का नुकसान हुआ। बम्बई मे नौ-सैनिकों का जो विशाल जुलूस निकला था, उसमे– "इन्कालाब हिन्दाबाद', "जयहिन्द", "हिन्दुस्तान को आजाद करो", "आजाद हिन्द फौज को रिहा करो" इत्यादि नारों से सारा आकाश गूंज उठा था। इस विद्रोह मे अग्रेजो के साथ जमकर लडाई हुई। सैकडो नाविक सेना के लोग शहीद हुए और हजारों लोग घायल हुए। यद्यपि सरदार पटेल की अपील पर सैनिको ने हथियार डाल दिये किन्तु इन घटनाओ से अग्रेज सरकार को प्रतिष्ठा गिर गयी। अग्रेज सरकार को स्पष्ट मालूम हो गया कि भारत पर अब अधिक समय तक शासन सम्भव नहीं हो पाएगा। भारतीय सैनिको के बल पर देश-विदेश मे ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया गया था। उन्ही के सहारे भारत मे ब्रिटिश राज टिका हुआ था। सेनाओ में बढते हुए असन्तोष, उसके राजनीतिककरण तथा इन विद्रोहों के बाद ब्रिटिश शासकों ने यह अनुभव कर लिया था कि अब उनके दिन लद गए हैं। अतएव उन्होंने

भारत छोड़कर जाने का निर्णय किया। 1857 के उपरान्त यह पहला अवसर था जब भारतीय सेना ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध खुलकर अपने असन्तोष को व्यक्त किया था। इस सम्बन्ध मे मौलाना आजाद लिखते हैं– "बम्बई मे जल-सेना के अधिकारियों का विद्रोह तत्कालीन परिस्थितियो के संदर्भ मे बहुत अधिक महत्वपूर्ण था। 1857 के बाद यह पहला अवसर था जब कि रक्षा-शक्ति के एक अंग ने राजनैतिक प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध स्पष्ट विद्रोह किया था। यह विद्रोह कोई पृथक घटना नही थी क्योंकि इसके पूर्व सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे युद्ध बन्दियो मे से आजाद हिन्द सेना का निर्माण हो चुका था– इन घटनाओ ने ब्रिटेन को समझा दिया कि भारत की राज-नैतिक समस्या को सन्तोषजनक रूप से सुलझाये बिना अब वे और अधिक समय तक रक्षा-शक्ति पर विश्वास नही कर सकते।" सैनिक विद्रोह के तुरन्त बाद ही ब्रिटिश प्रधान मन्त्री एटली ने घोषणा की कि भारतीय समस्या को सुलझाने के लिए भारत मन्त्री पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स और अलैक्जैंडर भारत जायेंगे और भारतीय नेताओ से बातचीत करेंगे।

भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति

लार्ड माउण्टबेटन ने 23 मार्च 1947 को वायसराय का पद सम्भाला और नेताओ से वार्ता के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय समस्या का एक मात्र हल पाकिस्तान की स्थापना है। उन्होने ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल से परामर्श के बाद 3 जून 1947 को एक योजना प्रस्तावित की जिसे माउण्टबेटन–योजना कहा जाता है। इस योजना को कांग्रेस और लीग से स्वीकृति मिलते ही इसे तुरन्त लागू किया गया। फलस्वरूप भारत तथा पाकि-स्तान, दो-स्वतन्त्र राज्यो का प्रादुर्भाव हुआ। इस योजना के अन्तर्गत 15 अगस्त 1947 को भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इसके लिए 18 जुलाई 1947 मे ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतन्त्रता अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम

से भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हो गया और 15 अगस्त 1947 को भारत और पाकिस्तान के रूप मे स्वतंत्रता मिल गई।

निष्कर्ष

इस तरह 1748 से 1947 तक दो शताब्दियों के लगातार स्वाधीनता संग्राम के फलस्वरूप माउण्टबेटन की योजना के अनुसार 15 अगस्त 1947 को भारत एक प्रभुसत्ता सम्पन्न गणतंत्र राष्ट्र के रूप में स्वतंत्र हुआ। दो शताब्दियों के अन्धकार के बीच से एक तेजस्वी स्वतंत्रता का सूर्य उदित हुआ। इस प्रकार युगों का अन्धकार समाप्त हुआ परन्तु देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के रूप मे विभाजित हुआ। अंग्रेज अपनी कूटनीति में सफल हो गए। भारतीय नेताओं ने इस विभाजन को स्वीकार करके भारी भूल की है। उस समय गांधीजी ने कहा था कि इस विभाजन को न माना गया होता तो हो सकता कि भारत 1947 में स्वतन्त्र न होकर दो एक वर्ष बाद अवश्य आजाद हो जाता। वह स्वतंत्र अवश्य हो जाता, क्योंकि स्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो गई थी कि अंग्रेज भारत भूमि पर अधिक समय तक अपने पाँव जमाए न रख सकता था और अंग्रेज इस देश के टुकड़े किये बिना यहाँ से चला जाता।

यह अजीब विडम्बना की बात है कि दो शताब्दियों के स्वाधीनता-संग्राम में जहाँ हिन्दू-मुस्लिम अपना कन्धे से कन्धा मिलाकर अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े थे, वे लोग अपनी मंजिल पर पहुँचते-पहुँचते अलग-अलग देशो में बंट गए। सदा के लिए साम्प्रदायिक जहर की एक गलत नीव पड़ गई। इसका नतीजा यह हुआ कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में भयंकर साम्प्रदायिक दगे हुए। भयंकर नर-संहार हुआ। दोनो देशों की अपार क्षति हुई। दुर्भाग्य यह है कि पाकिस्तान सरकार आज भी साम्राज्यवादी शक्तियों की कठपुतली बनी हुई है। विकासशील भारत के लिए पाकिस्तान सरदर्द बना हुआ है।

मौ. अब्दुल कलाम आज़ाद ने हिन्दू-मुस्लिम एकता को 'एक जान दो जिस्म' घोषित करते हुए दृढता से कहा था– "आज अगर एक फरिश्ता आसमान की बुलन्दियो मे से उतर आये और दिल्ली के कुतुबमीनार पर खडा होकर यह एलान कर दे कि स्वराज चौबीस घण्टे के अन्दर मिल सकता है, शर्त यह है कि हिन्दुस्तान हिन्दू-मुस्लिम एकता को त्याग दे तो मैं स्वराज को छोड दूंगा। मगर एकता न छोडूंगा, क्योंकि अगर स्वराज मिलने मे देर हुई तो यह हिन्दुस्तान का नुकसान होगा। अगर हमारी एकता जाती रही तो यह... सारी इन्सानियत का नुकसान होगा...।"

डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या लिखते हैं– "भारतीय स्वतत्रता समय की गति और परिस्थितियो के दबाव का परिणाम थी।" स्वतत्रता के बाद डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने लार्ड माउण्टबेटन के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए कहा था– "जहाँ स्वतंत्रता की प्राप्ति काफी सीमा तक हमारे अपने त्यागो और बलिदानो के फलस्वरूप हुई है, वहाँ वह विश्व शक्तियों और घटनाओ का भी परिणाम है। इसके साथ ही ब्रिटिश जाति के लोकतत्रात्मक आदर्शो और ऐतिहासिक परम्पराओ की पूर्ति भी है।"

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मन्मथनाथ गुप्त बहुत ही वेदना के साथ लिखते हैं– "शहीदो और देश भक्तो का स्वप्न साकार हो गया। पर, जिस रूप मे यह सत्य हुआ उससे किसी को पूर्ण प्रसन्नता नही हुई। देश दो टुकडो मे बट जाने से लोगो को स्वतंत्र होने, सैकड़ों वर्षों के बाद भारत माता की बेडियाँ झन-झनाकर टूट जाने का आनन्द ही नहीं मिला।"

सप्तम अध्याय

सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम की उपलब्धि

उपसंहार :

विषय क्रम

1. सशस्त्र क्रान्ति का स्वरूप
2. क्रान्तिवादी आजादी–शमा के परवाने
3. उपलब्धि किस दल की ?
4. सशस्त्र क्रान्ति की उपलब्धि

सशस्त्र क्रान्ति का स्वरूप

प्राय: युद्धों की तुलना ज्वालामुखी के विस्फोटो से और क्रान्तियो की तुलना भूकम्पो से की जाती है। वास्तव मे क्रान्ति का उद्भव, समस्या से मुक्ति पाने की छटपटहाट से होता है। क्रान्ति की मूल प्रवृत्ति होती है-स्थिति मे बदलाव। क्रान्ति अपने आप मे साध्य नही, साधन है और क्रान्ति का साधन व्यक्ति नही, भावना है। क्रान्ति का ध्येय व्यक्ति के प्रति अनुरक्ति से नही, भावना के प्रति निष्ठा से पूर्ण होता है। क्रान्ति वैयक्तिक प्रश्न भी नही है, न केवल वैयक्तिक प्रयत्नो से संभव है। सामूहिक चेतना जागृत करने का वह सशक्त साधन है। क्रान्ति का मार्ग "शार्टकट" भी नही अपितु एक सुदीर्घ राजमार्ग है।

क्रान्ति मात्र बदलाव नही, एक दर्शन है और एक रचनात्मक कार्यक्रम भी है। क्रान्ति-दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त हैं- प्रजातत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद, जो बाद मे स्वतत्र भारत के सविधान के आदर्श बने। शहीद-ए-आजम सरदार भगतसिह द्वारा गठित, "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक दल" इस बात का प्रमाण है। शोषण-विहीन समाज की रचना उस दर्शन का कार्यक्रम था। क्रान्ति का मुख्य उद्देश्य विकृत संस्कारो से मानव की विमुक्ति द्वारा एक स्वस्थ समाज का पुनर्निमण करना था। क्रान्तिकारिता का मूलमंत्र था : "नो काम्प्रोमाइज" अर्थात कोई समझौता नही।

क्रान्तियो की भी अपनी परम्परा होती है। प्राय. क्रान्तियाँ अपने स्वभाव के अनुसार तीन प्रकार की होती हैं – 1 राज्यक्रान्ति या दरबारी क्रान्ति अथवा सैनिक क्रान्ति 2. राष्ट्रीय क्रान्ति और 3. सामाजिक क्रान्ति। विगत दो शताब्दियो मे भारत मे जो सशस्त्र क्रान्ति हुई, उसे हम "राष्ट्रीय क्रान्ति" द्वारा सामाजिक क्रान्ति कह सकते हैं। यही सर्वोत्तम क्रान्ति कहलाती है।

क्रान्तिकारी आजादी-शमा के परवाने

सुदीर्घ दो शताब्दियो के भारतीय स्वाधीनता सग्राम के मूल में क्रान्ति की चेतना विद्यमान रही है। यह उल्लेखनीय है कि सग्राम के आदि से अन्त तक क्रान्ति हिंसामूलक रही है। क्रान्तिकारी स्वतत्रता-शमा के परवाने थे। वे देश-प्रेम और स्वतत्रता की भावना से प्रतिबद्ध थे। इसलिए उन्हे दूसरो से नही, अपितु अपने बलिदानो से मतलब था :

सरफरोशी की तमन्ना

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल मे है।

रहबरे राहे मुहब्बत, रह न जाना राह मे
लज्जते सहरा नवर्दी दुरी-ए-मजिल में है।

वक्त आने दे बता देंगे तुझे, ऐ आसमां !
हम अभी से क्या बताएँ, क्या हमारे दिल में है।

आज फिर मकतल में थे, कातिल कह रहा है बार-बार,
क्या तमन्ना-ए-शहादत भी किसी के दिल में है।

ऐ शहीदे-मुल्को-मिल्लत, मै तेरे जज्बों के निसार,
अब तेरी कुर्बानी की चर्चा गैर की महफिल मे है।

अब न अगले वलवले है और न अरमानों की भीड़,
एक मिट जाने की हसरत अब दिले 'बिस्मिल' मे है ।।

राम प्रसाद 'बिस्मिल'
सन् 1929

सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम में युवा-पीढ़ी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सच पूछो तो वे ही क्रान्ति के संवाहक थे। विशेषता यह है कि क्रान्तिवादी युवा नेता मामूली, ईमानदार प्रतिबद्ध, निर्भीक, नया मनुष्य, जो भरत के "चतुर्धारी नेता" या अरस्तू के त्रासदी कुलीन से बिलकुल भिन्न रहा है। ये युवा नेता अवतारी पुरुष नहीं, न अर्द्धदैवी मानव, न मसीहा, न अभिजात वंश के "चतुर्धारी नेता" थे, बल्कि वे साधारण मनुष्य थे।

ये ऐसे साधारण मनुष्य थे, जो आधुनिक त्रासदी से उत्पीडित, शोषित एवं मोहभंग के शिकार थे। ये ऐसे क्रान्तिवादी मनुष्य थे, जिन्होंने अपने चारों ओर घिरी हुई यान्त्रिक साम्राज्यवादी और पूँजीवादी व्यवस्था की गुलामी के विरुद्ध विद्रोह किया था। अंत में इसी क्रान्ति के मार्ग पर अपनी शहादत दी और अपने लहू की एक-एक बूँद से हजारों क्रान्तिकारियों को जन्म दिया। यह ठीक है कि क्रान्तिकारी नायक ने शरीर त्याग किया, किन्तु उस नायक की गति ने ज्यादा महत्त्वपूर्ण नायक के माध्यम से अलोडित गति थी।

उपलब्धि किस दल की ?

वास्तव में बलिदान सुदीर्घ क्रान्ति का एक उद्धार सदर्शन है जो इतिहास के त्रासद तथ्य के उद्धार की प्रक्रिया को एक व्यक्ति के जीवन खण्ड से आगे ले जाता है। भारतीय सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम में तात्याटोपे, झाँसी की रानी, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, राजगुरु, अशफाक उल्ला खाँ, सुभाषचन्द्र बोस आदि ने जो बलिदान किये, वे क्रान्ति की मशाल को तेज करने के लिए और राष्ट्र के संयुज् उद्धार के लिए थे।

कुछ राजनैतिक नेताओं तथा इतिहास-लेखकों ने जनता में यह भ्रम पैदा करने की चेष्टा की है कि भारत के स्वाधीनता-संग्राम के फल-स्वरूप भारत को जो स्वतन्त्रता मिली है, वह बिना खून बहाए अहिंसात्मक ढंग से मिली है, किन्तु अखिल भारतीय स्वतन्त्रता-सेनानी संगठन के कार्यकारी अध्यक्ष

श्री शीलभद्रयाजी पूर्व सासद के अभिमतानुसार यह बात सफेद झूठ है और ऐसा कहना उन अमर शहीदो का अपमान करना है, जिन्होने सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा आजादी की लड़ाई मे अपना खून बहाया था। श्री याजी पूछते हैं कि क्या उनका बहाया हुआ खून पानी था ? सच्चाई यह है कि स्वाधीनता-संग्राम का दो तिहाई भाग हिंसात्मक तथा एक तिहाई भाग कांग्रेस व गांधीजी के नेतृत्व में लड़ा गया अहिंसात्मक आन्दोलन था।

इस सदर्भ मे प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक श्री मन्मथनाथ गुप्त का अभिमत उल्लेखनीय है- "सन् 1942 का आन्दोलन एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था। इस माने मे कि इस आन्दोलन मे आकर गांधीवादी जन-आन्दोलन और क्रान्तिकारी आन्दोलन मिल गए थे। यह तो सुपरिचित है कि जब इस आन्दोलन के बाद गांधीजी जेल से छूटे तो उन्होने इस आन्दोलन के नेतृत्व को अस्वीकार किया और इस बीच अंग्रेज सरकार पर जो सशस्त्र आक्रमण इत्यादि हुए थे, उनकी निन्दा की। जवाहरलाल आदि नेताओ ने उस हद तक 1942 के आन्दोलन की निन्दा नही की, पर यह स्पष्ट था कि यह आन्दोलन 1921, 1930 तथा 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन से बिल्कुल अलग धारा का आन्दोलन था और यह 1914-18 तथा उसके बाद के युग के क्रान्तिकारी प्रयासो से मेल खाता था।" वास्तव मे क्रान्तिकारियो के स्वतन्त्रता-संग्राम की मूल प्रवृत्ति "सशस्त्र क्रान्ति" थी और मुख्य लक्ष्य था आजादी प्राप्त करना। इसी मार्ग पर उन्होने अपनी शहादते दी।

सशस्त्र क्रान्ति की उपलब्धि

भारत को आजादी प्राप्त होने के सम्बन्ध में सरदार पटेल का वह वक्तव्य, जो उन्होने आई. ए. रिलीफ, कमेटी की दिल्ली मीटिंग में दिया था कि जिस काम को साठ वर्षों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस नही कर सकी, वह काम आजाद हिन्द फौज तथा उनके नेता, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने तीन

मशीनो को लडाई मे ही कर दिया, क्योंकि उनकी लडाई के फलस्वरूप ही ब्रिटिश इण्डियन आर्मी के लोगो मे देश–भक्ति तथा इन्कलाब की भावना आ गई और इसलिए ब्रिटिश ने भारत को छोडकर भारत को आजादी दे दी।" मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार–"गिरते हुए साम्राज्यवाद को अन्तिम लात आजाद हिन्द फौज ने ही मारी थी।"

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि क्रान्तिकारी स्वाधीनता–सेनानी देश के दो टुकडे करना नही चाहते थे, बल्कि वे भारत की पूर्ण स्वतत्रता, राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक आजादी चाहते थे। इन्ही स्वाधीनता सेनानियो के प्रयासो से ही भारतीय सविधान मे "समाजवादी गणराज्य" के सशोधन को स्वीकार कर लिया गया। लेकिन क्या भारत आज सचमुच एक "समाजवादी गणराज्य" बन गया है? आज भी यह प्रश्न चिह्न बना हुआ है।

श्री जीवन सिंह ठाकुर के अनुसार "हमारे देश में कभी भी राजतत्र या सामन्तवाद के विरुद्ध विद्रोह जैसा कुछ नही हुआ है। सामन्ती व्यवस्था पर अग्रेज सामन्ती का जम जाना और स्वतंत्रता–आन्दोलन का फैल जाना, मात्र विदेशी शासक और स्वदेशी शासको का द्वन्द्व बन गया, न कि स्वदेशी का।" विडम्बना यह है कि स्वाधीनता प्राप्ति के 43 वर्षों के बाद भी आज पूंजीवादी–सर्प देश के सारे प्रगतिशील तत्वो पर कुण्डली मारकर बैठे गये हैं, इस कारण पूंजीवादी तत्वों के ध्वंस के बिना देश के प्रगतिशील तत्व मुक्त नही हो सकेंगे और उन शहीद क्रान्तिकारियो का स्वप्न भी साकार नहीं हो सकेगा। डॉ लोहिया की सप्तक्रान्ति और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति का आन्दोलन" आदि आधुनिक त्रासदी के साक्षी हैं।

अन्त मे हमे यह स्वीकार करना पडेगा कि स्वाधीनता संग्राम मे सशस्त्र राष्ट्रीय क्रान्ति ने देश भर मे भूकम्प कर दिया था और उसका परिणाम था देश को आजादी मिलना। इस लिए सशस्त्र क्रान्ति की सब से बडी उपलब्धि–स्वाधीनता की प्राप्ति है।

स्वाधीनता–संग्राम के दौरान नेताओं द्वारा युवा–पीढ़ी को सदा आगे बढ़ने से रोका गया है और उसकी इच्छाओं व आकांक्षाओं को कुचला गया, उनकी उपेक्षा की गई, फिर भी युवा पीढ़ी ने अपनी सोच, सूझ–बूझ और अपने ढंग से सशस्त्र क्रान्ति के आन्दोलन को पूरी शक्ति के साथ चलाया। वे किसी राष्ट्रीय नेता के मुखापेक्षी नहीं रहे।

अन्त में भारत के उप–राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के मन्तव्य को उद्धरित करते हुए "भारतीय स्वतंत्रता सशस्त्र संग्राम" के इतिहास का समाहार करते हैं–

"स्वतंत्रता–संग्राम में गाँधीवादियों और क्रान्तिकारियों के योगदान को अलग-अलग करके आँकना-उचित नहीं है, क्यों कि महात्मा गाँधी सहित सभी क्रान्तिकारी थे। आजादी की लड़ाई में क्रान्तिकारी और गाँधीवादी एक–दूसरे के पूरक रहे और उनमें कहीं टकराव नहीं था।"

–12 जून 1989

परिशिष्ट

(1) 1748 से 1947 तक की प्रमुख घटनाएँ

(2) संदर्भ ग्रन्थों की सूची

परिशिष्ट–1

सन् 1748 से 1947 तक की प्रमुख घटनाएं

17 वी शती में भारत में राष्ट्रीय चेतना महाराष्ट्र में समर्थ रामदास (1664–1689) ने जागृत की थी। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "अखण्ड भारत का स्वप्न महाराष्ट्र में सर्वप्रथम रामदास और छत्रपति शिवाजी ने देखा था।"

सन् 1600 : इंग्लैण्ड की महारानी एलिजेबेथ ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना इग्लैण्ड मे की थी।

सन् 1608 : पहला अंग्रेजी जहाज भारत पहुँचा था।

6 फरवरी 1613 : मुगल सम्राट जहांगीर ने अग्रेजो को व्यापार करने के लिए और सूरत मे एक कोठी बनाने की आज्ञा दी और मुगल दरबार मे उनके एक दूत को प्रतिनिधि के रूप मे रहने की अनुमति दी थी।

सन् 1640 : शाहजहाँ ने बंगाल भर मे अंग्रेजों के माल पर चुगी कर माफ कर दिया। उस प्रान्त मे अपनी कोठियाँ हुगली मे बनाने तथा उनके जहाजो को हुगली नदी तक आने की अनुमति दी थी।

सन् 1664 (अ) : वीर शिवाजी के बल को दबाने और सूरतकी रक्षा करने मे औरगजेब ने अग्रेजो की मदद ली और उसके बदले मे उन्हे व्यापार बढाने की अनेक तरह की सुविधाएं प्रदान की।

(आ) मुगल साम्राज्य का विनाश अंग्रेजों के हाथों नहीं हुआ, वरन् मराठों की वजह से हुआ। सच्चाई तो यह है कि मराठों को कुचलने के लिए मुगलों और अंग्रेजों का संयुक्त मोर्चा बना था।

(इ) . ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरह फ्रांसीसियों ने भी ठीक उसी उद्देश्य से भारत में व्यापार करने हेतु एक कम्पनी कायम की। फलतः दोनों कम्पनियों में प्रतिस्पर्द्धा बराबर जारी रही और लड़ाइयाँ भड़क उठीं।

20 जून 1756 : अलीवर्दी खाँ का नाती युवराज सिराजुद्दौला ने कलकत्ता पर आक्रमण किया और "अंग्रेजी दरबार-कोठी" के तमाम अंग्रेजों को गिरफतार कर उन्हें बंगाल प्रान्त से निष्कासित कर दिया और कलकत्ता का नाम बदलकर "अलीनगर" रख दिया था। यह घटना इतिहास में "काल-कोठरी" के नाम से जानी जाती है।

23 जून 1757 (अ) . अंग्रेजों ने प्लासी के युद्ध में षडयन्त्रों के द्वारा बंगाल के नवाब को पराजित करके अधर्म की नींव पर अंग्रेज साम्राज्य की नींव डाली। प्रायः यह वही समय था, जब कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका स्वतन्त्रता पाने और हिन्दुस्तान अपनी स्वतंत्रता खोने का।

(आ) अंग्रेजों ने 23 जून 1757 को जिस अधर्म की नींव पर अपने साम्राज्य की नींव डाली थी, ठीक उससे एक सौ साल बाद 23 जून 1857 को नानासाहिब के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों ने कानपुर में उस अपमान का बदला अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करा लिया था। नाना साहिब का राज्याभिषेक "शास्त्रीय रीति" से ब्रह्मावर्त में सम्पन्न हुआ।

(इ) इतिहासकारो का अभिमत है कि हिन्दुस्तानी दौलत ने ही इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया, क्योकि इग्लैण्ड मे औद्योगिक क्रान्ति सन् 1770 मे शुरू हुई, जब कि अंग्रेजों के साम्राज्य की स्थापना भारत मे सन् 1757 मे हुई।

20 अक्तूबर 1760 : अंग्रेजों ने नवाब मीर कासिम को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया।

सन् 1761 : अफगानिस्तान के शासक अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण ने मराठो के साम्राज्य स्थापति करने के स्वप्न को नष्ट कर दिया।

सन् 1764 : बंगाल में बैराकपुर विद्रोह और 1825 मे पागलपथी विद्रोह हुआ था।

सन् 1770 : बगाल में अकाल, अंग्रेजो के कठोर व शोषक कानूनो के विरुद्ध सन्यासियो का विद्रोह हुआ था।

सन् 1774 : मराठा राज्य को रक्षा करने हेतु कुशल राजनीतिज्ञ नाना फड़नवीस ने "मराठा-सघ" की स्थापना की थी।

सन् 1783 : हैदरअली की मृत्यु के बाद शेर-ए-मैसूर टीपूसुल्तान मैसूर राज्य का शासक बना और 1784 मे उसने एक युद्ध में अंग्रेजो को पराजित कर दिया।

सन् 1794 : दक्षिण भारत में विजयनगर में विद्रोह हुआ था।

14 अक्तूबर 1799 : मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत पाँचालकुरिच्ची राज्य का राजा बीरपाण्ड्य कट्टबोम्मन ने अंग्रेजो के विरुद्ध विद्रोह किया।

सन् 1804 : आगरे के पास मराठो ने अंग्रेजो को युद्ध मे बुरी तरह से पराजित कर दिया।

18 दिसम्बर 1808 : केरल प्रदेश मे जननेता वेल्लुन्याम्पी ने रेजिडेंट मेकाले की सेना पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की थी और त्रावणकोर-कोचीन पर अपना झण्डा फहरा दिया।

सन् 1820 से 1850 : तीन दशक तक गुजरात में इतिहास प्रसिद्ध "कोली—विद्रोह" हुआ।

सन् 1822 : ब्रिटिश हुकूमत के विरुद्ध सतारा मे चित्तूरसिंह के नेतृत्व मे शमोसियो और सितम्बर 1844 में कोल्हापुर मे गडकारियो का विद्रोह हुआ।

दिसम्बर 1824 : कर्नाटक के कित्तूर की रानी चेन्नम्मा ने विद्रोह किया और 21 फरवरी 1829 को जेल मे रानी की मृत्यु हो गयी।

सन् 1827 से 1865 : बिहार मे 1827 मे बुद्धोभगत, 1831 मे कोलविद्रोह, 1846 में खोद विद्रोह, 1855 से 65 तक सन्थाल परगना विद्रोह आदि जनजातियो के विद्रोह हुए।

सन् 1829 : आसाम राज्य मे तीरोतसिंह के नेतृत्व में आदिवासी खासी लोगो ने विद्रोह किया।

जनवरी 1830 : कित्तूर की रानी चेन्नम्मा का एक वफ़ादार चौकीदार रायण्णा ने अपना सगठन तैयार कर अंग्रेजो के विरुद्ध गुरिल्ला लड़ाई लड़ी और उसे गिरफ्तार करके अप्रैल 1830 मे अंग्रेजो ने फांसी दी।

सन् 1835 : उड़ीसा के गुरदर के जमीदार ने विद्रोह किया था।

13 जनवरी 1849 : महाराजा रणजीतसिंह के दूसरा बेटा वीर शेरसिंह ने लार्ड डलहौजी की गोरी सेना से युद्ध कर उसे पराजित किया था।

1748 से 1847 : इन सौ वर्षों मे अनेक विद्रोह हुए जिनमे "चौर हो विद्रोह", "भील विद्रोह," "नाइकदास आन्दोलन" आदि वन्य जनजातियो का विद्रोह उल्लेखनीय है । कहा जाता है कि इस कालखण्ड मे देशभर मे अंग्रेजी शासन के विरुद्ध चालीस से भी अधिक बार जनजातियो के विद्रोह भडक उठे थे ।

1849 से 1909 तक की प्रमुख घटनाएँ

2 फरवरी 1857 : ब्रह्मपुर मे सेना की 19 वी टुकडी द्वारा विद्रोह ।

10 मई 1857 : मेरठ मे सिपाहियो का विद्रोह ।

11 से 30 मई 1857 : दिल्ली, फिरोजपुर, बम्बई, अलीगढ, इटावा, बुलन्दशहर, नासिराबाद, बरेली, मुरादाबाद, शाहजहाँपुर और उत्तर प्रदेश के दूसरे नगरो मे विद्रोह ।

11 मई 1857 : बहादुरशाह ज़फ़र को क्रान्तिकारियो द्वारा भारत का सम्राट घोषित किया गया ।

जून 1857 : ग्वालियर, भरतपुर, झाँसी, इलाहाबाद, फैजाबाद, सुल्तानपुर, कानपुर, लखनऊ (उत्तर प्रदेश), बिहार के समतल मैदान, राजपूताना, मध्यभारत और बंगाल के कुछ भागो मे सेना द्वारा विद्रोह ।

23 जून 1857 : नाना साहिब के नेतृत्व मे क्रान्तिकारियो ने कानपुर को स्वतंत्र कर नाना साहिब का राज्याभिषेक "शास्त्रीय रीति" से ब्रह्मवर्त मे सम्पन्न किया ।

जुलाई 1857 : इन्दौर, महू, सागर तथा पजाब के झेलम–स्यालकोट मे विद्रोह ।

अगस्त 1857 : नर्मदा और सागर जिलो में जन–विद्रोह ।

20 सितम्बर 1857 : अंग्रेजो द्वारा दिल्ली पर पुनः कब्जा, मध्यभारत में विद्रोह का दूसरा दौर।

अकतूबर 1857 : कोटा राज्य मे विद्रोह।

नवम्बर 1857 : कानपुर के बाहर जनरल विडहम को देशभक्त सिपाहियो ने परास्त कर दिया।

दिसम्बर 1857 : कानपुर में अंग्रेजी फौज कामयाब और तात्या टोपे कानपुर से निकल गए।

मार्च 1858 : लखनऊ पर अग्रेजों का पुनः कब्जा।

अप्रैल 1858 · झाँसी पर अंग्रेजो का कब्जा। बिहार में बाबू कुंवरसिंह के नेतृत्व में पुन सफल विद्रोह।

मई 1858 : कालपी, बरेली, जगदीशपुर पर अंग्रेजो का कब्जा, रुहेलखड में विद्रोही सिपाहियों द्वारा अग्रेजो के विरुद्ध छापामार युद्ध।

जुलाई से दिसम्बर 1858 : भारत पर अंग्रेजों का पुन· अधिकार।

सन् 18‘0 से 1863 : अग्रेजो के विरुद्ध वहाबी 20 ऐसे अभियान हुए जिनमें 60,000 सेना मारी गयी।

13 जनवरी 1872 : पंजाब मे एक सौ कूका-सम्प्रदाय के अनुयायियो ने अग्रेजी सेना पर आक्रमण किया।

सन् 1878–79 : वासुदेव बलवन्त फडके ने क्रान्तिकारी आन्दोलन की शुरुआत कर भारत को गणराज्य बनाने के संकल्प की घोषणा की थी।

सन् 189? : महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना जागृत करने हेतु लोकमान्य तिलक ने गणेश उत्सव तथा शिवाजी जन्मोत्सव की परम्परा डाली थी।

सन् 1897 : क्रान्तिकारी आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ और 1898-99 को चाफेकर बन्धुओं को फाँसी की सज़ा हुई।

11 अगस्त 1908 : खुदीराम बोस को फाँसी दी गई।

18 अगस्त 1909 : मदनलाल धींगरा को फांसी दी गई।

सन् 1909 से 1920 तक की प्रमुख घटनाएँ

23 दिसम्बर 1910 : लन्दन में न्यायाधीशों ने वीर सावरकर को 55 वर्ष काले पानी का कठोर दण्ड दिया ।

सन् 1912 : राजधानी कलकत्ता से दिल्ली लायी गई।

सन् 1913 : सानफ्रान्सिस्को में लाला हरदयाल के नेतृत्व में "ग़दर-पार्टी" की स्थापना हुई।

1 नवम्बर 1913 , गदरपार्टी का "गदर" अखबार का पहला अंक प्रकाशित हुआ।

18 अगस्त 1914 : गदरपार्टी के सचिव लाला हरदयाल ने विदेशों में रहनेवाले प्रवासी भारतीयों का सशस्त्र क्रान्ति के लिए आह्वान् किया।

सन् 1914-15 : गदरपार्टी के आठ हजार सदस्य अमेरिका, कनाडा आदि देशों से "कामागाटामारू", "निशानमारू", "मशीशा-मारू", "तोशामारू" "एस.एस.कोरिया" आदि जहाजों द्वारा अस्त्र-शस्त्रों सहित भारत प्रस्थान।

30 सितम्बर 1914 : बजबज में कनाडा से लौटे "कामागाटामारु" जहाज के सिख स्वतंत्रता सेनानियो ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ाकर दिया।

29 अक्तूबर 1914 : "तोशामारु "जहाज रंगून होता हुआ कलकत्ता पहुँचा जो विद्रोह सम्बन्धी भेद खुल जाने से ग़दरपार्टी के प्रधान सोहन सिंह भकना, जहाज से उतरते ही गिरफ्तार कर लिये गये ।

14 फरवरी 1915 : ग़दरपार्टी के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता पं. परमानन्द के नेतृत्व में सिंगापुर में सैनिक क्रान्ति हुई और विजय प्राप्त हुई ।

सन् 1915 : बर्लिन में भारतीय राष्ट्रवादियों द्वारा "इण्डियन इण्डिपैण्डेन्स लीग" की स्थापना की गई ।

दिसम्बर 1915 : काबुल में राजा महेन्द्र प्रताप ने भारत की कार्यकारी सरकार की स्थापना की । राजा महेन्द्र प्रताप कार्यकारी सरकार के अध्यक्ष तथा बरकतुल्ला प्रधान मंत्री बने ।

28 अप्रैल 1916 : श्रीमती ऐनीबेसन्ट ने लोकमान्य तिलक से प्रेरणा लेकर पूना में मुख्यालय बनाकर होमरूल-लीग की स्थापना की थी। तिलक ने एक लाख रुपये की जो थैली उन्हें भेंट स्वरूप दी थी, वह इण्डियन इण्डिपैण्डेन्स लीग को दे दी गई ।

सन् 1917 : गांधीजी शान्ति और मित्रता का संदेश लेकर भारतीय राजनीति में आए और 1920 में असहयोगी गांधी बन गए ।

सन् 1914–18 : मौलाना महमूद हुसन ने अरब में गुप्तक्रान्ति की योजना बनाई थी ।

सन् 1919 : पहले क्रान्तिकारी आंदोलन ही भारत का एक मात्र जंगजू आन्दोलन था लेकिन 1919 के बाद का आन्दोलन गांधीजी का कांग्रेसी आन्दोलन हो गया ।

18 मार्च 1919 : रौलेट एक्ट पास हुआ—पं. मोतीलाल के अनुसार "अपील" वकील और दलील की व्यवस्था का अन्त ।

13 अप्रैल 1919 : अमृतसर के जलियावाला बाग मे क्रूर जनरल डायर द्वारा हृदय विदारक नरसंहार हुआ ।

सन् 1921 से सन् 1939 तक की प्रमुख घटनाएँ

सन् 1921 : गांधीजी ने अपने केसर-ए-हिन्द की पदवी जो अग्रेजो द्वारा प्रदत्त की गई थी, उसे वापस करके असहयोग आन्दोलन चलाया था ।

1 जनवरी 1923 : देशबन्धु तथा मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल की स्थापना की ।

3 फरवरी 1928 · भारत में साइमन कमीशन के विरुद्ध बहिष्कार आन्दोलन चलाया गया ।

31 दिसम्बर 1929 : कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पं. नेहरू जी ने पहली बार "इन्कलाब जिन्दाबाद" नारे के साथ "पूर्ण स्वतंत्रता" और "समाजवाद" का प्रस्ताव पारित कराया ।

6 अप्रल 1930 : महात्मा गांधी ने नमक-कानून का उल्लघन कर सत्याग्रह किया ।

3 जनवरी 1932 : गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन पुनः प्रारम्भ किया ।

उग्रवादी दल की प्रमुख घटनाएँ

24 सितम्बर 1922 : आन्ध्र प्रदेश के मण्यम पर्वत-प्रदेश में क्रान्तिकारी सीतारामराजु और अग्रेज-सेना के बीच जबर्दस्त मुठभेड़ हुई और सीतारामराजु को विजय हुई ।

9 अगस्त 1927 : क्रान्तिकारियो द्वारा काकोरी के निकट रेलगाड़ी को रोककर सरकरो खजाना लूट लिया गया ।

19 दिसम्बर 1927 : गोरखपुर जेल में प रामप्रसाद "बिस्मिल" को फाँसी हुई।

सन् 1928 : सरदार भगतसिंह के नेतृत्व में क्रान्तिारियों ने "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक पार्टी" बनायी और उसका एक सैनिक पक्ष "हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना" बनाया गया जिसके प्रधान सेनापति चन्द्रशेखर "आजाद" बनाए गए। दल का एक घोषणापत्र "बमदर्शन" कर–पत्र छापा गया।

8 अप्रल 1929 : केन्द्रीय असेम्बली में "सार्वजनिक सुरक्षा का बिल" पर मतदान होने वाला था, सरदार भगतसिंह ने योजनाबद्ध ढंग से बम फेंक कर अपनी गिरफतारी दी।

23 दिसम्बर 1929 : दिल्ली स्टेशन से चार-पाँच मील पहले वाइसराय की ट्रेन के नीचे क्रान्तिकारी यशपाल और भगतराम ने बम का विस्फोट किया।

28 अप्रैल 1930 : चिटगाँव में मास्टर दा सूर्यदेव के नेतृत्व में पुलिस मुख्यालय पर आक्रमण कर क्रान्तिकारियों ने अपने मुख्यालय पर तिरंगा झण्डा फहरा दिया।

23 मार्च 1931 : सरदार भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को लाहौर–सेण्ट्रल जेल में फाँसी दी गई।

सन् 1932 : "युग पलटो" दल के किशोर सदस्य ज्ञानी जैल सिंह ने साहसिक कार्य कर अपने क्रान्तिकारी नेता सन्त जसवन्त सिंह की जान बचायी।

सन् 1940 से 1947 तक की प्रमुख घटनाएँ

सन् 1939 : नेताजी सुभाषचन्द्र बोस "कांग्रेस" के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

5 जनवरी 1941 : युद्ध विरोधी व्यक्तिगत सत्याग्रह-सविनय अवज्ञा आन्दोलन विनोबा भावे के नेतृत्व मे शुरु किया गया ।

16-17 जनवरी 1941 : नेताजी घर के हवालात से अपने भतीजे डॉ. शशिर बोस की मदद से फ़रार हो गए ।

2 अप्रेल 1941 : नेताजी काबुल से होते हुए बर्लिन पहुंच गए ।

8 अगस्त 1942 : बम्बई अधिवेशन में गांधीजी ने अंग्रेजो को "भारत छोड़ो" की चेतावनी दी और देश की जनता को "करो या मरो" का नारा दिया ।

9 अगस्त 1942 : देश भर मे विद्रोह भड़क उठा । व्यापक रूप से तोड़फोड़ हुई । अहिंसा का स्थान हिंसा ने ले लिया । क्रान्तिकारियो ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

सन् 42 की इस जन-क्रान्ति की तुलना कुछ इतिहासकार फ्रांस के इतिहास में वेस्टील के पतन और सोवियत रूस की "अकतूबर क्रान्ति" से करते हैं ।

सन् 1942 : सिंगापुर में जनरल मोहनसिंह ने आजाद हिन्द फौज की स्थापना की ।

जुलाई 1943 : नेताजी हिटलर की मदद से पनडुब्बी द्वारा बर्लिन से सिंगापुर पहुंच गए । प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता श्री रासबिहारी बोस और नेताजी मिलकर युद्ध में जापानी सरकार द्वारा बन्दी बनायो बनाये गए ब्रिटिश इण्डिया आर्मी के चालीस हजार नौजवान और प्रवासी भारतीयो की एक संगठित सेना "आज़ाद हिन्द फ़ौज" के नाम से गठित की ।

21 अक्तूबर 1943 : नेताजी ने सिंगापुर में स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार की घोषणा कर दी और वे स्वयं आज़ाद हिन्द सरकार के राष्ट्रपति और सर्वोच्च सेनापति बने। अनेक सरकारों से तत्काल मान्यता मिल गई।

22 अक्तूबर 1943 नेताजी ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता से प्रेरणा लेकर उनकी जन्मतिथि पर सिंगापुर मे कैप्टेन डॉ. लक्ष्मी सहगल के नेतृत्व मे युवतियो की सेना "रानी झांसी रेजीमेंट" गठित की।

सन् 1944-45 : आजाद हिन्द फ़ौज ने बर्मा के जंगलो के मार्ग से भारत पर आक्रमण किया। इस घमासान लड़ाई मे मणिपुर राज्य के दो तिहाई भाग और समूचा नागालैंड आज़ाद हो गया। मोयरोंग (मणिपुर) मे सर्वप्रथम तिरंगा झण्डा लहराया गया। इन इलाकों पर तीन मास तक आजाद हिन्द फ़ौज का अधिकार रहा।

सन् 1942 से 46 : नेताजी के बर्लिन सिंगापुर, टोकियो आदि रेडियो प्रसारणो के प्रभाव से न केवल भारत की जनता, अपितु सैनिक यूनिटो-जल-नभ एवं थल द्वारा अनेक स्थानो पर अनेक विद्रोह हुए जिस मे कलकत्ता की वायुसेना और 18 फरवरी 1946 को बम्बई मे नौसेना का विद्रोह चिरस्मरणीय हैं।

16 अगस्त 1945 : नेताजी की सिंगापुर से बैंकाक के लिए प्रस्थान के समय दुर्घटना में मृत्यु।

नवम्बर 1945 : दिल्ली के लालकिले में आजाद हिन्द सेना के अधिकारियों कैप्टेन शाहनवाज, कैप्टेन जी.के.सहगल तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लन पर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया।

सन् 1946–47 : नेताजी के अनन्य साथी शीलभद्र याजी ने अपने निजी प्रयत्नों से मोइरंग (मणिपुर) में आज़ाद हिन्द फ़ौज-शहीद-स्मारक भवन का निर्माण किया।

3 जून 1947 : भारत के अन्तिम वायसराय लार्ड माउण्टबेटन ने एक योजना प्रस्तावित की जिसे "माउण्टबेटन-योजना" कहा जाता है। तदनुसार 18 जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद ने भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम पारित किया और भारत में ब्रिटिश शासन समाप्त हुआ।

15 अगस्त 1947 : भारत को स्वतंत्रता मिली किंतु उसके एक भाग का विभाजन कर पाकिस्तान की स्थापना भी की गई।

परिशिष्ट–2

संदर्भ ग्रन्थ

काशी प्रचारिणी सभा, वाराणसी : हिन्दी विश्व कोश खण्ड–2
सपादन ·

कालमार्क्स व फ्रेडरिक एंगेल्स : उपनिवेशवाद के बारे मे
(सम्पादक : सुरेन्द्र बालूपुरी,
अनुवादक : भीष्म सहनी)

प. जवाहरलाल नेहरू : विश्व इतिहास की झलक भाग–1, 2

प. जवाहरलाल नेहरू : हिन्दुस्तान की कहानी

वीर विनायक दामोदर सावरकर : 1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर

डॉ. रामविलास शर्मा : सन् सत्तावन का विद्रोह

असहर अब्बास रिजवी : स्वतंत्र दिल्ली

ड्यूगफ : ओल्ड मेरारीज : 1897

सर गोकुलचन्द नारग

मन्मथनाथ गुप्त : वे अमर क्रान्तिकारी

डॉ. पट्टाभिसीतारामय्या : कांग्रेस का इतिहास भाग–1,2,3

डॉ. एन. पी. कुट्टनपिल्लै : स्वतंत्रता सेनानी अल्लूरि सीतारामराजू

यशपाल : सिंहावलोकन-भाग–1,2,3

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव : यशपाल के उपन्यास : समस्यामूलक अध्ययन

पुखराज जैन : भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन तथा संवैधानिक विकास

प. शीलभद्र याजी : अयुत सांकृत्यायन

डॉ. लक्ष्मी सहगल : स्वतन्त्रता संग्राम से समाजवाद के संसर्ग तक

मन्मथनाथ गुप्त : राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास

वीर सावरकर : क्रान्ति के नक्षत्र

आन्ध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी : आन्ध्र का इतिहास

विष्णु प्रभाकर : अमर शहीद भगतसिंह

परमेश्वरीलाल गुप्त-सम्पादक : आजाद हिन्दी फौज और उसके तीन अफसरों का मुकदमा

वीर सावरकर, अनु. विक्रमसिंह : हिन्दुत्व के पंच प्राण

प्रेमचन्द्र शास्त्री : स्वातन्त्र्य वीर सावरकर

भीमसेन विद्यालंकार-सम्पादक : लाला लाजपतराय की आत्मकथा

प्राणनाथ वानप्रस्थी : वीर पुत्रियाँ

स्वामी विवेकानन्द : हिन्दू धर्म

गिरिधर शुक्ल : प्लासी का युद्ध

इन्द्र विद्यावाचस्पति : भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास

जय प्रकाशनारायण : सम्पूर्ण क्रान्ति

जय प्रकाशनारायण : सम्पूर्ण क्रान्ति का वैचारिक आधार : भाषणों का संकलन

डॉ राममनोहर लोहिया : सप्त क्रान्ति (विशिष्ट लेख)

श्री. फ्रीड्रिख गेन्ल्ज और : तीन क्रान्तियाँ
श्री स्टेफन टी. पौसोनी
अनुवादक : हरिश्चन्द्र विद्यालकार

विपनचन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, : स्वतंत्रता-सग्राम
वरूण दे
अनुवादक : रामसेवक श्रीवास्तव

डॉ. के. डी. गौतम तथा : भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं
डॉ. आर एम मिश्र सवैधानिक विकास

Bose, S. C. : The Indisn Struggle

Lewin. Malcolm : Ceuses of the Indıan Revolt

पत्र-पत्रिकाएँ और संस्मारिकाएँ

(क) पत्रिकाएँ

धर्मयुग, रविवार, हिन्दुस्तान (साप्ताहिक), राष्ट्रधर्म, अजन्ता (हिन्दी प्रचार सभा), नवनीत, आजकल, कल्पना, विवरण पत्रिका, जनज्ञान, सार्वदेशिक पत्र, हैदराबाद समाचार।

(ख) दैनिक पत्र

हिन्दुस्तान (रविवारीय), नवभारत टाईम्स (रविवारीय), प्रताप, जनसत्ता (रविवारीय), हिन्दी मिलाप।

(ग) संस्मारिकाएं

आर्यसत्याग्रह-दर्शन (अर्धशताब्दी स्मारिका), शहीद (स्मारिका), प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम के एक सौ पच्चीस वर्ष (स्मारिका), राजहंस (स्मारिका), हिन्दी दर्पण (स्मारिका), विनायकराव अभिनन्दन ग्रंथ ।

(घ) साक्षात्कार

सु. श्री प्रकाशवतीपाल, मन्मथनाथ गुप्त, प्रो. कृष्णकुमार गोस्वामी, विद्याधर गुरुजी, पं. वन्देमातरम रामचन्द्रराव, धोण्डी राव जाधव, जी. राजबीर आर्य ।

लेखक

डॉ. शीलम् वेंकटेश्वर राव का जन्म आन्ध्र प्रदेश की राजधानी हैदराबाद नगर में सन् 1933 में हुआ। तेलुगु भाषी डॉ. शीलम् ने एम.ए (हिन्दी) उत्कल विश्वविद्यालय से और एम.ओ.एल. और पी-एच डी. उस्मानिया विश्वविद्यालय से की। एम.ओ.एल. परीक्षा में सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुए। उनके पी-एच डी का विषय था- "यशपाल के उपन्यास : समस्यामूलक अध्ययन"। यह ग्रंथ उत्तर-प्रदेश शासन द्वारा पुरस्कृत है। 'प्रगतिवाद और पन्त' उनका दूसरा ग्रन्थ है।

डॉ. शीलम की संपादन का विशेष अनुभव है। वे 'अजन्ता' पत्रिका के सपादक रहे हैं और सम्प्रति 'विवरण पत्रिका' के सम्पादक हैं। उन्होंने अनेक स्मारिकाओं-"हिन्दी दर्पण", "राजहंस", "आर्ष-सत्याग्रह-दर्शन" और भारतरत्न डॉ राजेन्द्र प्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरू आदि अनेक पाठ्यपुस्तकों का सम्पादन किया। अध्यापन, लेखन, पत्रकारिता, काव्य-रचना, हिन्दी प्रचार व प्रसार डॉ. शीलम् की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। वे अनेक शैक्षिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक सस्थाओं से सबद्ध हैं। लगभग पचास वर्षों से हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद से सम्बद्ध हैं। हिन्दी संस्थान नामपल्ली के अध्यक्ष हैं। उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम में भी सक्रिय रूप से भाग लिया। आन्ध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी के सदस्य हैं। हिन्दी की विशिष्ट सेवाओं के लिए वे अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत एवं सम्मानित हुए हैं।

सम्प्रति डॉ. शीलम् धनवन्त कॉलेज हैदराबाद में वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापाक है।